॥ ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राय नमः ॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

प.पू. महामहोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराजा तथा
प.पू. महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजा विरचित
श्री नवपदजी महिमागर्भित

श्रीपाल राजा का रास

(हिन्दी अनुवाद)

प्रेरक:
तपागच्छाधिपति आचार्य विजय रामसूरीश्वरजी महाराजा
के शिष्यरत्न आचार्य विजय जगच्चन्द्रसूरि म.सा.

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

।। ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राय नमः ।।

प.पू. महामहोपाध्याय **श्री विनयविजयजी महाराजा** तथा

प.पू. महामहोपाध्याय **श्री यशोविजयजी महाराजा** विरचित

श्री नवपदजी महिमागर्भित

श्रीपाल राजा का रास

(हिन्दी अनुवाद)

प्रेरक:

तपागच्छाधिपति

आचार्य विजय रामसूरीश्वरजी महाराजा (डहेलावाले)

के शिष्यरत्न आचार्य विजय जगच्चन्द्रसूरि म.सा.

प्रकाशक

आचार्य सुरेन्द्रसूरि जैन तत्त्व ज्ञानशाला

अहमदाबाद - सुरत (गुजरात)

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

लाभार्थी परिवार:
मंडार निवासी संघवी रूगनाथमलजी समरथमलजी दोशी
जी.बी. 22-24, शिवाजी एन्कलेव, नई दिल्ली-110015

प्राप्तिस्थान:
आचार्य सुरेन्द्रसूरि जैन तत्त्व ज्ञानशाला
झवेरीवाड, पटनी की खडकी
अहमदाबाद-380001

श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर
भूपतवाला, ऋषिकेश रोड, हरिद्वार (उत्तराखंड)

मोतीलाल बनारसीदास
41 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007

मूल्य ₹ **50**
विक्रम संवत् - 2068 (ईस्वी सन् 2012)

मुद्रक:
न्यू एज बुक्स प्रैस, ए-44, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया,
फेज़-1, नई दिल्ली-110028

www.jaintatvagyanshala.org

તપાગચ્છાધિપતિ પ.પૂ. આચાર્ય ભગવંત
શ્રીવિજય રામસૂરીશ્વરજી મ. સા. (ડહેલાવાલા)

प.पू. तपागच्छाधिपति सच्चारित्र चूडामणि
क्रियानिष्ठ, प्रशान्तमूर्ति गीतार्थमूर्धन्य आचार्य भगवंत
श्रीमदविजय रामसूरीश्वरजी महाराजा डहेलावाले के चरणो में
कोटि कोटि वंदना ! ! !

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
प्रथम खण्ड	1
द्वितीय खण्ड	53
तृतीय खण्ड	104
चतुर्थ खण्ड	180
नवपदजी की पूजा (श्री पद्मविजय जी)	291

श्री श्रीपाल महाराजा. रास – ढालों के राग

ढाल प्रथम खंड

1. श्री सुपास जिन वंदीये
2. अंतरजामी सुण अलवेसर
3. पुक्खलवई विजये ज्यो रे
4. तुज मुज रीझनी रीत रे
5. मुनिसुव्रत मन मोहयुं मारू
6. जग जीवन जग वाहलो
7. ऊँचा ते मंदिर मालिया
8. सकल तीर्थ वंदु कर जोड
9. संभव जिनवर विनति
10. तीस वर्ष घरमां वस्या रे
11. निरख्यो नेमि जिणंदने

ढाल द्वितीय खंड

1. आज मारा प्रभुजी सामु जुंओ ने
2. एक पंखी आवीने उडी ग्यों
3. गिरूआ रे गुण तुम तणा
4. चौमासी पारणुं आवे
5. वीर वहेला आवोने गौतम
6. शम दम गुंणना आगरूजी
7. तारी भक्तिनी केवी
8. जगपति श्री अरजीन जगदीश

ढाल तृतीय खंड

1. आँखडी मारी प्रभु हरखाय छे
2. जीनजी, त्रेवींशमो जिन पास जेवो
3. सिद्धगिरि मंडण पाय नमीजे
4. जग जीवन जग वाहलो
5. श्री सुपास जिनराज अनेरू गढ़ी
6. सेवो भविया विमल जिनेश्वर
7. स्वामि तुमे काइ कामण कीधु
8. ओघो छे अणमोलो

ढाल चतुर्थ खंड

1. भरतनी पाटे भूपति
2. जगजीवन जग वालहो
3. सकलतीर्थ वंदु करजोड़
4. विनतडी मनमोहन मारी सांभलो
5. रंग रसीया रंग रस बन्यो
6. एक दिन पुंडरीक गणधरु रे लाल
7. तुज साथे नहि बोलू ऋषभजी
8. आँखडी मारी प्रभु हरखाय छे
9. जग जीवन जग वालहो
10. पंथडो निहालु रे बीजा जिनतणो रे
11. आशावरी, शीवरंजनी, मेरुशिखर नवरावे
12. मालकोश
13. रीझो रीझो श्री वीर देखी शासन
14. पंचमी तप तुमे करो रे...

प्रस्तावना

श्रीपाल राजा का रास जैन समाज में बहुत ही प्रचलित है। आयंबिल ओली के दौरान इसका पठन-श्रवण करने की परम्परा पूर्वकाल से चली आ रही है।

इस ग्रंथ के कर्त्ता श्री विनयविजयजी महाराज वि.सं. 1738 में चातुर्मास-वर्षायोग में सूरत के पार्श्ववर्ती रांदेर गाँव में विराजमान थे तब स्थानीय संघ की विनती से इस ग्रंथ की रचना प्रारम्भ की थी, परंतु तीसरे खण्ड की पाँचवीं ढाल की बीसवीं गाथा - 'त्रट त्रट तूटे तांत गमा जाये खसी......' - रचते हुए उनके शरीर की नाड़ियाँ भी टूट गई और समाधि-पूर्वक उनका स्वर्गवास हो गया। अब तक 750 गाथाएँ हो चुकी थी। शेष ग्रंथ पूर्व विनती के अनुसार उनके गुरुभाई श्री यशोविजयजी महाराज ने पूर्ण किया। ग्रन्थ पूर्ण तो हो ही गया, मगर शैली बदल गई; क्योंकि विनयविजयजी रसीले कवि थे और यशोविजयजी तात्त्विक कवि थे। काफी प्रयत्न करने पर भी यशोविजयजी परंपरागत रसीली शैली को न अपना सके। इस प्रकार ग्रंथ का पिछला भाग (लगभग 500 गाथाएँ) कई सैद्धांतिक बातों से भरपूर रहा। कथा के प्रवाह के साथ प्रसंगोपात्त कई गूढ़ बातें भी काव्यबद्ध हुई हैं, जैसे – तेरह काठी, दश लक्षण धर्म, तप के 12 भेद, चार अनुष्ठान आदि। चौथे खंड की ग्यारहवीं ढाल में श्रीपाल राजा के माध्यम से नवपद की अद्भुत गुण-स्तवना एक-एक पद की पाँच-पाँच गाथा में की है और बारहवीं ढाल में श्री महावीर स्वामी के श्रीमुख से एक-एक गाथा में, एक-एक पद का 'गागर में सागर' की शैली से संक्षेप में वर्णन किया गया है। कलश में अनुभव ज्ञान का गुणगान करते हुए कर्ता श्री यशोविजयजी ने अपनी आत्मानुभूति को शब्दारूढ़ किया है-

माहरे तो गुरु चरण पसाये, अनुभव दिलमांहि पेठो,
ऋद्धि वृद्धि प्रगटी घटमांहे, आतम रति हुई बेठो.

इस प्रकार यह ग्रंथ दो महापुरुषों की संयुक्त रचना है, किन्तु समाज में कर्त्ता के रूप में श्री यशोविजयजी का नाम ही विशेष प्रचलित है और तत्व ज्ञानपूर्ण विवेचन उनकी ही देन है। किस विषय को उपसाना-मुख्य करना और किस विषय को गौण करना, यह कर्त्ता पर निर्भर है और कर्त्ता ज्ञानी हो तो सभी रस वैराग्यरसमूलक ही वर्णित होते हैं।

यह तो हुई रचनाकारकी बात। अब मूल कथा पर आते हैं। लोक में यह कथा सिद्धचक्र के माहात्म्य के रूप में प्रसिद्ध है। सिद्धचक्र के आराधन से श्रीपाल राजा का कुष्ठरोग मिट गया और अनुक्रम से आठ पत्नियाँ, नौ पुत्र, नौ हजार हाथी, नौ हजार रथ, नौ लाख जातिवंत घोड़े, नौ क्रोड सैनिक, नौ सौ वर्ष तक निष्कंटक राज्य और नौ भव में सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त हुई। प्रायः ऐसे सुख की इच्छा से लोग नवपद का आराधन करते रहे हैं। किन्तु इससे भी एक महत्त्वपूर्ण बात इस कथा में है जिस पर शायद ही किसी का ध्यान जाता होगा और वह है मयणासुंदरी का 'आपकर्मी का सिद्धांत'। जीव अपने किये हुए शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार ही सुख-दुःख को प्राप्त होता है इस सिद्धांत पर मयणासुंदरी की जो अचल श्रद्धा है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और उपादेय है। इसी श्रद्धा पर वह सहर्ष कुष्ठी को पतिरूप में स्वीकार करती है और अन्ततः वह अपनी बापकर्मी बहन सुरसुंदरी की अपेक्षा अत्यधिक सुख-संपत्ति को प्राप्त होती है। कोई क्रिया वन्ध्या नहीं है और अपने किये कर्म जीव को कहीं भी नहीं छोड़ते, यह जैनधर्म का एक मूलभूत सिद्धांत है और इस पर यथार्थ विश्वास, प्रतीति हो

जाये तो जीव किसी भी परिस्थिति में जैनधर्म से चलायमान नहीं होगा, दुखी नहीं होगा, मिथ्यात्वी देव की मान्यता नहीं करेगा और अपने दुःख के लिए किसी को दोषित नहीं ठहरायेगा। इस कथानक से यही बात मुख्यरूप से सीखनी है।

प.पू. तपागच्छाधिपति आ.भ. श्रीमद् विजय रामसूरीश्वरजी म. सा. (डहेलावाले) के शिष्यरत्न प.पू. आ.भ. श्रीमद् विजय जगच्चन्द्रसूरि म.सा. आदि ठाणा 21 का वि.स. 2068 का चालु साल का चातुर्मास श्री भंडार जैन संघ, नई दिल्ली में हुआ। चातुर्मास के दौरान पूज्यश्री ने पू.उपा. यशोविजयजी विरचित **अध्यात्मगीता** स्वरूप **ज्ञानसार** ग्रन्थ के ऊपर मननीय प्रवचन किये। बाद में आसोज मास की शाश्वती ओली के अवसर पर पूज्य श्री ने **श्रीपाल राजा के रास** पर समूहगान और रूचिकर प्रवचन किये। इससे प्रभावित होकर कई श्रावकों को अपने स्नेहीजनों को **श्रीपाल-मयणा** की कथा का रसपान कराने की भावना हेतु इस पुस्तक की प्रभावना करने हेतु माँग की। इस माँग की पूर्ति करने के लिए मूल संपादक पंडित श्री रसिकलाल शांतिलाल महेता ने जो गुर्जरावृत्ति प्रकाशित की थी, उसका हिन्दी अनुवाद श्री अशोककुमार जैन (श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, आगस) ने किया है उसकी प्रतियां अप्राप्त होने से जिज्ञासु हिन्दीभाषी समाज के लिए यह पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रकाशक समिति

वि.स. 2068

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः
ॐ असिआउसादज्ञाचातेभ्यो नमः

श्रीपाल राजाका रास

(सार्थ)

प्रथम खंड

मंगलाचरण

दोहा-छंद

कल्पवेलि कवियण तणी, सरसति करी सुपसाय,
सिद्धचक्र गुण गावतां, पूरे मनोरथ माय. १

अर्थ—कवियोंके मनोवांछित पूर्ण करनेके लिये कल्पवेली तुल्य हे सरस्वती माता! मुझ पर कृपा करके सिद्धचक्रजीके गुणग्राम करनेके मेरे मनोरथ पूर्ण करो ।।१।।

अलिय विघन सवि उपशमे, जपतां जिन चोवीश,
नमतां निजगुरु पयकमल, जगमां वाधे जगीश. २

अर्थ—चौबीस जिनेश्वर भगवानका ध्यान करनेसे सब दुष्ट विघ्न नष्ट होते हैं और अपने गुरुके चरणकमलोंमें नमस्कार करनेसे जगतमें यश बढ़ता है ।।२।।

गुरु गौतम राजगृही, आया प्रभु आदेश,
श्रीमुख श्रेणिक प्रमुखने, इणि परे दे उपदेश. ३

अर्थ—एक बार श्री गौतमस्वामी महाराज प्रभु महावीरदेवकी आज्ञासे राजगृही नगरीमें पधारे और श्रेणिक आदिको स्वमुखसे इस प्रकार देशना दी ।।३।।

उपकारी अरिहंत प्रभु, सिद्ध भजो भगवंत,
आचारज उवज्झाय तिम, साधु सकल गुणवंत. ४

अर्थ—"अनंत उपकारी अरिहंत परमात्मा, सिद्ध भगवान, आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान और सर्व गुणोंको धारण करनेवाले साधु भगवानकी उपासना करो और— ।।४।।

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

दरिसण दुर्लभ ज्ञान गुण, चारित्र तप सुविचार,
सिद्धचक्र ए सेवतां, पामीजे भवपार. ५

अर्थ–अत्यंत दुर्लभ सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्र और अच्छे भावों सहित तप–इस नवपदरूपी सिद्धचक्रके सेवनसे संसारसमुद्रका पार प्राप्त किया जा सकता है ।।५।।

इहभव परभव एहथी, सुख संपद सुविशाल,
रोग शोग रौरव टळे, जिम नरपति श्रीपाल. ६

अर्थ–इस नवपदके सेवनसे श्रीपालराजाकी तरह इस भवमें और परभवमें अत्यंत विशाल सुख और ऋद्धि प्राप्त होती है तथा भयंकर व्याधियाँ, शोक इत्यादि नष्ट होते हैं।" ।।६।।

पूछे श्रेणिकराय प्रभु, ते कुण पुण्य पवित्र,
इन्द्रभूति तव उपदिशे, श्री श्रीपालचरित्र. ७

अर्थ–इस प्रकार देशना सुनकर श्रेणिकराजाने पूछा–हे प्रभु! ये पुण्यात्मा, पवित्रपुरुष श्रीपाल राजा कौन थे? तब श्री इंद्रभूति (गौतमस्वामी) श्रीपाल राजाका चरित्र कहते हैं ।।७।।

ढाल पहली

देशी ललना

देश मनोहर मालवो, अति उन्नत अधिकार, ललना,
देश अवर मानुं चिहुं दिशे, परवरिया परिवार, ललना. देश० १

अर्थ–(उस समयमें) अत्यंत श्रेष्ठ अधिकारवाला मालव नामका सुंदर देश था। (यह मालव देश सब देशोंके बीचमें होनेसे) चारों तरफ परिवार तुल्य अन्य देश आये हुए थे ऐसा मैं मानता हूँ ।।१।।

तस शिर मुगट मनोहरु, निरुपम नयरी उजेणि, ललना,
लखमी लीला जेहनी, पार कळीजे केणि, ललना. देश० २

अर्थ–उस मालव देशके सिर पर मुकुट जैसी, जिसे उपमा नहीं दी जा सकती ऐसी निरुपम सुंदर उज्जयिनी नगरी थी। उस नगरीकी श्रीमंतताका पार कौन पा सकता है? (अर्थात्‌ बृहस्पति भी उस नगरीकी अद्‌भुतताका वर्णन करनेमें असमर्थ है) ।।२।।

सरगपुरी सरगे गई, आणी जस आशंक, ललना,
अलकापुरी अलगी रही, जलधि झंपावी लंक, ललना. देश० ३

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–(यहाँ कवि कल्पना करता है कि–) इस उज्जयिनी नगरीकी सुंदरताका विचारकर स्वर्गपुरी (उसके आगे मेरा क्या हिसाब ? यों सोचकर) ऊपर स्वर्गमें चली गई, अलकापुरी नगरी तो कहीं और चली गई और लंकानगरीने (इसके आगे मेरी क्या किंमत ? यों सोचकर) समुद्रमें झंपापात कर दिया। (अर्थात् यह उज्जयिनी नगरी संपूर्ण वैभवसे विशिष्ट थी।) ॥३॥

प्रजापाल प्रतपे तिहां, भूपति सवि सिरदार, ललना,
राणी सौभाग्यसुंदरी, रूपसुंदरी भरतार, ललना. देश० ४

अर्थ–इस उज्जयिनी नगरीमें सब राजाओंमें मुख्य ऐसा प्रजापाल राजा राज्य करता था। यह राजा सौभाग्यसुंदरी और रूपसुंदरीका पति था ॥४॥

सहजे सोहागसुंदरी, मन माने मिथ्यात, ललना,
रूपसुंदरी चित्तमां रमे, सुधी समकित वात, ललना. देश० ५

अर्थ–सौभाग्यसुंदरी स्वभावसे ही चित्तमें मिथ्यात्वको मानती थी और रूपसुंदरीके चित्तमें मननीय सम्यक्त्वकी बात घूमती थी ॥५॥

सुर परे सुख संसारना, भोगवतां भूपाळ, ललना,
पुत्री अकेकी पामीए, राणी दोय रसाळ, ललना. देश० ६

अर्थ–स्वर्गके दोगुंदक देवकी तरह दोनों रानियोंके साथ संसारसुखको भोगते हुए राजाको उन दोनों रानियोंसे एक-एक पुत्रीरत्नकी प्राप्ति हुई ॥६॥

एक अनुपम सुरलता, वाधे वधते रूप, ललना,
बीजी बीज तणी परे, इंदुकला अभिरूप, ललना. देश० ७

अर्थ–(यहाँ कवि कल्पना करता है कि–) उन दोनों पुत्रियोंमेंसे एक पुत्री अनुपम कल्पलताकी तरह जैसे उसका रूप बढ़ता है वैसे ही वह भी बढ़ रही है और दूसरी पुत्री दूजके चाँदकी कलाकी तरह बढ़ रही है ॥७॥

सोहगदेवी सुतातणुं, नाम ठवे नरनाह, ललना,
सुरसुंदरी सोहामणुं, आणी अधिक उच्छाह, ललना. देश० ८

अर्थ–अब राजाने मनमें अति उत्साहित होकर सौभाग्यदेवीकी पुत्रीका सुरसुंदरी ऐसा सुशोभित नाम रखा ॥८॥

रूपसुंदरी राणी तणी, पुत्री पावन अंग, ललना,
नाम तास नरपति ठवे, मयणा सुंदरी मन रंग, ललना. देश० ९

अर्थ–और रूपसुंदरी रानीकी पवित्र अंगवाली और मनको आनंद देने वाली कुंवरीका मयणासुंदरी ऐसा नाम रखा ॥९॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

वेद विचक्षण विप्रने, सोंपे सोहगदेवी, ललना,
सकल कला गुण शीखवा, सुरसुंदरीने हेवी, ललना. देश० १०

अर्थ–अब सौभाग्यसुंदरी रानी अपनी पुत्री सुरसुंदरीको स्त्रीकी चौसठ कला सीखनेके लिये वेदशास्त्रके जानकार ब्राह्मण पंडितको सौंपती है ।।१०।।

मयणाने माता ठवे, जिनमत पंडित पास, ललना,
सार विचार सिद्धान्तना, आदरवा अभ्यास, ललना. देश० ११

अर्थ–और रूपसुंदरी रानी अपनी पुत्रीको स्याद्वादसिद्धांतके श्रेष्ठ मर्मका अभ्यास करनेके लिये जैनशास्त्रके जानकार विद्वानपंडितको सौंपती है ।।११।।

चतुर कला चोसठ भणी, ते बेउ बुद्धि निधान, ललना,
शब्दशास्त्र सवि आवड्यां, नाम निघंदु निदान, ललना. देश० १२

अर्थ–मानो बुद्धिके भंडार ही न हो ऐसी उन दोनों चतुर बहनोंने चौसठ कलाएँ सीख ली। इतना ही नहीं, परंतु शब्दशास्त्र, नाममाला, निघंटु ग्रंथ, निदान ग्रंथ आदि अनेक शास्त्र कण्ठस्थ किये ।।१२।।

कवितकला गुण केळवे, वाजिंत्र गीत संगीत, ललना,
ज्योतिष वैद्यक विधि जाणे, राग रंग रस रीत, ललना. देश० १३

अर्थ–तदुपरांत वे दोनों कन्याएँ कविता बनानेकी कला सीखने लगी, तथा वाजिंत्र बजाना, गीतगान करना, ज्योतिष तथा वैद्यकशास्त्र एवं छः प्रकारके राग, नौ प्रकारके रंग आदिकी भी जानकार हुई ।।१३।।

सोळ कला पूरण शशि, करवा कला अभ्यास, ललना,
जगत भमे जस मुख देखी, चोसठ कला विलास, ललना. देश० १४

अर्थ–(यहाँ कवि कल्पना करता है कि–) चौसठ कलाओंसे सुशोभित उन दोनों कन्याओंके मुखारविंदको देखकर सोलह कलासे पूर्ण चंद्र भी इन चौसठ कलाओंको प्राप्त करनेके लिये मानो जगतमें भ्रमण कर रहा है ।।१४।।

मयणासुंदरी मति अति भली, जाणे जिनसिद्धांत, ललना,
स्यादवाद तस मन वस्यो, अवर असत्य एकांत, ललना. देश० १५

अर्थ–मयणासुंदरीकी बुद्धि अत्यंत निपुण थी, अतः उसने जिनेश्वर भगवानके कहे हुए शास्त्रोंको जान लिया था। इस कारण उसके मनमें निश्चय और व्यवहाररूप स्याद्वाद शैली जम गई थी जिससे वह दूसरे एकांतनयोंको झूठा समझती थी ।।१५।।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

नय जाणे नवतत्त्वना, पुद्गल गुण पर्याय, ललना,
कर्मग्रंथ कंठे कर्या, समकित शुद्ध सुहाय, ललना. देश० १६

अर्थ–वह मयणासुंदरी नवतत्त्वोंको अनेक दृष्टिकोणसे तथा पुद्गल द्रव्यके गुण और पर्यायको जानती थी तथा कर्मविषयक ग्रंथ भी उसने कण्ठस्थ किये थे जिससे उसका शुद्ध समकित शोभायमान हो रहा था ॥१६॥

सूत्र अर्थ संघयणनां, प्रवचन सारोद्धार, ललना,
क्षेत्र विचार खरा धरे, एम अनेक विचार, ललना. देश० १७

अर्थ–संघयणी सूत्र तथा उसके अर्थ, प्रवचनसारोद्धार जैसे महान ग्रंथ तथा क्षेत्रसंबंधी वर्णनवाले क्षेत्रसमास आदि विविध विषयोंवाले ग्रंथ पढ़कर उसने कण्ठस्थ किये थे ॥१७॥

रास भलो श्रीपाळनो, तेहनी पहेली ढाळ, ललना,
विनय कहे श्रोता घरे, होजो मंगल माळ, ललना. देश० १८

अर्थ–इस प्रकार सुंदर श्रीपालराजाके रासकी यह पहली ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि इस श्रीपालराजाके रासको सुननेवालेके घरमें मांगलिक माला होओ ॥१८॥

प्रथम खंडकी पहली ढाल समाप्त

दोहा छंद

एक दिन अवनीपति इस्यो, आणी मन उल्लास,
पुत्रीनुं जोउं पारखुं, विद्या विनय विलास. १

अर्थ–एक दिन राजाने प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार सोचा कि दोनों पुत्रियोंकी ज्ञान, विवेक आदिमें कितनी कुशलता है उसकी परीक्षा तो करूँ ॥१॥

सभामांहे शणगार करी, बोलावी बेहु बाल,
आवी अध्यापक सहित, मोहन गुणमणि माल. २

अर्थ–यों सोचकर राजाने दोनों पुत्रियोंको अपने पास बुलाया तब, मोहित करनेवाले गुणोंरूपी मणिकी मानो माला हो ऐसी वे दोनों पुत्रियाँ सोलह शणगारसे सज्ज होकर अपने-अपने विद्यागुरुके साथ राज्यसभामें आई ॥२॥

अर्थ अगोचर शास्त्रना, पूछे भूपति जेह,
बुद्धिबले बेहु बालिका, आपे उत्तर तेह. ३

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–अब राजा शास्त्रोंके जो अगोचर अर्थ अर्थात् सामान्य मनुष्य जिसे नहीं समझ सकते ऐसे कठिन जो-जो अर्थ पूछता है उनके उत्तर ये दोनों राजकुंवरियाँ अपने बुद्धिबलसे देती हैं ।।३।।

अध्यापक आणंदिया, सजन सवे सुख थाय,
चतुर लोक चित्त चमकियां, फल्या मनोरथ माय. ४

अर्थ–उन कुँवरियोंके उत्तर सुनकर उनके विद्यागुरु आनंदित हुए और सगेसंबंधियोंको भी अत्यंत उल्लास हुआ। चतुर और विद्वान मनुष्य भी विस्मित हुए और दोनों माताओंके मनोरथ भी पूर्ण हुए ।।४।।

विनय वल्लभ निज बालनी, शास्त्र सुकोमळ भाख.
सरस जिसी [1]सहकारनी, साकर सरखी [2]साख. ५

अर्थ–विनययुक्त होनेसे प्रिय ऐसी अपनी दोनों कन्याओंकी शास्त्रोंसे सुकोमल वाणी होनेसे राजाको, मधुर आमरसमें शक्कर मिलाई गई हो वैसी अत्यंत मीठी लगी ।।५।।

ढाल दूसरी

(राग-घोरणी, पुण्य प्रशंसीए–ए देशी)

प्रश्नोत्तर पूछे पिता रे, आणी अधिक प्रमोद,
मन लागे अति मीठडां रे, बालक वचन विनोद रे,
वत्स विचारजो, देई उत्तर एह रे, संशय वारजो. १

अर्थ–राजाको अपनी कन्याओंका वचन-विनोद मनमें अत्यंत मीठा लगता है इसलिये अत्यंत उत्साहित होकर वह प्रश्न पूछते हुए कहता है कि हे पुत्रियों! तुम हृदयमें बहुत विचार करो और प्रश्नोंके उत्तर देकर हमारे संशय दूर करो ।।१।।

कुण लक्षण जीविततणुं रे, कुण मनमथ घरनारि,
कुसुम कुण उत्तम कह्युं रे, परणी शुं करे कुमारि रे. वत्स० २

अर्थ–(अब राजा सुरसुंदरीसे पूछता है कि) हे पुत्री! (१) जिंदा प्राणीके जीवितका लक्षण क्या? (२) कामदेवकी स्त्री कौन? (३) कौनसा फूल उत्तम कहलाता है? और (४) कुमारी शादी करके क्या करती है? (इन चारों प्रश्नोंका जवाब एक ही वाक्य (शब्द) से दो)।

---

१. सहकार=आम्रवृक्ष २. साख=पका हुआ आम; जो वृक्ष पर अपनेआप पक जाता है उसे गुजरातीमें साख कहते हैं।

www.jaintatvagyanshala.org

एके वयणे एहनो रे, उत्तर इणी परे थाय,
सुरसुंदरी कहे तातजी रे, सुणजो 'सासर ई जाई' रे,
नृप अवधारजो, अरथ सुणी अम एह रे, महत्व वधारजो. ३

अर्थ—तब सुरसुंदरी बोली— हे पिताजी ! इन चारों प्रश्नोंका उत्तर एक वाक्यसे यों होता है कि 'सासरई जाई' इस प्रकार हमारा जवाब सुनकर हमारा मान बढ़ाइयेगा ॥३॥

विस्तारार्थ—यहाँ पहला प्रश्न—जिंदा प्राणीका लक्षण क्या? उसका उत्तर—सास अर्थात् श्वास।

दूसरा प्रश्न—कामदेवकी स्त्री कौन? उत्तर—रई (रति) कामदेवकी स्त्री।

तीसरा प्रश्न—कौनसा फूल उत्तम? उत्तर—जाईका फूल सब फूलोंमें उत्तम है।

चौथा प्रश्न—कुमारी शादी करके क्या करती है? उत्तर—सासरई जाय अर्थात् ससुराल जाती है।

इस प्रकार सुरसुंदरीने एक वाक्यसे चारों प्रश्नोंका जवाब दिया ॥३॥

मयणाने महीपति कहे रे, अर्थ कहो अम एक,
जो तुम शास्त्र सांभळतां रे, वाध्यो हृदय विवेक रे. वत्स० ४

अर्थ—फिर राजाने मयणासुंदरीसे पूछा कि हे पुत्री ! यदि तुम्हारे हृदयमें शास्त्राभ्याससे विवेक जागृत हुआ हो तो मेरे प्रश्नका उत्तर एक शब्दमें दो ॥४॥

आद्य अक्षर विण जेह छे रे, जग जिवाडणहार,
तेहज मध्याक्षर विना रे, जगसंहारण हार रे. वत्स० ५

अर्थ—तीन अक्षरका एक शब्द है जिसका पहला अक्षर निकालनेसे जगतको जिलानेवाला होता है, उसी शब्दमेंसे बीचका अक्षर निकाल दे तो जगतको नाश करनेवाला होता है ॥५॥

अंत्याक्षर विण आपणुं रे, लागे सहुने मीठ,
मयणा कहे सुणजो पिता रे, ते में नयणे दीठ रे. नृप० ६

अर्थ—और अंतिम अक्षरके बिना वह शब्द हम सबको अत्यंत प्रिय लगता है। (इस प्रकार प्रश्न सुनकर) मयणासुंदरी बोली कि हे पिताजी ! सुनिये, वह तीन अक्षरवाली वस्तु हमेशा मेरी आँखोंमें दीख रही है और वह है काजल ॥६॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

विस्तारार्थ–काजल शब्दमेंसे **का** निकाल दे तो जल शब्द रहता है, वह जल सारे जगतको जिलानेवाला है, बीचका अक्षर **ज** निकाल दे तो काल शब्द रहता है, जो सारे जगतको नष्ट करनेवाला है, और अंतिम अक्षर ल निकाल दे तो काज शब्द रहता है। काज अर्थात् काम, दुनियामें सबको काम प्रिय है और इसलिये काम करनेवाला हरेकको प्रिय लगता है ॥६॥

सुगुण समस्या पूरजो रे, भूपति कहे धरी नेह,
अरथ उपाई अभिनवो रे, पुण्ये पामीजे एह रे. वत्स० ७

अर्थ–फिर राजाने चित्तमें स्नेह धारणकर नया प्रश्न यादकर पूछा कि हे सुगुणी पुत्रियों! तुम यह पहेली पूर्ण करो कि पुण्यसे यह प्राप्त होता है ॥७॥

सुरसुंदरी कहे चातुरी रे, धन यौवन वर देह,
मन वल्लभ मेळावडो रे, पुण्ये पामीजे एह रे. नृप० ८

अर्थ–यह सुनकर सुरसुंदरीने कहा कि चतुराई, धन, युवावस्था, सुंदर शरीर और मनपसंद पति–यह सब पुण्यसे प्राप्त होता है ॥८॥

मयणा कहे मति न्यायनी रे, शीलशुं निर्मळ देह,
संगति गुरु गुणवंतनी रे, पुण्ये पामीजे एह रे. नृप० ९

अर्थ–तब जैनसिद्धांतके रहस्यको जाननेवाली मयणासुंदरीने कहा कि हे पिताजी! न्याययुक्त बुद्धि, शीलसे पवित्र देह, गुणवान गुरुकी संगति (समागम) यह सब पुण्यसे प्राप्त होता है ॥९॥

इण अवसर भूपति भणे रे, आणी मन अभिमान,
हुं तूठ्यो तुम उपरे रे, देउं वंछित दान रे. वत्स०१०

अर्थ–इस अवसर पर (मयणाके वचन सुनकर गर्विष्ठ हुए) राजाने कहा–हे पुत्रियों! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ इसलिये तुम जो चाहो वो मनोवांछित मैं तुम्हें दूँगा ॥१०॥

हुं निर्धनने धन देउं रे, करुं रंकने राय,
लोक सकल सुख भोगवे रे, पामी मुज पसाय रे. वत्स० ११

अर्थ–मैं निर्धन लोगोंको धन देता हूँ, भिखारीको राजा बना सकता हूँ अर्थात् सारी प्रजा जो सुख भोग रही है वह सब मेरा ही प्रताप है (अर्थात् मेरी कृपाके सिवाय दुनियामें कोई सुखी नहीं हो सकता) ॥११॥

सकल पदारथ पामीजे रे, में तूठे जगमांहि,
में रूठे जग रोळीए रे, ऊभो न रहे कोई छांहि रे. वत्स० १२

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–दुनियामें मैं जिसपर तुष्टमान होऊँ वह सर्व वांछित वस्तुको प्राप्त कर सकता है, और जिस पर मैं रुष्ट हो जाऊँ उसे तहस-नहस कर दूँ कि जिससे कोई उसको छायामें भी खड़ा न रह सके ॥१२॥

सुंदरी कहे साचुं पिता रे एहमां किश्यो संदेह,
जगजीवाडण दोय छे रे, एक महीपति दूजो मेह रे. नृप० १३

अर्थ–(यह बात सुनकर) सुरसुंदरी कहने लगी–हे पिताजी ! आप जो कहते हैं वह सत्य है। इसमें शंका कैसी ? क्योंकि दुनियाको जिलानेवाले दो ही है–एक राजा और दूसरा वरसाद ॥१३॥

साचुं साचुं सहु को कहे रे, सकल सभा तेणी वार,
ए सुरसुंदरी जेहवी रे, चतुर न को संसार रे. नृप० १४

अर्थ–उस समय सभामें सब लोग 'सही बात है' ऐसा कहने लगे और कहने लगे कि सुरसुंदरी जैसा इस दुनियामें कोई चतुर व्यक्ति नहीं है। (भावार्थ यह कि सभामें सभी चापलूसी करनेवाले लोग ही इकट्ठे हुए थे।) ॥१४॥

राजा पण मन रंजियो रे, कहे सुंदरी वर माग,
मनवंछित तुज मेळवी रे, देउं सकळ सौभाग रे. वत्स० १५

अर्थ–राजा भी मनमें आनंदित हुआ और कहने लगा–हे सुरसुंदरी, तू तेरी इच्छित वस्तु माँग कि जिससे तेरी मनोकामना पूर्ण कर तुझे सर्व सौभाग्य दे दूँ, अर्थात् खुशखुशाल कर दूँ ॥१५॥

तिहां कुरुजंगल देशथी रे, आव्यो अवनिपाल,
सभामांहे शोभे घणो रे, यौवन रूप रसाल रे. वत्स० १६

अर्थ–उस समय कुरुजंगाल देशका राजा वहाँ आया जो यौवन वय और मनमोहक रूपसे सुंदर होनेसे सभामें अत्यंत शोभित हो रहा था ॥१६॥

शंखपुरी नयरी धणी रे, अरिदमन तस नाम,
ते देखी सुरसुंदरी रे, अंगे उपन्यो काम रे. वत्स० १७

अर्थ–वह राजा शंखपुरी नगरीका अधिपति था। उसका अरिदमन नाम था। उसे देखकर सुरसुंदरीको कामवासना प्रकट हुई ॥१७॥

पृथिवीपति तस उपरे रे, परखी तास सनेह,
तिलक करी अरिदमनने रे, आपी अंगजा तेह रे. वत्स० १८

अर्थ–प्रजापाल राजाने सुरसुंदरीको अरिदमन पर स्नेहदृष्टिवाली जान

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कर उसकी ललाटमें तिलककर अपनी पुत्री सुरसुंदरी उसे दे दी अर्थात् ब्याह दी ।।१८।।

रास रच्यो श्रीपाळनो रे, तेहनी बीजी ढाळ,
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगल माल रे. वत्स० १९

अर्थ—इस प्रकार श्रीपालराजाके रासकी यह दूसरी ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय विनयविजयजी महराज कहते हैं कि इस रासके श्रोताओंके घरमें मंगलकी श्रेणी होओ ।।१९।।

प्रथम खंडकी दूसरी ढाल समाप्त

दोहा छंद

मयणा मस्तक धूणती, जब निरखी नरराय,
पूछे पुत्रीं वात ए, तुम मन किम न सुहाय. १

अर्थ—यह प्रसंग देखकर मयणासुंदरी सिर हिलाने लगी। यह देखकर राजाने मयणासुंदरीसे पूछा—हे पुत्री! क्या मेरी यह बात तेरे मनको नहीं भाती? अर्थात् अच्छी नहीं लगती? ।।१।।

सकल सभाथी सो गुणी, चतुराई चित्तमांहि,
दीसे छे ते दाखवो, आणी अंग उत्साह. २

अर्थ—हे पुत्री! तेरे हृदयमें सारी सभासे सौ गुनी चतुराई दीखती है, तो हृदयमें उत्साह लाकर उस चतुराईको प्रकट करो ।।२।।

उचित इहां नहि बोलवुं, मयणा कहे महाराय,
मोहे मन मानव तणां, विरूआ विषय कषाय. ३

अर्थ—तब मयणासुंदरी कहने लगी—हे महाराज! यहाँ बोलना उचित नहीं है, क्योंकि दुष्ट विषय और कषायोंसे मनुष्योंके मन मोहित हो गये हैं ।।३।।

निर्विवेक नरपति जिहां, अंश नहीं उपयोग,
सभामांहे सहु हाजिया, सरिखो मल्यो संयोग. ४

अर्थ—जहाँ राजा विवेकरहित हो, शास्त्रज्ञानका किंचित्मात्र उपयोग न हो और सभाके लोग खुशामदी हो—ऐसा परस्पर एक-जैसा संयोग मिला हो वहाँ बोलना उचित नहीं है। (फिर भी 'तेरेमें सौगुनी चतुराई है' ऐसा आप कहते हैं इसलिये मैं जवाब देती हूँ।) ।।४।।

www.jaintatvagyanshala.org

ढाल तीसरी

(राग-केदारो, कपूर होये अति उजळो रे—ए देशी.)

मन मंदिर दीपक जिस्यो रे, दीपे जास विवेक,
तास न कहियें पराभवे रे, अंग अज्ञान अनेक.
पिताजी, म करो जूठ गुमान,
ए ऋद्धि अथिर निदान, पिताजी;
जेहवो जलधि उधान, पिताजी० १

अर्थ—हे पिताजी! जिसके मनमंदिरमें दीपकके समान विवेक प्रकट हुआ है उसका पराभव मनुष्यमें रहे हुए अनेक अज्ञान नहीं कर सकते। इसलिये हे पिताजी! आप मिथ्या अभिमान न करें। सचमुच यह सारी ऋद्धि-सिद्धि समुद्रकी तरंगोंकी तरह अस्थिर है ॥१॥

सुख दुःख सहुको अनुभवे रे, केवल कर्म पसाय,
अधिकुं न ओछुं तेहमां रे, कीधुं कोणे न जाय. पिताजी० २

अर्थ—इस संसारमें सब लोग मात्र कर्मके प्रतापसे ही सुख और दुःख पाते हैं। उसमें कोई कम-ज्यादा नहीं कर सकता ॥२॥

राजा कोपे कळकळ्यो रे, सांभळतां ते वात,
व्हाली पण वेरण थई रे, कीधो वचन विघात रे.
बेटी! भली रे भणी तुं आज,
तें लोपी मुज लाज रे बेटी! विणसाड्युं निज काज रे बेटी,
तुं मूरख शिरताज रे, बेटी! भली रे० ३

अर्थ—यह सुनकर राजा क्रोधसे लाल सुर्ख होकर जलने लगा और बोला—हे पुत्री! तूने मेरे वचनको तोड़ा है, मेरी बातका खंड़न किया है, इसलिये तू अतिप्रिय होते हुए भी दुश्मन जैसी हुई है। अरे! तूने बहुत अच्छी पढ़ाई की! कि जिससे तूने अपनी मर्यादाका भी उल्लंघन कर दिया है। तूने अपने हाथोंसे अपना कार्य बिगाड़ा है इसलिये हे पुत्री! तू वास्तवमें मूर्ख शिरोमणि है ॥३॥

पोषीने पोढी करी रे, भोजन कूर कपूर,
रयण हिंडोळे हिंचती रे, भोग भला भरपूर रे. बेटी० ४

अर्थ—तुझे कपूर जैसे श्वेत चावल आदि उत्तम भोजन खिलाकर पुष्टकर बड़ा किया है और तू रत्नके झूलेमें झूलती है, सुंदर भोगोंको पूर्णतया भोग रही है ॥४॥

पाट पटंबर पहेरणे रे, परिजन सेवे पाय,
जगमां सहु जीजी करे रे, ए सवि मुज पसाय रे. बेटी० ५

अर्थ–तथा तू उत्तम महँगे रेशमी वस्त्र पहनती है, नौकर-चाकर तेरे चरणोंकी सेवा करते हैं और जगतमें सौ कोई तेरी आज्ञा उठाते हैं–यह सब मेरी मेहरबानी है ।।५।।

तत्त्व विचारो तातजी रे, मत आणो मन रोष,
कर्मे तुम कुळ अवतरी रे, में किहां जोया जोष. पिताजी० ६

अर्थ–यह सुनकर मयणा कहने लगी–हे पिताजी ! इन सब चीजोंके गूढ़ रहस्योंका आप विचार करे, परंतु मनमें क्रोध न करें। आपके कुलमें जन्म लेनेके लिये मैंने कोई ग्रह वगेरे नहीं देखें। मेरे पूर्व कर्मोंसे ही मैंने आपके कुलमें जन्म लिया है ।।६।।

मलहावो मोंघे मने रे, नव नव करो निवेद,
ते सवि कर्म पसाउले रे, ए अवधारो भेद. पिताजी० ७

अर्थ–हे पिताजी ! आप मुझे अत्यंत प्रेमसे खिलाते हैं, नये नये विविध प्रकारके खान-पान करवाते हैं वह सब मेरे कर्मके प्रसादसे ही है। इस सब रहस्योंको आप चित्तमें धारण करे और व्यर्थ अभिमान न करें ।।७।।

जो हठवाद तुमने घणो रे, कर्म उपर एकान्त,
तो तुजने परणावशुं रे, कर्मे आण्यो कंत रे. बेटी० ८

अर्थ–तब राजा कहने लगा–हे पुत्री ! यदि तुझे एकांत कर्मका कदाग्रह है कि कर्मसे ही सब-कुछ होता है तो तुझे कर्म द्वारा लाये हुए पतिसे ही ब्याहूँगा ।।८।।

मान हण्युं जुओ एणीए रे, माहरुं सभा समक्ष,
फळ देखाडुं एहने रे, सकल प्रजा प्रत्यक्ष रे. बेटी० ९

अर्थ–फिर राजा मनमें सोचने लगा–देखों ! इस पुत्रीने सभाके सामने मेरा भयंकर अपमान किया है अतः सारी सभाके सामने ही इसका फल मैं उसे चखाऊँगा ।।९।।

सखीए ए शुं शीखव्युं रे, अध्यापक अज्ञान,
सज्जन लोक लाजे सहु रे, देखी ए अपमान रे. बेटी० १०

अर्थ–तब सभामेंसे लोग कहने लगे–अरेरे ! इसकी सहेलियोंने इसे क्या सिखाया होगा ? क्या यही सिखाया होगा ? इसे पढ़ानेवाला अध्यापक भी मूर्ख

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ही लगता है, क्योंकि ऐसा अपमान देखकर देखनेवाले सज्जनोंको भी शर्म आती है ॥१०॥

नगरलोक निंदे सहु रे, भण्युं एहनुं धूळ,
जुओ वातनी वातमां रे, पिता कर्यो प्रतिकूळ रे. बेटी० ११

अर्थ—नगरके सब लोग भी मयणाकी निंदा करने लगे और कहने लगे—इस मयणासुंदरीका अध्ययन सब मिट्टीमें मिल गया—व्यर्थ गया। देखों, सामान्य बात ही बातमें इसने पिताको शत्रु जैसा कर दिया ॥११॥

मिथ्यात्वी कहे जैननी रे, वात सकल विपरीत,
जगत नीति जाणे नहीं रे, अवळा ने अविनीत रे. बेटी० १२

अर्थ—उस समय मिथ्यादृष्टि लोग कहने लगे कि जैनोंकी सभी बातें उलटी होती है, और वे जगतकी रीति-नीतिको समझते नहीं हैं, वे अपने दुराग्रहको पकड़नेवाले विपरीत और विनयरहित होते हैं ॥१२॥

अवसर पामी रायनो रे, रोष समावण काज,
कहे प्रधान पधारिये रे, रयवाडी महाराज रे. बेटी० १३

अर्थ—उस समय मौकेको पहचानकर राजाके क्रोधको शांत करनेके लिये मंत्रीने राजासे अर्ज की—हे महाराज! शिकारके लिये घूमने जानेका समय हो गया है, इसलिये पधारिये ॥१३॥

रास भलो श्रीपाळनो रे, तेहनी त्रीजी ढाळ,
विनय कहे मद परिहरो रे, जेहथी बहु जंजाळ रे. बेटी० १४

अर्थ—यह श्रीपालराजाके रासकी तीसरी ढाल पूर्ण होने पर महोपाध्याय विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि जिससे संसारमें कई कष्ट आते हैं ऐसे मद (अभिमान) का त्याग करो ॥१४॥

प्रथम खंडकी तीसरी ढाल समाप्त

दोहा छंद

राजा रयवाडी चड्यो, सबल सैन्य परिवार,
मदमाता मयगल घणा, सहसगमे असवार. १

अर्थ—अब राजा सैन्यसहित शिकारके लिये जा रहा है। उसके साथ कई मदोन्मत्त हाथी और हजारों घुड़सवार हैं ॥१॥

सुभट सिपाई सामटा, जिस्या पंचायण सिंह,
आयुध आडंबर अधिक, अटल अभंग अबीह. २

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–वे सुभट और सैनिक पंचानन सिंह जैसे बलवान, विविध शस्त्रोंके आडंबरयुक्त, युद्धमें पीछेहठ नहीं करनेवाले, वापिस नहीं भागनेवाले तथा किसीसे नहीं डरनेवाले थे ॥२॥

वाघा केशरिया किया, रढियाळा रजपूत,
मुछाळा मछरायला, जोध जिस्या जमदूत. ३

अर्थ–फिर वे सुभट केशरी वस्त्रोंसे सज्ज, लंबी और टेढी मूछोंवाले, शत्रु पर ईर्ष्या रखनेवाले और मानो यमराजके दूत हो वैसे हठीले रजपूत जातिके थे ॥३॥

पाखरिया पंखी परे, ऊडे अंबर जाम,
पंचवरण नेजां नवल, गयण चोक चित्राम. ४

अर्थ–फिर जब शस्त्रोंसे सज्ज होकर, पंख फड़फड़ाते पक्षीकी तरह घोडे आकाशमें उछलते थे तब ऐसा लगता था मानो पंचरंगी धजाओंसे आकाश-मंडलमें कोई चित्र बनाया हो ॥४॥

सरणाई वाजे सरस, घूरे घोर निसाण,
पुर बाहिर नृप आविया, भाला जलहल भाण. ५

अर्थ–उस समय सुंदर शहनाइयाँ बज रही है, गंभीर आवाजवाली नौबत (नगाड़े) शोर कर रही है। इस प्रकारके ठाठमाटके साथ राजा नगरके बाहर आये तब ऐसा लगता था मानो भाले और बरछियाँ जलहल सूर्य समान शोभित हो रही हो ॥५॥

ढाल चौथी

(राग-गोडी-रामचंद्रके बागमें चंपो मोरी रह्यो री–ए देशी)

मारग सन्मुख ताम, ऊडे खेह घणी री,
पूछे भूपति दृष्टि, देई मंत्री भणी री. १

अर्थ–जब राजा प्रजापाल शिकारके लिये निकले तब रास्तेमें सामने दूर-दूर बहुत ही धूल उड़ रही थी। यह देखकर राजाने मंत्रीकी ओर देखकर पूछा ॥१॥

कुण आवे छे एह, एवडां लोक घणां री,
कहे मंत्री रहो दूर, दरिसण एह तणां री. २

अर्थ–हे मंत्री ! ये इतने सारे कौन लोग आ रहे हैं ? तब मंत्रीने कहा–हे राजन् ! इनके दर्शन भी करने जैसे नहीं है, इसलिये आप इनके दर्शनसे दूर रहिये ॥२॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ए कुष्टि सय सात, थाई एक मणा री,
थापी राजा एक, जाचे रायराणी री. ३

अर्थ—ये सातसौ कुष्टि लोग हैं। उन्होंने परस्पर मिलकर अपनेमेंसे एक राजा नियुक्त किया है और अपने राजाके लिये एक राजकन्याकी याचना करते हुए गाँव-गाँवमें घूम रहे हैं ।।३।।

मारग मूकी जाम, नरपति दूर टळे री,
गलितांगुलि तस दूत, आवी ताम मळे री. ४

अर्थ—यह सुनकर राजा मार्ग छोड़कर दूसरी ओर जाने लगा। इतनेमें जिसकी अंगुलियाँ गलित हो गई है ऐसा उन कोढियोंका एक दूत आकर राजासे मिला ।।४।।

उत्तम मारग कांई, जाये दूर तजी री,
उज्जेणीना राय, हारे कीर्ति सजी री. ५

अर्थ—कोढियोंका वह दूत राजासे कहने लगा—हे उज्ञयिनीके राजा ! यह सजमार्ग छोड़कर आप उन्मार्ग पर क्यों जा रहे हैं ? और लम्बे समयसे संप्राप्त यश क्यों खो रहे हैं ? ।।५।।

निर्मुख आशा भंग, जाचक जास रह्या री,
भारभूत जग मांही, निर्गुण तेह कह्या री. ६

अर्थ—क्योंकि जिसके आगे याचकजन अधोमुख अर्थात् नीचे मुखवाले और आशाके भंगवाले (निराश) होकर रहते हैं वह जगतमें भाररूप है और उसे निर्गुण प्राणी कहा जाता है ।।६।।

शी जाचो छो वस्तु, विगते तेह भणो री,
राय कहे अम आज, कीरति कांई हणो री. ७

अर्थ—तब प्रजापाल राजा कहने लगा—आप किस चीजकी याचना कर रहे हैं ? वह स्पष्ट रूपसे कहिये (क्योंकि एक तो पुत्रीने भरी सभामें मेरी इज्जत पर पानी फेरा है।) परंतु आप किसलिये मेरी कीर्तिका नाश कर रहे हैं ? ।।७।।

दूत कहे अम राय, सघली ऋद्धि मली री,
राजवट्ट परगट्ट, कीधी एम भली री. ८

अर्थ—तब दूत कहने लगा—हमारे राजाको राज्ययोग्य सर्व ऋद्धि सिद्धि, सिंहासन, चामर आदि सरंजाम अच्छी तरहसे प्राप्त हो गये हैं ।।८।।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

पण सुकुलिणी एक, कन्या कोई दिये री,
तो तस राणी होय, अम एह हर्ष हिये री. ९

अर्थ–परंतु हमारे राजाको कोई एक उत्तम कुलवाली कन्या मिल जायें और वह उसकी रानी हो जाये–बस यही एक इच्छा हमारे हृदयमें बसी हुई है ॥९॥

मन चिंते तव राय, मयणाने देउं परी री,
जगमांहि राखुं कीर्ति, अविचल एह खरी री. १०

अर्थ–तब राजा मनमें सोचने लगा–इस कोढ़ियोंके राजाको मयणासुंदरी दे दूँ और जगतमें मेरी अविचल कीर्तिकी रक्षा करूँ ॥१०॥

फळ पामे प्रत्यक्ष, मयणा कर्मतणां री,
साले हैडामांही, वयणां तेह घणां री. ११

अर्थ–ऐसा करनेसे मयणासुंदरी जो सदा कर्मके गीत गा रही है उसे भी अपने कर्मका फल प्रत्यक्ष मिल जायेगा। अरे! उसके वचन अभी भी मेरे हृदयमें बहुत खटक रहे हैं ॥११॥

वळे रूख घन वुट्ठि, दाध्यां जेह दवे री,
कुवयण दाध्यां जेह, न वळे तेह भवे री. १२

अर्थ–क्योंकि, कहा है कि दावानलसे जो वृक्ष जल गये हों वे भी अत्यंत वृष्टिसे फिरसे नवपल्लवित हो जाते हैं; परंतु कुवचनरूपी अग्निसे दग्ध मन उस भवमें किसी भी प्रकारसे फिरसे प्रेमाल नहीं हो सकता ॥१२॥

रोष तणे वश राय, शुद्धि बुद्धि सर्व गई री,
कहे दूत तुज राय, अम घर आण जई री. १३

अर्थ–क्रोधके आवेशसे राजाका सारा विवेक और बुद्धि नष्ट हो गई थी, इसलिये वह दूतसे कहने लगा–हे दूत! तू जाकर तेरे राजाको हमारे घर ले आ ॥१३॥

देउं राजकुमारी, रूपे रंभ जिसी री,
दूत तणे मन वात, विस्मय एह वसी री. १४

अर्थ–तेरे राजाको रूपमें अप्सरा जैसी मेरी राजकुमारी दूँगा। राजाकी यह असंभवित बात सुनकर दूतके मनमें अत्यंत आश्चर्य हुआ ॥१४॥

किश्युं विमासे मूढ, में जे वात कही री,
न फरे जगमां तेह, अविचल साची सही री. १५

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–तब राजा कहने लगा–हे मूढ़ दूत! तू मनमें क्या सोच रहा है? मैंने जो बात कही है वह 'पूर्वदिशामें उदय होनेवाला सूर्य पश्चिमदिशामें उदित हो तो भी' कभी मिथ्या होनेवाली नहीं है। वह बात निश्चय सत्य है ॥१५॥

श्री श्रीपालनो रास, चोथी ढाळ कही री,
विनय कहे निरवाण, क्रोधे सिद्धि नहीं री. १६

अर्थ–इस प्रकार श्रीपालराजाके रासकी यह चौथी ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि क्रोधसे कभी सिद्धि नहीं होती यह बात निश्चित है ॥१६॥

प्रथम खंडकी चौथी ढाल समाप्त

दोहा छंद

कोप कठिन भूपति हवे, आव्यो निज आवास,
सिंहासन बेठो अधिक, मन अभिमान विलास. १

अर्थ–अब क्रोधसे कठिन (निर्दय) मनवाला राजा अपने महलमें आया और अभिमानके शिखर पर चढ़ा हुआ राजा सिंहासन पर बैठा ॥१॥

मयणाने तेडी कहे, कर्मतणो पख छोड,
मुज पसाय मन आण, जिम पूरुं वांछित कोड. २

अर्थ–फिर राजा मयणासुंदरीको बुलाकर कहने लगा–हे सुंदरी! अब भी कहता हूँ कि 'कर्म करे सो होता है' यह पक्ष छोड़ दे और मेरी कृपासे 'मैं जो करता हूँ वही होता है' यह पक्ष स्वीकार कर ले, कि जिससे मैं तेरी सभी इच्छाएँ पूर्ण करूँ ॥२॥

मयणा कहे दूरे तजो, ए सवि मिथ्या वाद,
सुखदुःख जे जग पामिये, ते सवि कर्म प्रसाद. ३

अर्थ–तब अटल सिद्धांतवाली मयणासुंदरी कहने लगी–हे पिताजी! इस सारे मिथ्या झगड़ेको छोड़ दो। जगतमें जो कुछ सुख-दुःख प्राप्त होता है वह सब अपने कर्मका ही प्रताप है ॥३॥

बाळकने बतलावतो, हठे चडावे राय,
वाद करंतां बालशुं, लघुता पामे न्याय. ४

अर्थ–इस प्रकार राजा बालिकाको वारंवार वही बात कहकर हठीली (दुराग्रही) बना रहा है; बालकके साथ बार-बार वाद-विवाद करनेसे न्याय नीचताको प्राप्त होता है।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

विस्तारार्थ—व्यवहारमें भी कहते हैं कि बालकको बहुत सताना नहीं चाहिये। परंतु यह राजा ज्यों-ज्यों मयणाको बुलाता है त्यों त्यों वह हठीली होती जाती है। किन्तु बड़े लोग छोटे(बालक)के साथ वाद करते हैं तो उसमें बड़ेकी ही लघुता (नीचता) होती है। अतः बालकके साथ वाद नहीं करना चाहिये ॥४॥

कोई कहे ए बालिका, जुओ हठीली थाय,
अवसर उचित न ओळखे, रीस चढावे राय. ५

अर्थ—कुछ लोग यों कहने लगे—इस बालिकाको तो देखो! वह कदाग्रही (हठीली) हो रही है। समयको पहचानती नहीं है, अर्थात् समयोचित बोलना नहीं समझती, और राजाको क्रोधित कर रही है ॥५॥

ढाल पाँचवीं

(ईडर आंबा आंबली रे—ए देशी)

राणो उंबर तिणे समे रे, आव्यो नयरी मांहि,
सटित करण सूपड जिस्यो रे, छत्र करे शिर छांहि.
चतुर नर, कर्मतणी गति जोय,
कर्मे सुख दुःख होय, च० कर्मे न छूटे कोय. च० क० १

अर्थ—अब उंबरराणा मयणासे शादी करनेके लिये नगरमें आ रहा है उस समयका वर्णन सुनिये। सड़े हुए और सूप जैसे चौड़े कानवाले पुरुषने राणाके सिरे पर छाया करनेके लिये छत्र धारण किया है। हे चतुर पुरुष! कर्मकी गति तो देखियें। कर्मसे ही सुख और दुःख प्राप्त होता है। पूर्वबद्ध कर्मोंके फलसे कोई बच नहीं सकता ॥१॥

श्वेतांगुलि चामर धरे रे, अवगत नास खवास,
घोर नाद घोंघर स्वरे रे, अरज करे अरदास. च० क० २

अर्थ—कुष्ट रोगसे श्वेत हुई अंगुलिवाला पुरुष उंबरराणा पर चामर ढोल रहा है और गलित नाकवाला और भयंकर आवाजवाला एक छड़ीदार पुरुष कर्कश स्वरसे छड़ी पुकार रहा है ॥२॥

वेसर असवारी करी रे, रोगी सवि परिवार,
बलें बाउलें परिवर्यो रे, जिस्यो दग्ध सहकार. च० क० ३

अर्थ—वह उंबरराणा खच्चर पर बैठा हुआ है। चारों ओर कुष्ठियोंसे घिरा हुआ है। अतः जले हुए बावलके वृक्षोंसे वेष्टित और दग्ध हुए आम्रवृक्षकी तरह वह शोभित हो रहा है ॥३॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

केई टूंटा केई पांगळा रे, केई खोडा केई खीण,
केई खसिया केई खासिया रे, केई ददुर केई दीण. च० क० ४

अर्थ–उस उंबरराणाके परिवारमें कई हाथसे लूले हैं, कई पैरोंसे लँगड़े हैं, कई पैरोंमें कुछ खामीवाले हैं, कई रोगसे क्षीण हो गये हैं, कई खुजलीवाले हैं, कई अत्यंत खाँसीवाले हैं, कई दादवाले हैं और कई कंगाल जैसे दीन हैं ॥४॥

एक मुखे माखी बणबणे रे, एक मुख पडती लाळ,
एक तणे चांदा चगचगे रे, एक शिर नाठा वाळ. च० क० ५

अर्थ–कितनोंके मुँहपर मक्खियाँ भीनभीना रही है, किसीके मुँहसे लार टपक रही है, किसीके शरीर पर तो व्रण(घाव)मेंसे लोही और परु रिस रहे है। और किसीके सिर परसे तो बाल एकदम चले गये हैं, अर्थात् सिर गंजा हो गया है ॥५॥

चहुटा मांहे चालतां रे, शोर करे सय सात,
लोक लाख जोवा मल्या रे, एह किश्यो उतपात. च० क० ६

अर्थ–इस प्रकार ये सातसौ कुष्ठी बाजारमें शोर करते हुए चल रहे हैं, उस समय उन्हें देखनेके लिये लाखों लोग इकट्ठे हुए हैं और कह रहे हैं कि यह क्या उत्पात हो रहा है ? ॥६॥

ढोर धसे, कूतर भसे रे, धिक् धिक् कहे मुख वाच,
जन पूछे तुम कोण छो रे, भूत के प्रेत पिशाच ? च० क० ७

अर्थ–उस कुष्ठियोंको देखकर गाय, भैंस, बैल इत्यादि पशु तो उनकी ओर भागने लगे, कुत्ते भसने लगे और लोग उन्हें धिक्कारते हुए कहने लगे–अरे ! तुम कौन हो ? भूत हो ? प्रेत हो ? या पिशाच हो ? ॥७॥

कहे रोगी, तुम रायनी रे, पुत्री रूप निधान,
ते अम राणो परणशे रे, एह जाये तस जान. च० क० ८

अर्थ–तब कुष्ठी उन लोगोंसे कहने लगे–अरे भाई ! हम भूत, प्रेत या पिशाच नहीं है, परंतु तुम्हारे राजाकी अतिशय रूपवती कन्याको हमारा राजा ब्याहने जा रहा हैं उसकी यह बारात जा रही है ॥८॥

नगरलोक साथे थयां रे, कौतुक जोवा काज,
उंबरराणो आवियो रे, जिहां बेठा महाराज. च० क० ९

अर्थ–(कौतुकको न्यौता नहीं होता इस न्यायसे) नगरके लोग भी

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कौतुक देखनेके लिये बारातमें शरीक हो गये। इस तरह उंबरराणा, जहाँ प्रजापाल राजा बैठे हुए थे, वहाँ आ पहुँचा ॥९॥

मयणाने भूपति कहे रे, ए आव्यो तुम नाह,
सुख संपूरण अनुभवो रे, कर्मे कर्यो विवाह. च० क० १०

अर्थ—उसे देखकर राजा मयणासुंदरीसे कहने लगा—हे मयणा! यह तेरे कर्मों द्वारा लाया हुआ तेरा पति आ गया है, उसके साथ शादी कर सर्व सुखोंका उपभोग कर ॥१०॥

मयणा मुख नवि पालटे रे, अंश न आणे खेद,
ज्ञानीनुं दीठुं हुवे रे, तिहां नहि किश्यो विभेद. च० क० ११

अर्थ—राजाके ऐसे वचन सुनकर मयणासुंदरीके मुँहके भाव किंचित् मात्र भी बदले नहीं और मनमें वह अंशमात्र भी दुःखी नहीं हुई, किन्तु सोचने लगी कि भगवानने जो ज्ञानमें देखा है वही होता है, उसमें किंचित् मात्र भी अंतर नहीं होता ॥११॥

जेह पिताए पांचनी रे, साखे दीधो कंत,
देव परे आराधवो रे, उत्तम मन ए खंत. च० क० १२

अर्थ—फिर पिताजीने पाँच व्यक्तियोंकी साक्षीसे जो पति दिया हो उस पतिकी देवके समान सेवा करनी चाहिये—यही उत्तम कुलकी स्त्रियोंकी टेक है ॥१२॥

करी प्रणाम निज तातने रे, वयण विमलमुख रंग,
आवीने ऊभी रही रे, उंबरने वामांग. च० क० १३

अर्थ—यों सोचकर अपने पिताको नमस्कार कर और उनके वचनको मान्यकर निर्मल वचनवाली और उज्ज्वल मुखवाली मयणासुंदरी उंबरराणाकी दायी ओर आकर खड़ी हो गई ॥१३॥

तव उंबर एणि परे भणे रे, अनुचित ए भूपाळ,
न घटे कंठे कागने रे, मुक्ताफळनी माळ. च० क० १४

अर्थ—तब उंबरराणा कहने लगा—हे राजन्! यह अयोग्य हो रहा है, क्योंकि कागके गलेमें मोतीकी माला शोभा नहीं देती।

अर्थात् जैसे कौएके गलेमें मोतीकी माला पहनाना शोभास्पद नहीं है, उसी तरह यह स्वरूपवती कन्या मुझ जैसे कोढ़ीको देना युक्त नहीं है। मेरे लिये तो मेरे जैसी कन्या ही उचित है ॥१४॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

राय कहे कन्या तणे रे, कर्मे ए बल कीध,
घणुं कह्युं में एहने रे, दोष न को में लीध. च० क० १५

अर्थ—यह सुनकर राजा बोला—इस अयोग्य संबंधके लिये कन्याके कर्मोंने जोर किया है, उसके कर्म ही जिम्मेदार है। मैंने तो उसे बहुत समझाया था, परन्तु उसने माना नहीं, इसलिये मेरा इसमें कोई दोष नहीं है ॥१५॥

रोगी रलीयायत थया रे, देखी कन्या पास,
परमेसरे पूरण करी रे, आज अमारी आश. च० क० १६

अर्थ—इधर रूपवती कन्याको उंबरराणाके पास खड़ी देखकर कोढ़ी लोग खुशखुशाल हो गये और कहने लगे कि भगवानने ही आज हमारी इच्छाको पूर्ण किया है ॥१६॥

सुगुण रास श्रीपालनो रे, तेहनी पांचमी ढाळ,
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगळ माल. च० क० १७

अर्थ—इस प्रकार अच्छे गुणयुक्त इस श्रीपाल राजाके रासकी पाँचवीं ढाल पूरी हुई। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि यह रास सुननेवालोंके घरमें मंगलमाला होओ ॥१७॥

प्रथम खंडकी पाँचवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

कोई कहे धिक् रायने, एवडो रोष अगाध,
कोई कहे कन्या तणो, ए सघळो अपराध. १

अर्थ—यह सब अघटित घटना देखकर कुछ लोग यों कहने लगे कि राजाको धिक्कार है कि वह अपनी संतान पर इतना सारा बेहद क्रोध कर रहा है; तो कुछ लोग यों कहने लगे कि यह सारा दोष तो कन्याका ही है ॥१॥

उतारे आव्या सहु, सुणतां इम जन वात,
अनुचित देखी आथम्यो, रवि प्रगटी तव रात. २

अर्थ—इस प्रकार लोगोंकी विविध बातें सुनते हुए सातसौ कोढ़ी अपने निवास पर गये। (यहाँ कवि कल्पना करता है कि—) उस समय 'यह अघटित कार्य हुआ है' यह देख कर ही मानो सूर्य अस्त हो गया और रात्रि प्रकट हुई ॥२॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

यथाशक्ति उत्सव करी, परणावी ते नार,
मयणा ने उंबर मळी, बेठां भुवन मझार. ३

अर्थ–इस प्रकार उन कोढ़ी लोगोंने अपनी शक्तिके अनुसार उत्सवपूर्वक उंबरराणाका उस कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। तत्पश्चात् मयणासुंदरी और उंबरराणा अपने निवासमें बैठे ।।३।।

ढाल छठीं

उंबर मनमां चिंतवे रे लो, धिक् धिक् मुज अवतार रे छबीली!
मुज संगतथी विणसशे रे लो, एहवी अद्‌भुत नार रे रंगीली! १

अर्थ–अब (विवाहकी प्रथम रात्रिको मयणाके साथ अपने भवनमें बैठा हुआ) उंबरराणा मनमें सोचने लगा–मेरे अवतार(जन्म)को धिक्कार है! ऐसी सुंदर लावण्यमयी छबीली नारीका रूपसौंदर्य और कांति इस मेरे देहके स्पर्शसे नष्ट हो जायेंगे। (फिर वह मयणासुंदरीसे प्रकट कहने लगा कि–) ।।१।।

सुंदरी हजीय विमासजो रे लो, ऊंडो करी आलोच रे छबीली!
काज विचारी कीजिये रे लो, जिम न पडे फरी शोच रे, रंगीली!
सुंदरी हजीय विमासजो रे लो. २

अर्थ–हे सुंदरी! अब भी अति दीर्घदृष्टिसे तुम सोच लो। (अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। यह तो पूरे जीवनकी बाजी है।) इसलिये जो काम करना हो वह खूब सोच-विचारकर करना चाहिये ताकि बादमें पछतानेका मौका न आये। अतः हे सुंदरी! फिरसे कहता हूँ कि अब भी तुम विचार कर लो ।।२।।

मुज संगे तुज विणसशे रे लो, सोवन सरखी देह रे, छबीली!
तुं रूपे रंभा जिसी रे लो, कोढीशुं श्यो नेह रे, रंगीली! सुं०३

अर्थ–हे सुंदरी! सुवर्ण जैसी तेरी यह काया मेरे संगसे नष्ट हो जायेगी। फिर तू रूपमें देवांगना जैसी है, अतः इस कोढ़ीके साथ तुझे स्नेह कैसे होगा? अर्थात् मुझ जैसे कोढ़ीके साथ स्नेह करना तुझे उचित नहीं है ।।३।।

लाज इहां मन नाणिये रे लो, लाजे विणसे काज रे, छबीली!
निज माता चरणे जई रे लो, सुंदर वर कर राज रे, रंगीली! सुं०४

अर्थ–इसलिये हे सुंदरी! यहाँ मनमें शर्म रखनेकी जरूरत नहीं है। शर्म रखनेसे काम बिगड़ता है, अतः तेरी माताके पास जाकर पैरों पड़कर माफी माग ले और सुंदर राजकुंवर जैसे पतिको प्राप्त कर राजलक्ष्मीका उपभोग कर ।।४।।

www.jaintatvagyanshala.org

मयणा तस वयणां सुणी रे लो, हियडे दुःख न माय रे वालेसर,
ढळक ढळक आंसु पडे रे लो, विनवे प्रणमी पाय रे वालेसर.
वचन विचारी उच्चरो रे लो, तुमे छो चतुर सुजाण रे वालेसर.
वचन विचारी उच्चरो रे लो. ५

अर्थ—उंबरराणाके ऐसे वचन सुनकर मयणाके हृदयमें बेहद दुःख हुआ और आँखोंमेंसे टपाटप आँसु झरने लगे। फिर पतिके चरणोंमें गिरकर वह विनंती करने लगी—हे प्रिय प्राणनाथ! आप यह क्या बोल रहे हैं? आप तो हुंशियार, चतुर और समझदार हैं, अतः जो कुछ भी कहे वह सोच-विचार कर कहिये ॥५॥

एह वचन केम बोलिये रे लो, इणे वचने जीव जाय रे, वालेसर,
जीव जीवन तुमे वालहा रे लो, अवर न नाम खमाय रे, वालेसर. व०६

अर्थ—हे प्रिय पतिदेव! आप ऐसे वचन क्यों बोल रहे हैं? इन वचनोंसे तो मेरा प्राण चला जाता है। आप मेरे जीवनके साथी और प्रिय है, इसलिये मैं दूसरेका नाम भी सहन नहीं कर सकती ॥६॥

पश्चिम रवि नवि उगमे रे लो, जलधि न लोपे सीम रे, वालेसर,
सती अवर इच्छे नहीं रे लो, जां जीवे तां सीम रे, वालेसर. व०७

अर्थ—जैसे सूर्य पश्चिम दिशामें उदय नहीं होता और जैसे समुद्र मर्यादाको नहीं छोड़ता, वैसे ही सती स्त्री जब तक जीवित रहे तब तक पंचकी साक्षीसे परिणीत पतिके सिवाय दूसरेकी इच्छा नहीं करती ॥७॥

उदयाचल उपर चड्यो रे लो, मानुं रवि परभात रे, वालेसर,
मयणा मुख जोवा भणी रे लो, शील अचल अवदात रे, वालेसर. व० ८

अर्थ—यहाँ कवि कल्पना करता है कि—उस समय मानो अचल और उज्ज्वल शीलवाली मयणासुंदरीके मुखको देखनेके लिये ही सूर्य प्रातःकालमें उदयाचल पर्वत पर चढ़ा न हो, ऐसा मैं मानता हूँ। अर्थात् रात्रि व्यतीत होकर प्रभात हुआ ॥८॥

चक्रवाक दुःख चूरतो रे लो, करतो कमल विकाश रे, वालेसर,
जगलोचन जब उगियो रे लो, पसर्यो पुहवी प्रकाश रे, वालेसर. व० ९

अर्थ—(इस प्रकार) चक्रवाक और चक्रवाकीके विरहदुःखको नाश करनेवाला, सूर्यविकासी कमलोंको विकस्वर करनेवाला और जगतके जीवोंके लिये चक्षु समान सूर्य जब उदित हुआ तब पृथ्वी पर प्रकाश फैलने लगा ॥९॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

आवो देव जुहारिये रे लो, ऋषभदेव प्रासाद रे, वालेसर,
आदीश्वर मुख देखतां रे लो, नासे दुःख विखवाद रे, वालेसर. व० १०

अर्थ–(यों प्रभात होने पर) मयणासुंदरी अपने पतिसे कहने लगी–हे स्वामी ! चलिये, हम ऋषभदेव भगवानके मंदिरमें जाकर युगादिदेवके दर्शन करेंगे, क्योंकि आदीश्वर भगवानका मुख देखते ही दुःख और क्लेश नष्ट हो जाते हैं ॥१०॥

मयणावयणे आवियो रे लो, उंबर जिन प्रासाद रे जिणेसर,
आदीश्वर अवलोकतां रे लो, उपन्यो मन आह्लाद रे जिणेसर,
तिहुअण नायक तुं वडो रे लो, तुम सम अवर न कोय रे जिणेसर.
तिहुअण नायक तुं वडो रे लो. ११

अर्थ–इस प्रकार मयणासुंदरीके वचन सुनकर उंबरराणा जिनेश्वर भगवानके मंदिरमें आया और आदीश्वर भगवानका मुख देखते ही उसे मनमें अत्यंत आनंद हुआ जिससे वह यों स्तुति करने लगा–हे त्रिभुवन नायक प्रभु ! तू ही इस जगतमें बड़ा है, तेरे समान और कोई नहीं है ॥११॥

मयणाए जिन पूजिया रे लो, केशर चंदन कपूर रे जिणेसर,
लाखीणो कंठे ठव्यो रे लो, टोडर परिमल पूर रे जिणेसर.ति०१२

अर्थ–उस समय मयणासुंदरीने केसर, चंदन, पुष्प, कपूर आदिसे भगवानकी पूजा की और सुगन्धवाले लाखों फूलोंका हार भगवानके कंठमें स्थापित किया अर्थात् पहनाया ॥१२॥

चैत्यवंदन करी भावना रे लो, भावे करी काउसग्ग रे, जिणेसर,
जय जय जग चिंतामणि रे लो, दायक शिवपुर मग्ग रे, जिणेसर. ति०१३

अर्थ–फिर चैत्यवंदन कर, भावना भाते हुए भावपूर्वक कायोत्सर्ग कर वह चिंतन करने लगी–हे प्रभु ! आपकी जय हो, जय हो; आप जगतमें चिंतामणि रत्नके समान है और आप ही मोक्षमार्गके देनेवाले है ॥१३॥

इह भव पर भव तुज विना रे लो, अवर न को आधार रे, जिणेसर,
दुःख दोहग दूरे करो रे लो, अम सेवक साधार रे, जिणेसर. ति०१४

अर्थ–फिर इस भवमें और परभवमें आपके सिवाय हमारे लिये अन्य कोई शरण नहीं है, अतः हे प्रभु ! इस शरणागत सेवकके आप ही आधारभूत है, इसलिये हमारे दुःख और दौर्भाग्यको दूर करें ॥१४॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कुसुममाल निज कंठथी रे लो, हाथतणुं फळ दीध रे, जिणेसर,
प्रभु पसाय सहु देखतां रे लो, उंबरे ए बेउ लीध रे, जिणेसर. ति०१५

अर्थ—उस समय स्वयं भगवानके गलेमेंसे फूलकी माला और हाथमेंसे फल जिनेश्वर भगवानके प्रतापसे शासनदेवने सब लोगोंके समक्ष उंबरराणाको दिया और उंबरराणाने वे दोनों वस्तुएँ हर्षपूर्वक ग्रहण की ॥१५॥

मयणा काउसग्ग पारियो रे लो, हियडे हर्ष न माय रे, जिणेसर,
ए सही शासन देवता रे लो, कीधो अम सुपसाय रे, जिणेसर. ति०१६

अर्थ—तब मयणासुंदरीने कायोत्सर्ग पूरा किया। उसके हृदयमें हर्ष समाता नहीं था। वह मनमें सोचने लगी कि निश्चय ही शासनदेवताने हम दोनों पर कृपा की है ॥१६॥

सुगुण रास श्रीपाळनो रे लो, तिहां ए छट्ठी ढाळ रे, जिणेसर,
विनय कहे श्रोता घरे रे लो, होजो मंगल माळ रे, जिणेसर. ति०१७

अर्थ—अच्छे गुणोंवाले श्रीपालराजाके रासकी यह छठीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि इस रासके श्रोताओंके घरमें मंगलकी माला होओ ॥१७॥

प्रथम खंडकी छठीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

पासे पोसहशालमां, बेठा गुरु गुणवंत,
कहे मयणा दिये देशना, आवो सुणीए कंत. १

अर्थ—इस प्रकार जिनेश्वरदेवकी वंदना कर मयणासुंदरी कहने लगी—हे स्वामिन्! नजदीकमें पौषधशालामें गुणनिधान गुरु महाराज बिराजमान है और वे देशना (व्याख्यान) दे रहे हैं, तो चलिये, हम उनका उपदेश सुनें ॥१॥

नर नारी बेहु जणां, आव्यां गुरुने पाय,
विधिपूर्वक वंदन करी, बेठां बेसण ठाय. २

अर्थ—यों कहकर वे दोनों पति-पत्नी वहाँ आये, और गुरु महाराजके चरणोंमें विधिपूर्वक वंदनाकर अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठे ॥२॥

धर्मलाभ देई धुरे, आणी धर्म सनेह,
योग्य जीव जाणी हवे, धर्म कहे गुरु तेह. ३

अर्थ—उस समय गुरु महाराजने प्रथम 'धर्मलाभ' दिया, फिर योग्य जीव जानकर धर्मस्नेहपूर्वक उन्हें धर्मदेशना देने लगे ॥३॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ढाल सातवीं

(वात म काळो हो व्रत तणी—ए देशी)

भमतां एह संसारमां, दुलहो नरभव लाधो रे,
छांडी निंद प्रमादनी, आप सवारथ साधो रे,
चेतन चेतो रे चेतना, आणी चित्त मझार रे. चे०१

अर्थ—हे भव्यजीवों! इस अनादि संसारमें परिभ्रमण करते हुए दुर्लभ मनुष्यभव मिला है, तो प्रमादरूपी निद्राको छोड़कर अपने आत्माके स्वार्थरूप ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी साधना कर लो, क्योंकि ऐसी दुर्लभ धर्मसामग्री मनुष्यभव सिवाय अन्यत्र कहीं मिलनेवाली नहीं है। तो हे चेतन! चित्तमें चेतनाको लाकर चेत जाओ ॥१॥

सामग्री सवि धर्मनी, आळे जे नर खोई रे,
माखीनी परे हाथ ते, घसतां आप विगोई रे. चे० २

अर्थ—जो मनुष्य धर्मकी सर्व सामग्री मिलने पर भी उसका सदुपयोग नहीं करता, और प्रमादमें व्यर्थ खो देता है, उस मनुष्यको मक्खीकी तरह हाथ मलकर पछतानेका मौका आता है ॥२॥

विस्तार—मक्खीका दृष्टांत एक कवि कहता है—

माखीए मध भेगुं कीधुं, न खाधुं न दान ज दीधुं,
लूंटनारे लूंटी लीधुं रे. पामर प्राणी० १

अर्थ—मक्खी फूलोंमेंसे एक-एक बूंद रस लेकर मध इकट्ठा करती है, मेहनत करती है, किन्तु स्वयं खाती नहीं और किसीको लेने देती नहीं; और जब अचानक शिकारी उस मधको ले लेता है तब हाथ मलती रह जाती है। इसी तरह मनुष्य भी धर्मसामग्रीको गँवाकर फिर पीछेसे पश्चात्ताप करता है।

जान लई बहु युक्तिशुं, जिम कोई परणवा जाय रे,
लगनवेळा गई ऊंघमां, पछे घणुं पस्ताय रे. चे०३

अर्थ—जैसे कोई मनुष्य बहुत बड़े ठाठसे बारात लेकर शादी करने जाता है, परंतु शादीका मुहूर्त्त नींदमें चला जाय; फिर जगने पर बहुत पश्चात्ताप करता है। (उसी तरह यह प्राप्त मनुष्य जन्म तथा धर्मसामग्रीको आराधनसे सफल न करे तो फिर पश्चात्ताप करनेसे कुछ हो नहीं सकता, अतः प्राप्त धर्मसामग्रीको सफल कर लेना चाहिये) ॥३॥

एणि परे देई देशना, करे भविक उपकार रे,
गुरु मयणाने ओळखी, बोलावे तेणि वार रे. चे० ४

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–इस प्रकार देशना देकर गुरुने भव्यजीवों पर उपकार किया। फिर गुरुने मयणासुंदरीको पहचान लिया और उसे पूछने लगे– ॥४॥

रे! कुंवरी तुं रायनी, साथे सबल परिवार रे,
अम अपासरे आवती, पूछण अर्थ विचार रे. चे॰ ५

अर्थ–हे मयणासुंदरी! तू तो राजाकी बेटी है, और अभ्यास करते समय जब तुझे शंका होती थी तो बड़े सैन्य और परिवारके साथ हमें अर्थका रहस्य पूछने तू उपाश्रयमें आती थी ॥५॥

आज किश्युं इम एकली, ए कुण पुरुष रतन्न रे,
धुरथी वात सवि कही, मयणा स्थिर करी मन्न रे. चे॰ ६

अर्थ–किन्तु आज तू अकेली कैसे है? तेरे साथ यह नररत्न कौन है? इस प्रकार गुरुके वचन सुनकर मयणासुंदरीने मन स्थिर कर अथ से इति तक सारी बात गुरुसे कह सुनायी ॥६॥

मनमांहे नथी आवतुं, अवर किशुं दुःख पूज्य रे,
पण जिनशासन हेलना, साले लोक अबुझ रे. चे॰ ७

अर्थ–विशेषमें उसने कहा–हे पूज्य गुरुदेव! अन्य कोई भी दुःख मेरे मनमें नहीं आता, परंतु अज्ञानी लोग जिनशासनकी मनचाही निंदा करते हैं वह दुःख मेरे मनमें खटक रहा है ॥७॥

गुरु कहे दुःख न आणजो, ओछुं अंश न भावे रे,
चिंतामणि तुज कर चड्यो, धर्मतणे परभावे रे. चे॰ ८

अर्थ–तब गुरु महाराजने कहा–हे मयणासुंदरी! तू मनमें किंचित् भी दुःख या हीनभाव मत लाना; क्योंकि धर्मके ही प्रतापसे तेरे हाथमें यह चिंतामणि रत्न आया है ॥८॥

वडव खती वर एह छे, होशे रायाराय रे,
शासन सोह वधारशे, जग नमशे जस पाय रे. चे॰ ९

अर्थ–यह नररत्न वर अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष (उत्तम क्षत्रिय) है अर्थात् महाभाग्यशाली है। फिर इस पुरुषका ऐसा उन्नतिका समय आयेगा कि वह राजाओंका भी राजा होगा और जैनशासनकी शोभा बढ़ायेगा, और सारी दुनिया उसके चरणोंमें झुकेगी ॥९॥

मयणा गुरुने विनवे, देई आगम उपयोग रे,
करी उपाय निवारिये, तुम श्रावक तनु रोग रे. चे॰ १०

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–तब मयणासुंदरीने गुरुसे विनती की कि हे पूज्य गुरुदेव ! आगममें उपयोग देकर किसी भी प्रकारसे आपके इस श्रावकके शरीरका कोढ़ रोग दूर करिये ॥१०॥

सूरि कहे ए साधुनो, उत्तम नहि आचार रे,
यंत्र जडी मणि मंत्र जे, औषध ने उपचार रे. चे० ११

अर्थ–तब आचार्य महाराजने कहा–यंत्र, तंत्र, जड़ी, बूटी, मणि, मंत्र, औषधि तथा अन्य उपचार बताना यह जैन मुनियोंका उत्तम आचार नहीं है ॥११॥

पण ए सुपुरुष एहथी, थाशे धर्म उद्योत रे,
तेणे एक यंत्र प्रकाशशुं, जस जग जागति ज्योत रे. चे० १२

अर्थ–परंतु यह महापुरुष है और इससे धर्मका उद्योत होनेवाला है, इसलिये हम एक ऐसा मंत्र बतायेंगे कि जिस मंत्रका जगतमें यश सदा जागृत है (अर्थात् सदा जलहल प्रभाववाला एक मंत्र बतायेंगे) ॥१२॥

श्री मुनिचंद्र गुरु तिहां, आगमग्रंथ विलोई रे,
माखणनी परे उद्धर्यो, सिद्धचक्र यंत्र जोई रे. चे० १३

अर्थ–फिर श्री मुनिचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजने, जैसे दही बिलोकर मक्खन निकालते हैं वैसे आगम-ग्रंथोंको बिलोकर अर्थात् देख-देखकर उसमेंसे श्री सिद्धचक्रजीका यंत्र तैयार किया और वह यन्त्र मयणाको विदित किया ॥१३॥

अरिहंतादिक नव पदे, ॐ ह्रीं पद संयुत्त रे,
अवर मंत्राक्षर अभिनवा, लहिये गुरुगमे तत्त रे. चे० १४

अर्थ–जिस मंत्रमें ॐ ह्रीं पदसहित अरिहंत आदि नौ पद हैं तथा और भी नये मंत्राक्षर हैं, ऐसे इस मंत्रका तत्त्व गुरुगमसे प्राप्त करना चाहिये ॥१४॥

सिद्धादिक पद चिहुं दिशे, मध्ये अरिहंत देव रे,
दरिसण नाण चरित्त ते, तप चिहुं विदिशे सेव रे. चे० १५

अर्थ–उस सिद्धचक्रजीकी स्थापना इस प्रकार करनी चाहिये कि प्रथम मध्यमें अरिहंत पद, चारों दिशाओंमें सिद्ध आदि चार पद तथा विदिशाओंमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप हो–इस प्रकार सिद्धचक्रजीका ध्यान करें ॥१५॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अष्टकमलदल इणि परे, यंत्र सकल शिरताज रे,
निर्मळ तन मन सेवतां, सारे वांछित काज रे. चे० १६

अर्थ—यों आठ कमलके पत्तेवाला, सर्व यंत्रोंमें मुकुट समान श्री सिद्ध-चक्रजीका यंत्र है, उसका जो निर्मल मन और शुद्ध कायासे सेवन करता है, उसके सर्व इच्छित कार्य पूर्ण होते हैं ॥१६॥

आसो सुदि मांहे मांडिये, सातमथी तप एह रे,
नव आंबिल करी निर्मळां, आराधो गुणगेह रे. चे० १७

अर्थ—यह तप आसोज सुदी ७ से शुरू कर नौ निर्मल आयंबिल कर गुणगृह जैसे इस नवपदकी आराधना करनी चाहिये ॥१७॥

विधिपूर्वक करी धोतियां, जिन पूजो त्रण काळ रे,
पूजा अष्ट प्रकारनी, कीजे थई उजमाळ रे. चे० १८

अर्थ—फिर विधिपूर्वक शुद्ध धोती और उत्तरासंग पहनकर उत्साहयुक्त होकर सुबह, दोपहर और शामको—यों त्रिकाल जिनेश्वर भगवानकी जल-चंदन-पुष्प-धूप-दीपक-अक्षत-नैवेद्य-फल—यों अष्ट प्रकारी पूजा करनी चाहिये ॥१८॥

निर्मळ भूमि संथारीए, धरिये शील जगीश रे,
जपिये पद एकेकनी, नोकारवाळी वीश रे. चे० १९

अर्थ—तथा निर्मल, जीव-जंतुरहित स्वच्छ भूमि पर संथारा करना चाहिये तथा जगतमें श्रेष्ठ ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिये और एक-एक पदकी बीस-बीस नौकारवाली गिननी चाहिये ॥१९॥

आठे थोईए वांदिये, देव सदा त्रण वार रे,
पडिक्कमणां दोय कीजिये, गुरुवैयावच्च सार रे. चे० २०

अर्थ—फिर प्रतिदिन आठ स्तुतियोंके साथ देववंदन तीन बार करना चाहिये, प्रतिदिन सुबह-शाम दोनों प्रतिक्रमण करने चाहिये और गुरु महाराजकी उत्तम प्रकारसे वैयावृत्य करनी चाहिये ॥२०॥

काया वश करी राखिये, वचन विचारी बोल रे,
ध्यान धर्मनुं धारिये, मनसा कीजे अडोल रे. चे० २१

अर्थ—फिर कायाको संयममें रखनी चाहिये, वचन विचारपूर्वक बोलने चाहिये और निश्चल (स्थिर) मनसे धर्मका ध्यान करना चाहिये ॥२१॥

पंचामृत करी एकठां, परिगल कीजे पखाल रे,
श्री/३ **नवमे दिन सिद्धचक्रनी, कीजे भक्ति विशाल रे. चे० २२**

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–फिर दही, दूध, घी, शक्कर और पानी–ये पंचामृत एकत्र कर सिद्धचक्रजीके यंत्रपट्टका प्रक्षाल करना चाहिये। इस प्रकार पूजाकर नौवें दिन सिद्धचक्रजीकी विस्तारसे भक्ति-पूजा करनी चाहिये ॥२२॥

सुदि सातमथी इणि परे, चैत्री पूनम सीम रे,
ओळी एह आराधिये, नव आंबिलनी नीम रे. चे० २३

अर्थ–इस प्रकार चैत्र सुदी सप्तमीसे चैत्र सुदी पूर्णिमा तक नौ आयंबिलके नियमवाली इस ओलीकी आराधना करनी चाहिये ॥२३॥

एम एकाशी आंबिले, ओली नव निरमाय रे,
साडा चार संवत्सरे, ए तप पूरण थाय रे. चे० २४

अर्थ–इस प्रकार कपटरहित एक्यासी (८१) आयंबिलसे यह तप साढ़े चार वर्षमें पूर्ण होता है ॥२४॥

उजमणुं पण कीजिये, शक्ति तणे अनुसार रे,
इह भव पर भव सुख घणां, पामीजे भव पार रे. चे० २५

अर्थ–यों यह तप पूर्ण होने पर अपनी शक्ति अनुसार उद्यापन-महोत्सव करना चाहिये। इस तपके प्रभावसे इस भव और परभवमें अनेक सुखोंको भोगकर आत्मा संसारसागरको तैर जाता है ॥२५॥

आराधन फळ एहनां, इह भव आण अखंड रे,
रोग दोहग दुःख उपशमे, जिम घन पवन प्रचंड रे. चे० २६

अर्थ–फिर इस तपकी आराधनाके फल स्वरूप इस भवमें भी कोई उसकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करता, तथा जैसे प्रचंड पवनसे मेघ बिखर जाते हैं उसी तरह रोग, दौर्भाग्य तथा सारे दुःख शांत हो जाते हैं ॥२६॥

नमण जले सिद्धचक्रने, कुष्ठ अढारे जाय रे,
वाय चोराशी उपशमे, रूझे गुंबड घाय रे. चे० २७

अर्थ–फिर श्री सिद्धचक्रजीके स्नात्रजलसे अठारह प्रकारके कोढ़ नष्ट हो जाते हैं, चौरासी प्रकारके वायु शांत हो जाते हैं तथा फोड़ा-फुंसी तथा घाव भी मिट जाते हैं ॥२७॥

भीम भगंदर भय टळे, जाय जलोदर दूर रे,
व्याधि विविध विष वेदना, ज्वर थाये चकचूर रे. चे० २८

अर्थ–तथा भयंकर भगंदर रोगका भय भी नष्ट हो जाता है, जलोदर रोग दूर भाग जाता है, विविध प्रकारकी पीड़ा, जहरकी वेदना और दुष्ट ताव आदि नष्ट हो जाते हैं ॥२८॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

खास खयन खस चक्षुना, रोग मिटे सन्निपात रे,
चोर चरड डर डाकिणी, कोई न करे उपघात रे. चे० २९

अर्थ–खांसी, क्षय, खुजली, नेत्ररोग, सन्निपात आदि रोग नष्ट हो जाते हैं तथा चोर, भूत एवं डाकिनी आदि भी उपघात नहीं कर सकते ॥२९॥

हीक हरस ने हेडकी, नारां ने नासूर रे,
पाठां पीडा पेटनी टळे, दुःख दंतना शूल रे. चे० ३०

अर्थ–दमा, अर्श, हिचकी आना, शरीरके अंगोंमें नारू (गहरा छिद्र) होना, नासूरकी व्याधि, गुदा पर होने वाला चकत्ता, और पेटकी पीड़ा–ये सब तथा दंतशूल भी नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥

निर्धनियां धन संपजे, अपुत्र पुत्रिया होय रे,
विण केवली सिद्धयंत्रना, गुण न शके कही कोय रे. चे० ३१

अर्थ–तथा निर्धन मनुष्योंको धन प्राप्त होता है, पुत्ररहितको पुत्र प्राप्त होता है। (यों सिद्धचक्रजीके प्रभावसे सर्व वांछित पूर्ण होते हैं, अतः विशेष क्या कहें?) इस सिद्धचक्रजीके गुण वास्तवमें केवली भगवानके सिवाय अन्य कोई मनुष्य कह नहीं सकता ॥३१॥

रास भलो श्रीपाळनो, तिहां ए सातमी ढाळ रे,
विनय कहे श्रोता घरे, होजो मंगल माळ रे. चे० ३२

अर्थ–इस प्रकार श्रीपाल राजाके सुंदर रासकी यह सातवीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी कहते हैं कि यह रास सुननेवालोंके घरमें मंगलकी माला होओ ॥३२॥

प्रथम खंडकी सातवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

श्री मुनिचंद्र मुनीश्वरे, सिद्धयंत्र करी दीध,
इह भव परभव एहथी, फळशे वांछित सिद्ध. १

अर्थ–इस प्रकार श्री मुनिचंद्रसूरी भगवानने सिद्धचक्रजीका यंत्रपट बनाकर दिया और कहा–इसके प्रभावसे इस भव और परभवमें मनवांछित सिद्धियाँ प्राप्त होंगी ॥१॥

श्री गुरु श्रावकने कहे, ए बेउ सुगुण निधान,
कोईक अवसर पामिये, सेवो थई सावधान. २

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—फिर गुरु भगवानने वहाँ बैठे हुए अन्य श्रावकोंको उद्दिष्ट करते हुए कहा—ये दोनों आत्मा सद्‌गुणोंके भंडार हैं। ऐसे साधर्मिक कभी-कभार ही मिलते हैं, अतः आप सावधानीपूर्वक इनकी भक्ति करें ॥२॥

साहमीना सगपण समुं, अवर न सगपण कोय,
भक्ति करे साहमी तणी, समकित निर्मळ होय. ३

अर्थ—संसारमें साधर्मिकके रिश्ते जैसा और कोई उत्तम रिश्ता नहीं है, क्योंकि साधर्मिककी भक्ति करनेसे सम्यक्त्व निर्मल होता है ॥३॥

पधरावे आदर करी, साहमी निज आवास,
भक्ति करे नवनव परे, आणी मन उल्लास. ४

अर्थ—यों गुरु भगवानके वचन सुनकर आदर सत्कारपूर्वक श्रद्धावंत श्रावक उन दोनोंको अपने घर ले गये और चित्तमें उल्लास लाकर विविध प्रकारसे उनकी भक्ति करने लगे ॥४॥

त्यां सघळो विधि साचवे, पामी गुरु उपदेश,
सिद्धचक्र पूजा करे, आंबिल तप सुविशेष. ५

अर्थ—वहाँ साधर्मिक बंधुके घर रहकर वे दोनों नवपदजीका पूजन तथा विशेष प्रकारसे आयंबिल तप आदि विधि गुरुकी आज्ञानुसार करने लगे ॥५॥

ढाल आठवीं

(देशी चौपाई छंदकी)

आसो सुदि सातम सुविचार, ओळी मांडी स्त्री भरतार,
अष्ट प्रकारी पूजा करी, आंबिल कीधां मन संवरी. १

अर्थ—अब उन पति-पत्नीने शुभभावपूर्वक आसोज सुदी सप्तमी से आयंबिल ओली शुरू की और प्रभुकी अष्टप्रकारी पूजाके साथ मनको संयममें रखकर आयंबिल करने शुरू किये ॥१॥

पहेले आंबिल मन अनुकूळ, रोगतणुं तिहां दाधुं मूळ,
अंतरदाह सयल उपशम्यो, यंत्र नमण महिमा मन रम्यो. २

अर्थ—प्रथम आयंबिलसे ही मनके अनुकूल फल होने लगा और रोगका मूल नष्ट हो गया, जिससे अंतर दाह (अंतरकी पीड़ा) सर्व शांत हो गई। अतः श्री सिद्धचक्रजीके प्रक्षालका माहात्म्य मनमें रमने लगा अर्थात् वारंवार याद आने लगा ॥२॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

बीजे आंबिल बाहिर त्वचा, निर्मळ थई जपतां जिनरूचा,
एम दिन दिन प्रति वाध्यो वान, देह थयो सोवन्न समान. ३

अर्थ–श्रद्धापूर्वक पवित्र भावसे श्री सिद्धचक्रजीका जाप जपनेसे बाहरकी चमड़ी भी निर्मल हो गयी। फिर दिनोंदिन शरीरकी कांति बढ़ने लगी जिससे शरीर सुवर्ण जैसा हो गया ॥३॥

नवमे आंबिल थयो नीरोग, पामी यंत्र नमण संयोग,
सिद्धचक्रनो महिमा जुओ, सकल लोक मन अचरिज हुओ. ४

अर्थ–नौवें आयंबिलके दिन श्री सिद्धचक्रजीके यंत्रका प्रक्षालजल शरीर पर लगानेसे शरीर नीरोगी हो गया; अतः हे भव्यजीवों! सिद्धचक्रजीका प्रभाव तो देखिये। इस प्रभावको देखकर सब लोगोंके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥४॥

मयणा कहे अवधारो राय, ए सवि सद्‌गुरुतणो पसाय,
मातपिता बंधव सुत होय, पण गुरुसम हितुओ नहि कोय. ५

अर्थ–तब मयणासुंदरी कहने लगी–हे स्वामिन्! पूज्य गुरुकी मेहरबानीसे यह सब सुख हुआ है। माता, पिता, भाई, पुत्र ये सब हितकारी हैं, फिर भी गुरुके समान कोई अन्य परमहितकारी नहीं है ॥५॥

कष्ट निवारे गुरु इह लोक, दुर्गतिथी वारे परलोक,
सुमति होय सद्‌गुरु सेवतां, गुरु दीवो ने गुरु देवता. ६

अर्थ–पूज्य गुरु भगवान इस लोकमें दुःखका नाश करते हैं और परलोकमें दुर्गतिसे रक्षा करते हैं। अतः सद्‌गुरुकी सेवा करनेसे अच्छी बुद्धि मिलती है, इसलिये गुरु दीपक समान है और गुरु देव जैसे है ॥६॥

धन गुरु ज्ञानी धन ए धर्म, प्रत्यक्ष दीठो जेहनो मर्म,
जैन धर्म परशंसे सहु, बोधिबीज पाम्या तिहां बहु. ७

अर्थ–(तब लोग कहने लगे–) धन्य हैं ऐसे ज्ञानी गुरुको! और धन्य है इस धर्मको! यों सब लोग जैनधर्मकी प्रशंसा करने लगे और कई जीव बोधिबीज (सम्यक्त्व) को प्राप्त हुए ॥७॥

सातसें रोगिष्ठोना रोग, नाठा यंत्र नमण संयोग,
तेह सातसें सुखिया थया, हरख्या निज निज थानक गया. ८

अर्थ–फिर जो सातसौ कुष्ठी थे उन सबके रोग भी सिद्धचक्रजीके प्रक्षाल जलको शरीर पर लगानेसे नष्ट हो गये, जिससे वे सब सुखी हुए और आनंदपूर्वक अपने-अपने घर चले गये ॥८॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

एक दिन जिनवर प्रणमी पाय, पाछा वळतां दीठी माय,
हर्ष धरीने चरणे नमे, मयणा पण आवी तिण समे. ९

अर्थ–अब एक दिन जिनेश्वरदेवके दर्शन-पूजन करके वापिस आते समय उंबरराणाने अपनी माताको देखा, अतः मनमें हर्षपूर्वक वह माताके चरणोंमें झुका। यह देखकर मयणासुंदरी भी वहाँ आई ॥९॥

सासु जाणी पाये पडे, विनय करंता गिरुआई चढे,
सासु वहुने दे आशिष, अचरिज देखी धुणे शीष. १०

अर्थ–मयणासुंदरी भी, मेरी सासु है ऐसा जानकर, उनके चरणोंमें पड़ी, क्योंकि विनय करनेसे महत्ता बढ़ती है। तब सासुने बहूको आशीर्वाद दिया और एकाएक पुत्रको नीरोगी देखकर आश्चर्यचकित होकर वह मस्तक हिलाने लगी ॥१०॥

कहे कुंवर माताजी सुणो, ए पसाय सहु तुम वहु तणो,
गयो रोग ने वाध्यो रंग, वळी लह्यो जिनधर्म प्रसंग. ११

अर्थ–(तब) कुँवर कहने लगा–हे माताजी! आप सुनिये। यह शरीरका सारा रोग नष्ट हुआ और यह रूप बढ़ गया और जैन धर्मकी प्राप्ति हुई–यह सारा प्रताप तुम्हारी बहूका है ॥११॥

विस्तारार्थ–सुशील बहूके लिये शास्त्रमें कहा है कि–

स्त्रीणां दोष सहस्रेऽपि, गुणत्रयं मनोरमं।
गृहाचारः सुतोत्पत्ति-र्विपत्तिः पतिना सह ॥

अर्थात् स्त्रीमें हजारों दोष हैं किन्तु सुशील स्त्री हो तो उसमें तीन बड़े गुण हैं–एक तो वह घरका व्यवहार चलाती है, दूसरा उससे वंशबेल बढ़ती है और तीसरा वह विपत्तिमें भी पतिके साथ रहती है।

सुगुण वहु निर्मळ निज नंद, देखी माय अधिक आणंद,
पूनम परे वहु तें जस लीध, सकलकला पूरण पिउ कीध. १२

अर्थ–ऐसी गुणवान बहू और निर्मल देहवाले अपने पुत्रको देखकर किस माताको आनंद न होगा? अर्थात् कमलप्रभा माताको भी सचमुच बहुत आनंद हुआ और वह कहने लगी–हे बहू! तूने पूर्णिमाकी तरह अपने पतिको सर्व कलासे पूर्ण कर यश प्राप्त किया है ॥१२॥

सुणो पुत्र कोशंबी सुण्यो, वैद्य एक वैद्यक बहु भण्यो,
तेह भणी तिहां जाउं जाम, ज्ञानी गुरु मुज मलिया ताम. १३

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–(फिर माता अपने पुत्रको सारी हकीकत कहने लगी कि) हे पुत्र ! सुन ! मैं तेरी औषधके लिए एक गाँवसे दूसरे गाँव जा रही थी तब मार्गमें सुना कि कौशांबी नगरीमें एक वैद्यकशास्त्रनिपुण वैद्य है। इसलिये मैं कौशांबीकी ओर जा रही थी, वहाँ बीचमें मुझे एक ज्ञानी गुरु महाराज मिले ॥१३॥

में पूछ्युं गुरु चरणे नमी, कर्म कदर्थन में बहु खमी,
पुत्र एक छे मुज वालहो, ते पण कर्मे रोगे ग्रह्यो. १४

अर्थ–मैंने महाराजके चरणोंमें नमस्कार कर पूछा कि हे गुरुदेव ! मैंने कर्मोंका विपाक सहन करनेमें कुछ कसर नहीं छोड़ी। मैंने बहुत ही दुःख सहन किये हैं। उसमें भी मेरे एक अत्यंत प्रिय पुत्र है वह भी पूर्वकर्मके उदयसे कुष्ठ रोगसे ग्रस्त हो गया है ॥१४॥

तेह तणो किम जाशे रोग, के नहि जाये पाप संयोग,
दया करी मुज दाखो तेह, हुं छुं तुम चरणोनी खेह. १५

अर्थ–तो हे गुरु महाराज ! आप ज्ञानी हैं। मैं आपके चरणोंकी धूल समान हूँ। अतः मुझ पर कृपा कर मुझे कहिये कि उसका रोग दूर होगा या पापके उदयसे नहीं जायेगा ? ॥१५॥

तव बोल्या ज्ञानी गुणवंत, म कर खेद सांभळ विरतंत,
ते तुज पुत्र कुष्ठीए ग्रह्यो, उंबर राणो करी जस लह्यो. १६

अर्थ–तब गुणवान ज्ञानी गुरु बोले–तू खेद न कर और तेरे पुत्रका वृत्तांत सुन। तेरे उस पुत्रको कुष्ठी लोगोंने राजाके रूपमें स्थापन किया है और उसका उंबरराणा नाम रखकर जगतमें यश फैलाया है ॥१६॥

मालवपति पुत्रीए वर्यो, तस विवाह कुष्ठीए कर्यो,
घरणी वयणे तप आदर्यो, सिद्धचक्र आराधन कर्यो. १७

अर्थ–फिर उस तेरे पुत्रने मालवदेशके राजाकी पुत्रीके साथ शादी की है और उसका विवाहोत्सव उन कुष्ठी लोगोंने किया है। फिर पत्नीके वचनसे उसने तपपूर्वक श्री सिद्धचक्रजीका आराधन किया है ॥१७॥

तेथी तुज सुत थयो नीरोग, प्रगट्यो पुण्य तणो संयोग,
वळी एहथी वधशे लाज, जीती घणां भोगवशे राज. १८

अर्थ–उस तपके प्रभावसे तेरा पुत्र रोगरहित हुआ है, क्योंकि अब उसका पुण्यकर्म उदयमें आया है। फिर नवपदके प्रभावसे उसकी बहुत शोभा बढ़ेगी और वह कई राज्योंको जीतकर उसका स्वामी होगा ॥१८॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

गुरु वचने हुं आवी आज, तुज दीठे मुज सरियां काज,
त्रणे जण हवे रहे सुख वास, लील करे साहमी आवास. १९

अर्थ–उपरोक्त गुरु वचनानुसार मैं आज यहाँ आई हूँ। तुमको देखकर मेरे सर्व मनोरथ सफल हुए हैं। इस प्रकार माताने सर्व वृत्तांत कहा। अब वे तीनों जन साधर्मिकके घर सुखपूर्वक रहने लगे और आनंद करने लगे ॥१९॥

सिद्धचक्रनो उत्तम रास, भणतां सुणतां पूगे आश,
ढाळ आठमी इणि परे सुणी, विनय कहे चित्त धरजो गुणी. २०

अर्थ–इस प्रकार श्री सिद्धचक्रजीका उत्तम रास पढ़ने और सुननेसे मनकी इच्छाएँ पूरी होती है। इसलिये महोपाध्याय विनयविजयजी कहते हैं कि हे गुणीजन! इस आठवीं ढालको सुनकर चित्तमें धारण करें ॥२०॥

प्रथम खंडकी आठवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

एक दिन जिनपूजा करी, मधुर स्वरे एक चित्त,
चैत्यवंदन कुंवर करे, सासु वहु सुणंत. १

अर्थ–अब एक दिन जिनेश्वर भगवानकी पूजा कर कुँवर एक ध्यानसे मधुर स्वरसे चैत्यवंदन कर रहे थे और सासु एवं बहू दोनों सुन रहे थे ॥१॥

मयणानी माता घणुं, दुहवाणी नृप साथ,
जब मयणा मत्सर धरी, दीधी उंबर हाथ. २

अर्थ–इधर जब प्रजापाल राजाने द्वेष धारणकर मयणासुंदरीको उंबरराणाको ब्याही थी तब मयणासुंदरीकी माता रूपसुंदरीको राजाके ऐसे वर्तनसे बहुत दुःख हुआ था ॥२॥

पुण्यपाळ नामे नृपति, निज बांधव आवास,
रीसाई आवी रही, मूके मुख निसास. ३

अर्थ–अतः वह प्रजापाल राजासे रुष्ट होकर उसी समय उसी नगरमें अपने भाई पुण्यपाल राजाके महलमें आकर रहने लगी थी और दुःखके कारण रोज मुँहसे निःश्वास भरती थी ॥३॥

जिनवाणी हियडे धरी, विसारी दुःख दंद,
आवी देव जुहारवा, तिणे दिन तिहां आणंद. ४

अर्थ–परंतु कुछ समय पश्चात् वह जिनेश्वरदेवके वचनोंको यादकर

www.jaintatvagyanshala.org

दुःखसमूहको कुछ भूलकर उस दिन आनंदपूर्वक जिनेश्वर भगवानके दर्शनके लिये वहाँ आई थी ।।४।।

माये मयणा ओळखी, अनुसारे निज बाळ,
आगळ नर दीठो अवर, यौवन रूप रसाळ. ५

अर्थ–वहाँ माताने अनुमानसे (इंगित परसे) चैत्यवंदन करती हुई अपनी पुत्री मयणाको पहचान लिया और उसके आगे कुष्ठीके स्थान पर युवावस्था और रूपसे सुशोभित कोई दूसरा पुरुष बैठा हुआ देखा ।।५।।

कुळ खंपण ए कुंवरी, कां दीधी किरतार,
जिणे कुष्ठी वर परिहरी, अवर कियो भरतार. ६

अर्थ–यह देखकर रूपसुंदरी माता सोचने लगी–हे दैव ! कुलका नाश करनेवाली अर्थात् कुलको कलंकित करनेवाली ऐसी पुत्री तूने मुझे क्यों दी ? कि जिसने कुष्ठी वरको त्यागकर दूसरा पति किया ।।६।।

वज्र पडो मुज कूखने, धिक् धिक् मुज अवतार,
रूपसुंदरी इणि परे घणुं, रूदन करे तेणि वार. ७

अर्थ–इसकी अपेक्षा तो मेरी कुक्षि पर वज्र क्यों नहीं गिरा ? अथवा मेरे जन्मको धिक्कार है कि मुझे ऐसी कुलकलंकिनी पुत्री मिली ! इस प्रकार रूपसुंदरी उस समय अत्यंत रुदन करने लगी ।।७।।

रोती दीठी दुःख भरे, मयणाए निज माय,
तव आवी उतावळी, लागी जननी पाय. ८

अर्थ–इस तरह अपनी माताको दुःखपूर्वक रोती देखकर मयणासुंदरी शीघ्र आकर अपनी माताके पैरोंमें गिरी और कहने लगी कि– ।।८।।

हरखतणे स्थानक तुमे, कां दुःख आणो माय,
दुःख दोहग दूरे गयां, श्री जिन धर्म पसाय. ९

अर्थ–हे माता ! आप हर्षके स्थान पर दुःखी क्यों हो रही है ? हमारे दुःख और दौर्भाग्य तो श्री जिनेश्वरदेवके धर्मके प्रतापसे नष्ट हो गये हैं ।।९।।

निसीहि कहीने आवियां, जिणहर मांहे जेण,
करतां कथा संसारनी, आशातन हुए तेण. १०

अर्थ–हम जिनेश्वर भगवानके मंदिरमें 'निसीही' कहकर आये हैं अतः संसारकी बातें करनेसे आशातना होती है ।।१०।।

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

हवणां रहिये छे जिहां, आवो तिणे आवास,
वात सयल सुणजो तिहां, होशे हिये उल्लास. ११

अर्थ–इसलिये हे माता ! हम अभी जहाँ रहते हैं वहाँ हमारे आवास पर आप आइये और सारी बात सुनिये, जिससे आपके हृदयमें उल्लास होगा ।।११।।

तिहां आवी बेठां मळी, चारे चतुर सुजाण,
जे दिन स्वजन मेळावडो, धन ते दिन सुविहाण. १२

अर्थ–फिर जिनमंदिरमें दर्शनकर चारों चतुर जन साधर्मिकके आवास पर जाकर इकट्ठे होकर बैठे। सचमुच वह दिन और वह घड़ी धन्य है कि जिस दिन स्वजनका मिलन होता है ।।१२।।

मयणाना मुखथी सुणी, सघळो ते अवदात,
रूपसुंदरी सुप्रसन्न थई, हियडे हरख न मात. १३

अर्थ–फिर मयणाके मुँहसे सारी हकीकत सुनकर रूपसुंदरी इतनी हर्षित हुई कि उसके हृदयमें आनंद समाता नहीं था ।।१३।।

ढाल नौवीं

(अर्ध मंडित गोरी नागिला रे–ए देशी)

वरवहु बेहु सासु मली रे, करे वेवाहण वात रे,
कमळा रूपाने कहे रे, धन तुम कुल विख्यात रे,
जुओ अगम गति पुण्यनी रे, पुण्ये वांछित थाय रे,
सवि दुःख दूर पलाय रे, जुओ अगम गति पुण्यनी रे. १

अर्थ–उस समय वर, वधू और उन दोनोंकी सासुएँ–ये चारों एकत्र हुए और दोनों समधिन बातचीत करने लगी। उसमें कमलप्रभा रूपसुंदरीसे कहने लगी–आपके प्रसिद्ध कुलको धन्य है। पुण्यकी गति अचिंत्य है, सचमुच पुण्यसे सर्व वांछित सिद्ध होता है और सर्व दुःख नष्ट होता है। अतः पुण्यकी अगम्य गति है यों विचार करो ।।१।।

वहुए अम कुळ उद्धर्युं रे, कीधो अम उपगार रे,
अमने जिनधर्म बूझव्यो रे, उतार्या दुःख पार रे. जुओ० २

अर्थ–इस बहूने हमारे कुलका उद्धार किया है और हम पर उपकार किया है, हमें जैनधर्मका बोध दिया है और दुःखसमुद्रसे पार उतारा है ।।२।।

www.jaintatvagyanshala.org

सूई जिम दोरा प्रत्ये रे, आणे कसीदो ठाम रे,
तिम वहुए मुज पुत्रनी रे, घणी वधारी माम रे. जुओ० ३

अर्थ–जैसे सूई डोरेको कशीदेमें योग्य स्थान पर ले जाती है जिससे वह शोभा देती है, वैसे ही इस पुत्रवधूने मेरे पुत्रकी बहुत इज्जत बढ़ाई है। कशीदेमें कारीगरी सूईकी है, वैसे ही यह बहू भी हमारी उन्नतिका कारण हुई है ।।३।।

रूपा कहे भाग्ये लह्या रे, अमे जमाई एह रे,
रयण चिंतामणि सारिखो रे, सुंदर तनु ससनेह रे. जुओ० ४

अर्थ–तब रूपसुंदरी कहने लगी–हमें भी पुण्यवान, चिंतामणि रत्न जैसे, सुंदर देहकांतिवाले और प्रेमाल जमाई भाग्ययोगसे मिले हैं ।।४।।

सुणवा अम इच्छा घणी रे, एहनां कुळ घर वंश रे,
प्रेमे तेह प्रकाशिये रे, जिम हीसे अम हंस रे. जुओ० ५

अर्थ–इसलिये हमें उनके कुल, घर, वंश आदि हकीकत जाननेकी बहुत उत्कंठा है उसे आप प्रेमपूर्वक कहे जिसे सुनकर हमारा आत्मा अत्यंत उल्लासको प्राप्त होगा ।।५।।

कहे कमळा रूपा सुणो रे, अंग अनोपम देश रे,
तिहां चंपानगरी भली रे, जिहां नहीं पाप प्रवेश रे. जुओ० ६

अर्थ–तब कमलप्रभा रानी कहने लगी–हे रूपसुंदरी समधिन! सुनो। अनुपम अंगदेशमें अत्यंत सुशोभित चंपा नामक नगरी है कि जहाँ पापका लेशमात्र भी प्रवेश नहीं है ।।६।।

तेह नगरनो राजियो रे, राजगुणे अभिराम रे,
सिंह थकी रथ जोडतां रे, प्रगट होये तस नाम रे. जुओ० ७

अर्थ–उस नगरमें राजाके गुणोंसे शोभित ऐसा एक राजा था और उसका नाम सिंह शब्दमें रथ शब्द जोड़नेसे प्रकट होता है अर्थात् उस राजाका नाम सिंहरथ था। आर्य नारी अपने पतिका नाम नहीं लेती, इसलिये इस युक्तिसे नाम-निर्देश किया है ।।७।।

राणी तस कमलप्रभा रे, अंग धरे गुण श्रेण रे,
कोंकणदेश नरिंदनी रे, जे सुणिये लघु बहेन रे. जुओ० ८

अर्थ–उस राजाके अनेक गुणोंकी श्रेणीसे सुशोभित ऐसी कमलप्रभा नामक रानी थी जो कोंकण देशके राजाकी छोटी बहिन थी ।।८।।

राजा मन चिंता घणी रे, पुत्र नहीं अम कोय रे,
राणी पण आरति करे रे, निशदिन झूरे दोय रे. जुओ० ९

अर्थ—उस राजाको हमेशा मनमें यही चिंता रहती थी कि हमारे एक भी पुत्र नहीं है। इससे रानी भी मनमें हमेशा दुःखी रहती थी। यों ये दोनों व्यक्ति हमेशा पुत्रके लिये झूरते थे ॥९॥

देव देहरडां मानतां रे, इच्छतां पूछतां एक रे,
राणी सुत जनम्यो यथा रे, विद्या जणे विवेक रे. जुओ० १०

अर्थ—वे राजा-रानी पुत्रके लिये अनेक देव-देवीकी मन्नतें करते थे, पुत्रकी इच्छा रखते थे और उसके उपाय पूछते थे। आखिर जैसे विद्या विवेकको जन्म देती है वैसे रानीने एक पुत्रको जन्म दिया ॥१०॥

नगरलोक सवि हरखियां रे, घर घर तोरण त्राट रे,
आवे घणां वधामणां रे, शणगार्यां घर हाट रे. जुओ० ११

अर्थ—उस समय नगरके सब लोग आनंदित हुए। प्रत्येक घरमें बन्दनवार बाँधे गये और घर तथा दूकानें सजाकर सुशोभित की गई, तथा पुत्रके लिये अनेक उपहार—रुमाल, कपड़े, टोपी आदि—आने लगे ॥११॥

राजा मन ऊलट घणो रे, दान दिये लख कोडी रे,
वैरी पण संतोषिया रे, बंदीखाना छोडी रे. जुओ० १२

अर्थ—पुत्र जन्मसे राजाके मनमें भी बहुत उत्साह था इसलिये वह लाखों-करोडों रुपयोंका दान देने लगा, शत्रुओंको भी संतुष्ट करने लगा और कारागृहमेंसे कैदियोंको छोड़ दिया ॥१२॥

धवल मंगल दिये सुंदरी रे, वाजे ढोल निसाण रे,
नाटक होवे नवनवां रे, महोत्सव अधिक मंडाण रे. जुओ० १३

अर्थ—उस समय नवयौवना सौभाग्यवती सुंदरियाँ धवलमंगल गीत गाने लगी और ढोल-नौबत बजने लगी, अनेक नये नये नाटक होने लगे। इस प्रकार बड़ा महोत्सव शुरू हुआ ॥१३॥

न्याति सज्जण सहु नोतर्यां रे, भोजन षटरस पाक रे,
पार नहीं पकवाननो रे, शालि सुरहां, घृत शाक रे. जुओ० १४

अर्थ—भोजनके लिये ज्ञातिजन तथा सगे-संबंधियोंको न्यौता दिया गया, षड्रसयुक्त भोजन बनाये गये तथा पक्वान्नोंका तो हिसाब ही नहीं था अर्थात् अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ बनाई गयी तथा उत्तम प्रकारके चावल दाल तथा घीकी स्वादिष्ट सब्जियाँ बनाई गयी ॥१४॥

भूषण अंबर पहेरामणी रे, श्रीफळ कुसुम तंबोळ रे,
केशर तिलक वळी छांटणां रे, चंदनचूआ रंगरोळ रे. जुओ० १५

अर्थ–भोजन करानेके बाद सभीको रिश्तेके अनुसार आभूषण, वस्त्र आदि भेट दिये गये तथा श्रीफल, पुष्प और मुखवास (पानबीड़ा) आदि देकर सबको सन्मानित किया गया और केसरके तिलक किये गये। फिर चंदन और गुलाबजल छाँटकर सबको खुश-खुश कर दिया गया ॥१५॥

राजरमणी अम पाळशे रे, पुण्ये लह्यो ए बाळ रे,
सजन भुआ मळी तेहनुं रे, नाम ठव्युं श्रीपाळ रे. जुओ० १६

अर्थ–फिर राजाने कहा–पुण्ययोगसे प्राप्त हुआ यह बालक हमारी राज्यलक्ष्मीका पालन करेगा। तदनुसार स्वजन तथा बुआ आदिने मिलकर उसका नाम 'श्रीपालकुँवर' निश्चित किया ॥१६॥

रास रूडो श्रीपाळनो रे, तेहनी नवमी ढाळ रे,
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगळ माळ रे. जुओ० १७

अर्थ–सुंदर श्रीपाल राजाके रासकी यह नौवीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय विनयविजयजी महाराज कहते हैं–यह रास सुनने वालोंके घर मांगलिककी माला होओ ॥१७॥

प्रथम खंडकी नौवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

पांच वरसनो जब हुओ, ते कुंवर श्रीपाळ,
ताम शूल रोगे करी, पिता पहोंतो काळ. १

अर्थ–जब यह बालक श्रीपाल पाँच बरसका हुआ तब उसके पिता सिंहरथ राजा तीव्र शूलरोगकी वेदनासे अकाल मृत्युको प्राप्त हुए ॥१॥

शिर कूटे पीटे हियो, रूवे सकल परिवार,
स्वामी तें माया तजी, कुण करशे अम सार. २

अर्थ–उस समय सारे स्वजन और संबंधी सिर कूटने लगे, छाती पीटने लगे और रोते रोते बोलने लगे–हे स्वामी! आप हमारी माया (प्रेम) छोड़कर चले गये, इसलिये अब हमारा ध्यान कौन रखेगा? ॥२॥

गया विदेशे बाहूडे, वहालां कोईक वार,
इण वाटे वोळाविया, ते न मळे बीजी वार. ३

अर्थ–जो स्नेही दूर परदेश गये हों, वे तो कभी-न-कभी वापिस आ मिलते हैं, परंतु इस लंबी मुसाफरी पर गये हुए फिर मिलते ही नहीं है ॥३॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

हेजे हसी बोलावतां, जे क्षणमां केई वार,
नजर न मंडे ते सजन, फूटे न हिया गमार. ४

अर्थ–हे निर्लज्ज हृदय! जो स्नेहपूर्वक हँसते हुए एक क्षणमें कई बार बुलाते थे, वे स्वजन आज तेरी ओर देखते भी नहीं है, फिर भी हे मूर्ख हृदय! तू फूट क्यों नहीं जाता? ॥४॥

नेह न आण्यो माहरो, पुत्र न थाप्यो पाट,
एवडी उतावळ करी, शुं चाल्या इण वाट. ५

अर्थ–फिर कमलप्रभा रानी कहने लगी–हे स्वामी! मेरा तो स्नेह भी आपने याद नहीं किया, किन्तु पुत्रको भी राजगद्दी पर नहीं बिठाया और इतनी जल्दी करके इस मार्ग पर क्यों चले गये? ॥५॥

रोती हियडे फाटते, कमळा करे विलाप,
मतिसागर मंत्री तिसे, इम समजावे आप. ६

अर्थ–इस प्रकार कमलप्रभा रानी हृदयद्रावक रुदन करती हुई अत्यंत विलाप करने लगी। तब मतिसागर मंत्री खुद आकर उसे इस प्रकार समझाने लगा ॥६॥

हवे हियडुं काठुं करी, सकल संबाहो काज,
पुत्र तुमारो नानडो, रोतां न रहे राज. ७

अर्थ–हे राजमाता! अब हृदयको मजबूत कर सारा कारभार संभालिये, क्योंकि आपका कुँवर अभी छोटा है और इस प्रकार रोनेसे कुछ राज्य भी हाथमें नहीं रहेगा ॥७॥

कमळा कहे मंत्री प्रते, हवे तुमे आधार,
राज्य देई श्रीपाळने, सफळ करो अधिकार. ८

अर्थ–तब कमलप्रभा रानी मंत्रीसे कहने लगी–अब आप ही हमारे लिये आधारभूत है, अतः श्रीपाल कुँवरको राज्य देकर आप अपने अधिकारको सफल कीजिये ॥८॥

ढाल दसवीं

(राग-रामग्रीवा मारु, जगतगुरु हीरजी रे–ए देशी)

मृत कारज करी रायनां रे, सकल निवारी शोक,
मतिसागर मंत्रीसरे रे, थिर कीधां सवि लोक,
देखो गति दैवनी रे, दैव करे ते होय, कुणे चाले नहीं रे. १

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–फिर राजाके मरण संबंधी सभी कार्य पूर्ण कर सारा शोक दूर करके मतिसागर मंत्रीश्वरने सब लोगोंको स्थिर किया। सचमुच कर्मकी गति तो देखिये ! कर्म जो करता है वही होता है, उसमें किसीका कुछ भी बस नहीं चलता ॥१॥

राज ठवी श्रीपाळने रे, वरतावी तस आण,
राजकाज सवि चालवे रे, मंत्री बहु बुद्धि खाण. देखो० २

अर्थ–मंत्रीने श्रीपालकुँवरको राज्यगद्दीपर बिठाकर उसकी आज्ञा सर्वत्र फैलायी और अत्यंत बुद्धिके निधान समान मंत्री राज्यके सारे कामकाज चलाने लगा ॥२॥

इण अवसर श्रीपाळनो रे, पितरीओ मतिमूढ,
परिकर सघळो पालटी रे, गूझ करे इम गूढ. देखो० ३

अर्थ–ऐसे समयमें श्रीपालकुँवरका मतिमूढ़ (जिसकी बुद्धि बिगड़ गई है ऐसा) पित्र्य चाचा अजितसेन सर्व परिवारके लोग, मंत्री, सामन्त, नौकर, सेना आदिको फोड़कर इस प्रकार गुप्त षड्यंत्र करने लगा ॥३॥

मतिसागरने मारवा रे, वळी हणवा श्रीपाळ,
राज लेवा चंपातणुं रे, दुष्ट थयो उजमाळ. देखो० ४

अर्थ–वह दुष्ट अजितसेन मतिसागर मंत्री और श्रीपालकुँवरको मारकर चंपानगरीका राज्य लेनेके लिये तैयार हो गया ॥४॥

किमहिक मंत्रीसर लही रे, ते वैरीनी वात,
राणीने आवी कहे रे, नासो लेई मधरात. देखो० ५

अर्थ–इधर मतिसागर मंत्रीने वैरीकी योजना किसी तरह गुप्तचर पुरुषोंके द्वारा जान ली, अतः वह रानीके पास आकर कहने लगा–हे माता ! आप बालकको लेकर आधी रातको कहीं पर भाग कर चली जाइये, अन्य कोई जीनेका रास्ता नहीं ॥५॥

जो जाशो तो जीवशो रे, सुत जीवाडण काज,
कुंवर जो कुशलो हशे रे, तो वळी करशो राज. देखो० ६

अर्थ–हे माता ! कुँवरको बचानेके लिये अगर आप भाग जायेगी तभी आप और कुँवर जिंदा रह सकेंगे। और यदि कुँवर कुशल अर्थात् जिंदा रहा तो फिर भविष्यमें राज्य कर सकोगे ॥६॥

राणी नाठी एकली रे, पुत्र चडावी केड,
उवटे उजाती पडे रे, विसमी जिहां छे वेड. देखो० ७

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–इस प्रकार मंत्रीके वचन सुनकर रानी पुत्रको कमरमें बिठाकर अकेली जंगल ही जंगलमें चल पड़ी और जहाँ भयंकर उलटा-सीधा वीरान रास्ता था ऐसे बनमें पहुँच गई ॥७॥

जास झडोझड झांखरां रे, खाखर भाखर खोह,
फणिधर मणिधर ज्यां फरे रे, अजगर उंदर गोह. देखो० ८

अर्थ–वहाँ बनमें सूखे पत्तेवाले और कंटीले पेड़ खचाखच रहे हुए हैं, पलाशके पत्तोंके ढेर, पर्वतका टेकरा, बड़े-बड़े पत्थर हैं, बड़े-बड़े साँप, मणिको धारण करनेवाले साँप, अजगर, जंगली चूहे, पाटला गोह, चंदन गोह आदि इधरसे उधर दौड़ादौड़ कर रहे हैं ॥८॥

उजडे अबला रडवडे रे, रयणी घोर अंधार,
चरणे खूंचे कांकरा रे, वहे लोहीनी धार. देखो० ९

अर्थ–उजाड मार्गमें भयंकर अंधेरी रातमें शरणरहित वह अबला (स्त्री) भटक रही है, जिससे उसके पैरोंमें कंटक और कंकड़ फँसनेसे खूनकी धारा बह रही है ॥९॥

वरू वाघ ने वरघडां रे, सोर करे शियाळ,
चोर चरड ने चीतरा रे, दिये उछळती फाळ. देखो० १०

अर्थ–इस भयंकर मार्गमें भेड़िया, बाघ, भालू, सियार, चीत्ता आदि जंगली प्राणी कोलाहल कर रहे हैं तथा चोर, डकैत और भूत-प्रेत इधर-उधर घूम रहे हैं और लंबी छलांगें मार रहे हैं ॥१०॥

घू घू घू घूअड करे रे, वानर पाडे हीक,
खळ खळ पर्वतथी पडे रे, नदी निझरणां नीक. देखो० ११

अर्थ–वहाँ उल्लू घू-घू शब्द कर रहे हैं, बंदर हुक-हुक आवाज कर रहे हैं और पर्वत परसे इनदियाँ, झरने और नहरें निकलती हुई खलबली मचा रही हैं ॥११॥

बळियुं बेउनुं आउखुं रे, सत्य शियळ संघात,
वखत बळी कुंवर वडो रे, तिणे न करे कोई घात. देखो० १२

अर्थ–ऐसे भयंकर जंगलमें भी दोनोंका आयुष्य बलवान होनेसे और उनके साथ सत्य और शीलरूप रक्षक होनेसे तथा कुँवर महाभाग्यशाली होनेसे हिंसक प्राणी भी उन्हें परेशान नहीं करते ॥१२॥

रयण हिंडोळे हिंचती रे, सूती सोवन खाट,
तस शिर इम वेळा पडी रे, पडो दैव शिर दाट. देखो० १३

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–अहो ! जो रानी रत्नजड़ित झूलेमें झूलती थी और सुवर्ण पलंगमें सोती थी, उस रानीके सिर पर ऐसी विषम आपत्ति आ पड़ी है, इसलिये (कवि कहते हैं कि) इस कर्मके सिरपर धूल पड़ो अर्थात् ऐसे कर्मको धिक्कार है ।।१३।।

रडवडतां रयणी गई रे, चढी पंथ शिर शुद्ध,
तव बाळक भूख्यो थयो रे, मांगे साकर दूध. देखो० १४

अर्थ–इस प्रकार भटकते भटकते रात्री पूरी हो गई और प्रातः होने पर रानीको शुद्ध मार्ग (मुख्यमार्ग) मिल गया। इतनेमें बालकको भूख लगी और वह शक्कर मिश्रित (मीठा) दूध माँगने लगा ।।१४।।

तव रोती राणी कहे रे, दूध रह्यां वत्स दूर,
जो लहिये हवे कूकशा रे, तो लह्यां कूर कपूर. देखो० १५

अर्थ–तब राजमाता रोती रोती कहने लगी–हे पुत्र ! दूध और शक्कर तो हमसे बहुत दूर है। अब यदि चावलका भूसा मिले तो वह भी कपूर जैसे उज्ज्वल भात जैसा मानना पड़ेगा ।।१५।।

हवे जातां मार्गे मळी रे, एक कुष्ठीनी फोज,
रोगी मळिया सातसें रे, हींडे करता मोज. देखो० १६

अर्थ–इस प्रकार बालकको समझाती हुई माता आगे चली। इतनेमें एक कुष्ठियोंकी फौज सामने मिली। उस फौजमें सातसौ कोढ़रोगवाले कुष्ठी लोग इकट्ठे होकर आनन्द करते हुए चल रहे थे ।।१६।।

कुष्ठीए पूछ्या पछी रे, सयल सुणावी वात,
वळतुं कुष्ठी इम कहे रे, आरति म करो मात. देखो० १७

अर्थ–उन कोढ़ियोंने राणीसे (रास्तेमें अकेली जाती हुई देखकर उसका कारण) पूछा, तब रानीने सारी हकीकत कह सुनायी। तब कोढियोंने जवाबमें कहा–हे माता ! अब आप किंचित् भी खेद न करें ।।१७।।

आवी अम शरणे हवे रे, मन राखो आराम,
ए कोई अम जीवतां रे, कोई न ले तुम नाम. देखो० १८

अर्थ–हे माता ! अब आप हमारी शरणमें आये हैं अतः चित्तमें शांति रखें। जब तक हम जिंदा है तब तक कोई भी व्यक्ति आपका नाम नहीं ले सकेगा ।।१८।।

श्री/४

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

वेसर आपी बेसवा रे, ढांकी सघळुं अंग,
बाळक राखी सोडमां रे, बेठी थई खडंग. देखो० १९

अर्थ–फिर उन कोढियोंने उन्हें बैठनेके लिये एक खच्चर दिया और बालकका पूरा शरीर कपड़ेसे ढँक दिया। फिर राजमाता बालकको गोदमें लेकर तनकर बैठ गई ॥१९॥

एहवे आव्यां शोधतां रे, वैरीना असवार,
कोई स्त्री दीठी इहां रे, पूछे वारोवार. देखो० २०

अर्थ–इतनेमें शत्रुके सैनिक खोजते खोजते वहाँ आये और 'किसी स्त्रीको यहाँ देखा है?' यों बारबार पूछने लगे ॥२०॥

कोई इहां आव्युं नथी रे, जूठ म झंखो आळ,
वचन न मानो अम तणुं रें, नयणे जुओ निहाळ. देखो० २१

अर्थ–तब कोढ़ियोंने कहा–यहाँ कोई आया नहीं है। हम पर व्यर्थ कलंक मत दो। यदि हमारे वचनका विश्वास न हो तो आप खुद हमारे झुंडमें घूम कर देख लो ॥२१॥

जो जोशो तो लागशे रे, अंगे रोग असाध,
नाठा बीहता बापडा रे, वळगे रखे विराध. देखो० २२

अर्थ–परंतु यदि हमारे झुंडमें देखने जाओगे तो हमारे स्पर्शसे यह असाध्य कोढ़ रोग तुम्हारे शरीरको लग जायेगा। यह सुनकर वे बिचारे भयभीत होकर भाग गये, क्योंकि क्वचित् छूतका रोग लग जाय तो अपनी हालत बिगड़ जायेगी ॥२२॥

कुष्ठी संगतिथी थयो रे, सुतने उंबर रोग,
माडी मन चिंता घणी रे, कठिन करमना भोग. देखो० २३

अर्थ–फिर बालकको कोढ़ियोंकी संगतिसे (स्पर्शसे) उंबर जातिका कोढ़ रोग हो गया। उस समय माताके मनमें बहुत ही चिंता होने लगी और सोचने लगी कि यह भी मेरे दुष्ट कर्मोंका फल है ॥२३॥

पुत्र भळावी तेहने रे, माता चाली विदेश,
वैद्य ओषड जोवा भणी रे, सहेती घणा किलेश. देखो० २४

अर्थ–पश्चात् माता अपने पुत्रको कोढियोंको सौंपकर वैद्य तथा औषधी ढूँढनेके लिये अनेक प्रकारके कष्टोंको सहन करती हुई परदेश गई ॥२४॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ज्ञानीने वचने करी रे, सयल फली मुज आश,
तेह ज हुं कमळप्रभा रे, आ बेठी तुम पास. देखो० २५

अर्थ–इतनेमें ज्ञानी भगवानके वचनोंसे मेरे सर्व मनोरथ पूर्ण हुए और वही मैं कमलप्रभा यहाँ आपके सामने बैठी हुई हूँ ।।२५।।

रास रूडो श्रीपाळनो रे, तेहनी दशमी ढाळ,
विनय कहे पुण्ये करी रे, दुःख थाये विसराल. देखो० २६

अर्थ–इस प्रकार श्रीपाल राजाके सुंदर रासकी यह दसवीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि पुण्यसे सारे दुःख नष्ट होते हैं ।।२६।।

प्रथम खंडकी दसवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

रूपसुंदरी श्रवणे सुणी, विमळ जमाई वंश,
हरखे हियडे गहगही, इणि परे करे प्रशंस. १

अर्थ–इस प्रकार जँवाईके उत्तम वंशका वर्णन सुनकर रूपसुंदरीके हृदयमें हर्ष उमड़ आया, इसलिये वह इस प्रकार प्रशंसाके वचन कहने लगी ।।१।।

वखतवंत मयणा समी, नारी न को संसार,
जेणे बेउ कुळ उद्धर्यां, सती शिरोमणि सार. २

अर्थ–इस संसारमें मयणासुंदरी जैसी महाभाग्यशाली अन्य कोई स्त्री नहीं है। सतियोंमें शिरोमणि जैसी इस मयणासुंदरीने दोनों कुलोंका उद्धार किया है ।।२।।

वर पण पुण्ये पामियो, नरपति निर्मळ वंश,
पुत्र सिंहरथ रायनो, क्षत्रियकुळ अवतंस. ३

अर्थ–विशेषमें इस मयणासुंदरीने निर्मल वंशवाले, क्षत्रियकुलमें मुकुट जैसे और सिंहरथ राजाके पुत्रको पतिके रूपमें पुण्ययोगसे ही पाया है ।।३।।

रूपसुंदरी रंगे जई, वात सुणावी सोय,
निज बंधव पुण्यपाळने, ते पण हरखित होय. ४

अर्थ–इस प्रकार मयणासुंदरीकी प्रशंसाकर रूपसुंदरी बहुत हर्षित हुई और अपने पियर जाकर अपने भाई पुण्यपाल राजाको सारी बात कह सुनाई। यह बात सुनकर वह भी बहुत खुश हुआ ।।४।।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

चतुरंगी सेना सजी, साथ सबल परिवार,
तेजी तुरिय नचावता, अवल वेष असवार. ५

अर्थ–(फिर भाणेज-जँवाईको अपने घर बुलानेके लिये) वह चतुरंगी सेना तैयार कर बड़े परिवारके साथ जातिवान घोड़ोंको नचाते हुए सुंदर वस्त्रोंमें सज्ज घुड़सवारोंको साथ लेकर तथा– ॥५॥

रतन जडित झलके घणां, धर्या सूरियां पान,
ढोल नगारां गडगडे, नेजा फुरे निशान. ६

अर्थ–रत्नजडित जगजगाते हुए सूर्यमुखियोंको साथ लेकर तथा ढोल-नगारोंके गडगडाटके साथ और फहरते हुए पंचरंगी झंडोंके साथ– ॥६॥

भाणेजी वर जिहां वसे, तिहां आव्या तत्काळ,
निज मंदिर पधराववा, पुण्यवंत पुण्यपाळ. ७

अर्थ–इस प्रकार सर्व सामग्री तैयार कर पुण्यवान ऐसा पुण्यपाल राजा श्रीपालको अपने महलमें ले जानेके लिये, जहाँ भाणेज जँवाई ठहरे हुए थे वहाँ आया ॥७॥

ढाल ग्यारहवीं

(राय कहे राणी प्रत्ये, सुण कामिनी रे–ए देशी)

आवो जमाई प्राहुणा, जयवंताजी,
अम घर करो पवित्र रे गुणवंताजी,
सहुने अचरिज ऊपजे, जयवंताजी,
सुणतां तुम चरित्र रे गुणवंताजी. १

अर्थ–फिर पुण्यपाल राजा कहने लगा–हे जयवंत जँवाईराज! हमारे यहाँ पधारिये और हमारा घर पवित्र कीजिये। आपका चरित्र सुनकर हम सबको बहुत आश्चर्य उत्पन्न हुआ है ॥१॥

गज बेसारी उत्सवे, जय० पधराववा निज गेह रे गुण०
माउल ससरो पूरवे, जय० भोग भला धरी नेह रे गुण० २

अर्थ–इस प्रकार विनंती कर बड़े महोत्सवपूर्वक हाथी पर बिठाकर अपने घर ले आया और वहाँ ममियाससुर सर्व भोगोंके योग्य सर्व सामग्री अत्यंत स्नेहपूर्वक पूरने लगा ॥२॥

एक दिन बेठा माळिये, जय० मयणा ने श्रीपाळ रे गुण०
वाजे छंदे नवनवे, जय० मादल भुंगल ताल रे गुण० ३

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–अब एक दिन मयणासुंदरी और श्रीपालकुँवर महलके झरोख़ेमें बैठे थे और उनके आगे विविध प्रकारसे मृदंग, भूंगल (एक वाद्य) और ताल बज रहे थे ॥३॥

राय राणी रंगे जुए, जय० थेई थई नाचे पात्र रे गुण०
भरह भेद भावे भला, जय० वाळे परि परि गात्र रे गुण० ४

अर्थ–बत्तीस प्रकारके नाटकके भेदोंको जाननेवाली नई नई नर्तकियाँ अपने अंगोंको बारबार मोड़ती हुई थै थै करती हुई नाच रही थी उसे श्रीपालराजा और मयणासुंदरी आनंदपूर्वक देख रहे थे ॥४॥

इण अवसर रयवाडीथी, जय० पाछो वळियो राय रे गुण०
नृत्य सुणी ऊभो रह्यो, जय० प्रजापाळ तिण ठाय रे गुण० ५

अर्थ–इतनेमें शिकारके लिये गया हुआ प्रजापाल राजा अपने महलकी ओर वापिस लौट रहा था, वहाँ रास्तेमें नृत्यका सुंदर आवाज सुनकर उसे सुननेके लिये खड़ा रहा ॥५॥

सुख भोगवतां स्वर्गनां, जय० दीठां स्त्री भरतार रे गुण०
नयणे लाग्यो निरखवा, जय० चित चमक्यो तिण वार रे गुण० ६

अर्थ–वहाँ झरोखेमें स्वर्गके देवोंकी तरह सुख भोगते हुए पति-पत्नीको देखा। जब वह उनकी ओर एक ध्यानसे देखने लगा तब एकदम (एकाएक) चित्तमें चौंक उठा ॥६॥

ततक्षण मयणा ओळखी, जय० मन उपन्यो संताप रे गुण०
अवर कोई वर पेखियो, जय० है है प्रगट्युं पाप रे गुण० ७

अर्थ–क्योंकि उसने तुरत ही मयणासुंदरीको पहचान लिया और इसलिये राजाको मनमें बहुत दुःख हुआ क्योंकि मयणासुंदरीको जिसके साथ ब्याहा थी उसको छोड़कर अन्य पुरुषको मयणाके साथ बैठा हुआ देखा। अतः वह मनमें सोचने लगा–हाय! हाय! आखिर पाप प्रकट हुआ, खुल गया ॥७॥

धिक धिक क्रोधतणे वशे, जय० में अविचार्युं कीध रे गुण०
मयणा सरखी सुंदरी, जय० कोढीने कर दीध रे गुण० ८

अर्थ–मुझे भी धिक्कार हैं कि मैंने भी क्रोधवश होकर बिना सोचे-समझे अविचारित काम किया और मयणा जैसी सुंदरी कोढ़ीके हाथमें दे दी ॥८॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ए पण हुई कुलखंपणी, जय० मुज कुल भरियो छार रे गुण०
परण्यो प्रीतम परिहरी, जय० अवर कियो भरतार रे गुण० ९

अर्थ–अरे! यह कुँवरी भी कुलको कलंकित करनेवाली निकली! उसने मेरे कुलकी इज्जतको धूलमें मिला दिया और परिणीत पतिको छोड़कर दूसरा पति कर दिया ॥९॥

इणि परे ऊभो झूरतो, जय० जब दीठो ते राय रे गुण०
पुण्यपाल अवसर लही, जय० आवी प्रणमे पाय रे गुण० १०

अर्थ–इस प्रकार खड़े खड़े झूरते हुए राजाको जब पुण्यपालने देखा तब मौका देखकर वह आकर राजाके चरणोंमें झुका और विनंती करने लगा– ॥१०॥

राज पधारो मुज घरे, जय० जुओ जमाई रूप रे गुण०
सिद्धचक्र सेवा फळी, जय० ते कह्युं सकल स्वरूप रे गुण० ११

अर्थ–हे राजन्! मेरे घर पधारिये और जँवाईका रूप तो देखिये। प्रगट-प्रभावी श्री सिद्धचक्रजीकी उपासना (सेवा) फलीभूत हुई है, यों कहकर संक्षेपमें सारी हकीकत राजाको पुण्यपालने कह सुनायी ॥११॥

राये आवी ओळख्यो, जय० मुख इंगित आकार रे गुण०
मन चिंते महिमानिलो, जय० जैनधर्म जगसार रे गुण० १२

अर्थ–तब प्रजापाल राजाने भी देहलक्षण तथा मुँहके आकार परसे अपने जँवाईको पहचान लिया और जैनधर्मका अचिंत्य प्रभाव देखकर मनमें सोचने लगा कि जैनधर्मकी महिमा अपरंपार है और जैनधर्म ही जगतमें सारभूत है ॥१२॥

मयणा तें साची कही, जय० सभामांहे सवि वात रे गुण०
में अज्ञानपणे कह्युं, जय० ते सघळुं मिथ्यात रे गुण० १३

अर्थ–फिर प्रजापाल राजा मयणासुंदरीसे कहने लगा–हे मयणा! तूने सभामें जो बात कही थी वह सब सत्य साबित हुई और मैंने अज्ञानवश जो तूझे कहा था वह सब मिथ्या सिद्ध हुआ ॥१३॥

में तुज दुःख देवा भणी, जय० कीधो एह उपाय रे गुण०
दुःख टळीने सुख थयुं, जय० ते तुज पुण्य पसाय रे गुण० १४

अर्थ–यद्यपि मैंने तुझे दुःख देनेके लिये ये सारे उपाय किये थे (अर्थात्

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तुझे कोढीके साथ ब्याहा था), फिर भी वह दुःख मिटकर तुझे सुखकी प्राप्ति हुई–यह सब तेरे पुण्यका ही प्रताप है ॥१४॥

मयणा कहे सुणो तातजी, जय० इहां नहीं तुम वांक रे गुण०
जीव सयल वश कर्मने, जय० कुण राजा कुण रांक रे गुण० १५

अर्थ–पिताके वचन सुनकर मयणासुंदरी कहने लगी–हे पिताजी ! इसमें आपका कोई दोष नहीं है। क्योंकि सभी जीव कर्मके आधीन है। सचमुच ! राजा और रंक सभी अपने-अपने कर्मके अनुसार सुख-दुःखको प्राप्त होते हैं ॥१५॥

मान तजी मयणातणी, जय० राये मनावी माय रे गुण०
सजन सवि थयां एकमनां जय० ऊलट अंग न माय रे गुण० १६

अर्थ–फिर प्रजापाल राजाने मानका त्यागकर मयणासुंदरीकी माता जो नाराज होकर पीहर चली गई थी उसको मनाया और सभी स्वजन एक मनवाले हुए अर्थात् सभीके मन मिल गये जिससे सबके मनमें बेहद आनंद हुआ ॥१६॥

नयर सयल शणगारियुं, जय० चहुटां चोक विशाळ रे गुण०
घर घर गुडी ऊछळे, जय० तोरण झाक झमाळ रे गुण० १७

अर्थ–अब राजाने जँवाईको अपने महलमें ले जानेके लिये सारे नगरको सजाया, बाजार और चौक सर्वत्र शोभा की, इतना ही नहीं, किन्तु घर-घरमें जगमगाते हुए तोरन बँधवाये और अबील-गुलाल उछलने गये ॥१७॥

घरे जमाई महोत्सवे, जय० तेडी आव्यो राय रे गुण०
संपूरण सुख भोगवे, जय० सिद्धचक्र सुपसाय रे गुण० १८

अर्थ–इस प्रकार महोत्सवपूर्वक राजा जमाई श्रीपाल कुँवरको अपने महलमें ले गया। वहाँ वह दंपति श्री सिद्धचक्रजीके प्रतापसे अनेक प्रकारके संपूर्ण सुख भोगने लगा ॥१८॥

नयर मांहे परगट थई, जय० मुख मुख एहि ज वात रे गुण०
जिनशासन उन्नति थई, जय० मयणाए राखी ख्यात रे गुण० १९

अर्थ–उस समय सारे शहरमें सब लोगोंके मुँहसे यही बात निकल रही थी कि "जैन शासनकी उन्नति हुई और मयणासुंदरीने कर्मवादकी सत्यताको सिद्ध किया कि अपने ही कर्मोंसे जीव सुखी-दुःखी होता है।" ॥१९॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

रास रूडो श्रीपालनो, जय० तेहनी अग्यारमी ढाळ रे गुण०
विनय कहे सिद्धचक्रनी, जय० सेवा फळी तत्काळ रे गुण० २०

अर्थ–इस प्रकार सुंदर श्रीपाल राजाके रासकी ग्यारहवीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि श्रीपाल राजाको श्री सिद्धचक्रजीकी सेवा तत्काल फलीभूत हुई ॥२०॥

प्रथम खंडकी ग्यारहवीं ढाल समाप्त

चौपाई छंद

खंडखंड मीठो जिम खंड, श्री श्रीपाळ चरित्र अखंड,
कीर्तिविजय वाचकथी लह्यो, प्रथम खंड इम विनये कह्यो. २१

अर्थ–जैसे गन्नेके पहले टुकडेसे दूसरेमें अधिक मिठास होती है, उससे भी तीसरे टुकडेमें और अधिक मिठास होती है, उसी तरह इस श्रीपाल राजाके रासके पहले खंडकी अपेक्षा दूसरेमें, दूसरेकी अपेक्षा तीसरेमें और तीसरेकी अपेक्षा चौथेमें अधिक मिठास है। ऐसे अखंड श्रीपालके चरित्रवाला यह प्रथम खंड अपने गुरु महोपाध्याय श्री कीर्तिविजयजी महाराजसे प्राप्तकर श्री विनयविजयजी महाराजने रासके रूपमें गूंथितकर कहा ॥२१॥

श्रीमत् महोपाध्याय श्री कीर्तिविजय गणिके शिष्य उपाध्याय श्री विनयविजयजी गणि रचित श्री श्रीपालराजाके रासमें श्रीपालकुँवर और मयणासुंदरीका विवाह, श्री सिद्धचक्रजीकी आराधनासे प्राप्त नीरोगिता, कमलप्रभा और रूपसुंदरीका मिलन तथा श्रीपालराजाके पूर्व इतिहासका वर्णन इत्यादि हकीकतवाला प्रथम खंड पूर्ण हुआ।

प्रथम खंड संपूर्ण

www.jaintatvagyanshala.org

द्वितीय खंड

दोहा छंद

सिद्धचक्र आराधतां, पूरे वांछित क्रोड,
सिद्धचक्र मुज मन वस्युं, विनय कहे कर जोड. १

अर्थ—श्री सिद्धचक्रजीकी आराधना करनेसे करोड़ों मनवांछित पूर्ण होते हैं। इसीलिये महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज हाथ जोड़कर कहते हैं कि श्री सिद्धचक्रजी मेरे मनमें बसे हुए है ॥१॥

शारद सार दया करी, दीजे वचन विलास,
उत्तर कथा श्रीपालनी, कहेवा मन उल्लास. २

अर्थ—हे सरस्वती देवी ! अब श्रीपाल राजाकी अगली कथा कहनेके लिये मेरा मन उल्लसित हो रहा है। इसलिये कृपा करके वह आगेकी कथा कहनेके लिये श्रेष्ठ वाणीका विलास दीजिये ॥२॥

एक दिन रमवा नीकळ्यो, चहुटे कुंवर श्रीपाल,
सबल सैन्यशुं परिवर्यो, यौवन रूप रसाल. ३

अर्थ—अब एक दिन युवान और सुरूपसंपन्न श्रीपालकुँवर बड़े सैन्यसे परिवरित होते हुए बाजारमें घूमनेके लिये निकला ॥३॥

मुख सोहे पूरण शशी, अर्ध चन्द्र सम भाल,
लोचन अमिय कचोलडां, अधर अरुण परवाल. ४

अर्थ—उस समय श्रीपाल कुँवरका मुँह पूर्ण चंद्रकी तरह शोभित हो रहा था, उसका ललाट अष्टमीके अर्धचंद्रकी तरह शोभा दे रहा था, उसके नेत्र अमृतसे भरे हुए कटोरेकी तरह शोभित हो रहे थे और उसके दोनों होठ लाल मूँगेकी तरह शोभित हो रहे थे ॥४॥

दंत जिस्या दाडिम कळी, कंठ मनोहर कंबु,
पुर कपाट परि हृदयतट, भुज भोगल जिम लंबु. ५

अर्थ—उसके दाँत दाडिमकी कलीकी तरह शोभते थे, कंठ शंखकी तरह मनोहर लग रहा था, उसका हृदय प्रदेश नगरके द्वारकी तरह विशाल दीखता था और उसकी लंबी भुजाएँ भुंगल (एक वाजिंत्र) की तरह शोभती थी ॥५॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

केड लंक केहरि समो, सोवन वन्न शरीर,
फूल खरे मुख बोलतां, ध्वनि जलधर गंभीर. ६

अर्थ—उसकी कमरका मध्यभाग केशरी सिंहकी तरह शोभता था, उसके शरीरका वर्ण सुवर्ण जैसा था। जब वह कुँवर बोलता था तब मानो उसके मुँहमेंसे फूल झरते हो ऐसे मधुर उसके वचन थे। मेघ जैसा गंभीर उसका स्वर था ॥६॥

चोक चोक चहुटे मल्या, रूपे मोह्यां लोक,
महेल गोख मेडी चडे, नर नारीना थोक. ७

अर्थ—ऐसे विशिष्ट श्रीपालकुँवरके सुंदर रूपको देखकर मोहित होते हुए लोग उसे देखनेके लिये बाजार और चौकमें इकट्ठे होने लगे। कितने ही नर-नारीके झुंड तो महलके झरोखेमें बैठकर और मकानके ऊपर चढ़कर कुँवरको देखने लगे ॥७॥

मुग्धा पूछे मायने, मा ए कुण अभिराम,
इन्द्र चंद्र के चक्कवी, श्याम राम के काम. ८

अर्थ—उस समय एक भोली बालिका अपनी मातासे पूछने लगी—हे माता! यह मनोहर पुरुष कौन है? क्या वह इंद्र है? चंद्र है? चक्रवर्ती है? कृष्ण है? राम है? या कामदेव है? ॥८॥

माय कहे मोटे स्वरे, अवर म झंखो आळ,
जाय जमाई रायनो, रमवा कुंवर श्रीपाळ. ९

अर्थ—तब माताने ऊँची आवाजमें जवाब दिया—हे पुत्री! तू उल्टी-सीधी बातें मत कर। यह तो अपने राजाका जमाई श्रीपालकुँवर क्रीड़ा करनेके लिये जा रहा है ॥९॥

वचन सुणी श्रीपाळने, चित्तमां लागी चोंक,
धिक् ससरा नामे करी, मुज ओळखावे लोक. १०

अर्थ—वृद्धाके ऐसे वचन सुनकर श्रीपालराजाके मनको आघात लगा और वह सोचने लगा—धिक्कार है मुझे कि लोग मेरी ससुरके नामसे पहचान देते हैं ॥१०॥

उत्तम आप गुणे सुण्या, मज्झिम बाप गुणेण,
अधम सुण्या माउल गुणे, अधमाधम ससुरेण. ११

अर्थ—(कहावत है कि) जो अपने गुणसे पहचाने जाते हैं वे उत्तम पुरुष

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कहलाते हैं, जो पिताके गुणोंके पहचाने जाते हैं वे मध्यम पुरुष हैं, जो ननिहालके पक्षसे (अर्थात् मामाके नामसे) पहचाने जाते हैं वे अधम पुरुष कहलाते हैं और जो ससुरके नामसे पहचाने जाते हैं वे अधमाधम पुरुष कहलाते हैं। (इसलिये मैं भी अधमाधम ही कहलाऊँगा न?) ॥११॥

ढाल पहली

(राग-जयश्री, चतुर सनेही मोहना—ए देशी)

क्रीडा करी घरे आवियो, चपल चित्त श्रीपालो रे,
उच्चक मन देखी करी, बोलावे प्रजापालो रे. क्री० १

अर्थ—फिर क्रीड़ा करके विचक्षण चित्तवाळा श्रीपालकुँवर घर आया। उसका ऊँचा (विक्षिप्त) मन देखकर प्रजापाल राजा उससे पूछने लगे— ॥१॥

राज कोणे आज रीसव्या, कोणे लोपी तुम आण रे,
दीसो छो कांई दुमणा, तुम चरणे अम प्राण रे. क्री० २

अर्थ—हे राजकुँवर! आज आपको किसने क्रुद्ध किया है? या आपकी आज्ञाका किसने उल्लंघन किया है? वह कहिये; क्योंकि आज आप कुछ उदास मनवाले दीख रहे हैं। ये हमारे प्राण भी आपके चरणोंमें ही अर्पण है ॥२॥

चित्त चाहो तो आपणुं, लीजे चंपा राज रे,
छडे प्रयाणे चालिये, सबल सैन्य लई साज रे. क्री० ३

अर्थ—हे राजकुँवर! यदि आपकी इच्छा अपने पिताका राज्य स्वाधीन करनेकी हो तो बड़े सैन्यको सज्जकर चंपानगरीका राज्य लेनेके लिये रणभेरी बजाकर प्रयाण करे ॥३॥

कुंवर कहे ससरा तणे, बळे न लीजे राज रे,
आप पराक्रम जिहां नहीं, ते कुण आवे काज रे. क्री० ४

अर्थ—तब कुँवर कहने लगा—ससुरके बलसे राज्य लेना योग्य नहीं है, क्योंकि जहाँ अपना पराक्रम न हो वहाँ दूसरोंका बल क्या कामका? ॥४॥

विस्तारार्थ—एक नीति शास्त्रमें कहा है—

जा नरमें पराक्रम नहीं, ता नर पशु समान,
बाल खेलावे ताहकु, जैसे लिखित चित्राम. १

अर्थात् जिस मनुष्यमें अपना पराक्रम नहीं है, शूरवीरता नहीं है, वह मनुष्य पशु जैसा है। उसे लोग बालकी तरह खिलाते हैं, उसकी मश्करी करते

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

हैं, उसे परेशान करते हैं और वह चित्रित चित्रकी तरह कुछ नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक व्यक्तिको अपना पराक्रम स्फुरायमान करना चाहिये।

तेह भणी अमे चालशुं, जोशुं देश विदेश रे,
भुजा बळे लखमी लही, करशुं सकल विशेष रे. क्री० ५

अर्थ—इसलिये अब हम यहाँसे जायेंगे और देश-विदेशमें घूमेंगे और देखेंगे। वहाँ अपनी भुजाके बलसे लक्ष्मी प्राप्तकर अपने सर्व इष्ट विशिष्ट कार्य पूर्ण करेंगे ॥५॥

माय सुणी आवी कहे, हुं आवीश तुम साथ रे,
घडीय न धीरुं एकलो, तुंहि ज एक मुज आथ रे. क्री० ६

अर्थ—यह बात जब माताने सुनी, तब वह आकर कहने लगी—हे पुत्र! मैं तेरे साथ ही आऊँगी, क्योंकि तू ही मेरी एक मात्र पूँजी है, इसलिये मैं तुझे एक क्षण भी अकेला नहीं छोडूँगी ॥६॥

कुंवर कहे परदेशमां, पग बंधन न खटाय रे,
तिणे कारण तुमे इहां रहो, द्यो आशिष पसाय रे. क्री० ७

अर्थ—तब कुँवरने कहा—हे माताजी! परदेशमें पगबंधन नहीं पुसाता, अतः आप यहीं रहिये और कृपा करके मुझे आशीर्वाद दीजिये ॥७॥

माय कहे कुशला रहो, उत्तम काम करजो रे,
भुज बले वैरी वश करी, दरिसण वहेलुं देजो रे. क्री० ८

अर्थ—तब माता कहने लगी—हे वत्स! तुम परदेशमें कुशल रहना और उत्तम कार्य करना, अपने पराक्रमसे शत्रुओंको जीतकर शीघ्र हमें दर्शन देना ॥८॥

संकट कष्ट आवी पडे, करजो नवपद ध्यान रे,
रयणी रहेजो जागतां, सर्व समय सावधान रे. क्री० ९

अर्थ—तथा हे वत्स! विदेशमें संकट और दुःख आ पड़े तब प्रकट प्रभावी श्री नवपदजीका ध्यान करना और रातके समय हमेशा जागते रहना तथा सर्व समय सावधान रहना ॥९॥

अधिष्ठायक सिद्धचक्रनां, जेह कह्यां छे ग्रंथे रे,
ते सवि देवी देवता, यतन करो तुम पंथे रे. क्री०१०

अर्थ—शास्त्रोंमें श्री सिद्धचक्रजी महाराजकी जो-जो अधिष्ठायक देव देवियाँ कही हुई है, वे सब देव-देवियाँ मार्गमें तुम्हारी रक्षा करो ॥१०॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

एम शिखामण देई घणी, माता तिलक वधावे रे,
शब्द शुकन होये भला, विजय मुहूरत पण आवे रे. क्री०११

अर्थ—इस प्रकार माताने बहुत-बहुत सीखें दी, कंकुमका तिलककर पुत्रकी अक्षतसे पूजा की। उस समय शुभ शकुन सूचक उत्तम शब्द (आवाज) होने लगे और विजय मुहूर्त्त भी आ गया ॥११॥

रास रच्यो श्रीपालनो, तेहने बीजे खंडे रे,
प्रथम ढाळ विनये कही, धर्म उदयथिति मंडे रे. क्री०१२

अर्थ—इस प्रकार श्रीपाल राजाके इस रासके दूसरे खंडमें यह पहली ढाल महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराजने कही जिसमें यह सूचित किया कि जब स्थितिका परिपाक होता है तब उस स्थितिके परिपाकके उदयमें जीव धर्ममें उद्यत होता है ॥१२॥

द्वितीय खंडकी पहली ढाल समाप्त

दोहा छंद

हवे मयणा इम वीनवे, तुमशुं अविहड नेह,
अळगी एक क्षण नवि रहुं, तिहां छाया जिहां देह. १

अर्थ—इतनेमें मयणासुंदरी आकर पतिदेवसे विनंती करने लगी—हे प्राणनाथ! आपके साथ मेरा अचल स्नेह है, इसलिये मैं आपसे एक क्षण भी दूर नहीं रहूँगी। जैसे देह और छाया एक-दूसरेसे दूर नहीं हो सकते वैसे ही छाया जैसी मैं आपके साथ ही रहूँगी ॥१॥

अग्नि सहेवो सोहिलो, विरह दोहिलो होय,
कंत विछोही कामिनी, जलण जलंती जोय. २

अर्थ—हे प्राणनाथ! अग्निका ताप सहन करना सरल है, किन्तु स्त्रियोंके लिये पतिका विरह अत्यंत दुःखदायी है, क्योंकि पति बिनाकी स्त्री जलती हुई अग्नि जैसी (अर्थात् जाज्वल्यमान अग्निमें जलती हो वैसी) जाननी चाहिये ॥२॥

कहे कुंवर सुंदरी सुणो, तुं सासु पय सेव,
काज करी उतावळो, हुं आवुं छुं हेव. ३

अर्थ—तब कुँवरने कहा—हे सुंदरी! तू सुन, तू तेरी सासु (अर्थात् मेरी माता) के चरणोंकी सेवा कर, मैं अपना कार्य पूर्ण करके शीघ्र वापिस आ जाऊँगा ॥३॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

मन पाखे मयणा कहे, पियु तुम वचन प्रमाण,
छे पंजर सूनुं पड्युं, तुम साथे मुज प्राण. ४

अर्थ—तब मयणासुंदरी अनिच्छापूर्वक कहने लगी—हे स्वामी! आपका वचन शिरोधार्य है; किन्तु यह मेरा शरीररूपी पिंजरा जीवरूपी पक्षीके बिना खाली रहेगा; क्योंकि मेरा जीव (प्राण) आपके साथ ही है ऐसा मानियेगा ॥४॥

ढाल दूसरी

(राग-मल्हार, कोश्या ऊभी आंगणे—ए देशी)

वालम वहेला रे आवजो, करजो माहरी सार रे,
रखे रे विसारी मूकता, लही नवी नवी नार रे. वालम० १

अर्थ—(फिर कुछ सोचकर मयणासुंदरी कहने लगी कि—) हे प्रियतम! आप अपना कार्य पूर्ण करके शीघ्र वापिस आइयेगा और मेरी सँभाल लीजियेगा, परन्तु परदेशमें अपने गुणोंसे नई नई स्त्रियोंसे शादी कर मुझे भूल मत जाइयेगा ॥१॥

आजथी करीश एकासणुं, कर्यो सचित्त परिहार रे,
केवळ भूमि संथारशुं, तज्यां स्नान शणगार रे. वालम० २

अर्थ—हे प्राणनाथ! आज से (आप वापिस आयेंगे तब तक) मैं हमेशा एकाशन करूँगी, सचित्त द्रव्यका त्याग करूँगी, भूमि पर ही शयन करूँगी और स्नान-शृंगारका त्याग करूँगी। (सती स्त्रियोंके ये लक्षण हैं।) ॥२॥

विस्तारार्थ—शास्त्रमें सती स्त्रियोंके इस प्रकार लक्षण कहे गये हैं—

कुंकुमं कज्जलः कामः कुसुमं कंकणं तथा।
गते भर्तृरि नारीणां, ककाराः पंच दुर्लभाः॥

अर्थ—कुमकुमका तिलक, आँखमें काजलका अंजन, कामक्रीडा, कुसुम-माला और कंगन ये पाँच कक्कार, पति जब परदेशमें होता है तब सती स्त्रीको दुर्लभ होते हैं, अर्थात् पतिके विरहमें ये पाँच कक्कार सती स्त्रियाँ नहीं करती।

ते दिन वळी कदी आवशे, जिहां देखीश पियु पाय रे,
विरहनी वेदना वारशुं, सिद्धचक्र सुपसाय रे. वालम० ३

अर्थ—हे प्रभु! वह धन्य दिन कब आयेगा जब मैं स्वामीके चरणोंका पुनः दर्शन पाऊँगी? परंतु अरे! सिद्धचक्रजीके प्रभावसे वह विरहवेदना मैं जरूर दूर करूँगी ॥३॥

www.jaintatvagyanshala.org

स्वजन वोळावी इणि परे, लेई ढाल कृपाण रे;
चंद्रनाडी स्वर पेसतां, कुंवरे कीध प्रयाण रे. वालम०४

अर्थ—इस प्रकार सगे-संबंधियोंकी अनुमति लेकर एक हाथमें तलवार और दूसरे हाथमें ढाल लेकर चंद्र नाडीमें स्वरके प्रवेश करनेके साथ श्रीपालकुँवरने प्रयाण किया ॥४॥

देश पुर नगरना नव नवा, जोतो कौतुक रंग रे,
एकलो सिंह परे म्हालतो, चढ्यो एक गिरि शृंग रे. वालम० ५

अर्थ—रास्तेमें जाते-जाते बीचमें नये-नये देश, नये-नये गाँव और नये-नये कौतुकके रंग देखते हुए सिंहकी तरह अकेला निर्भयतापूर्वक मस्तीसे चलता हुआ श्रीपालकुँवर एक पर्वतके शिखर पर चढ़ा ॥५॥

सरस शीतल वन गहनमां, तिहां एक चंपक छांह रे,
जाप जपतो नर पेखियो, करी ऊरध निज बांह रे. वालम० ६

अर्थ—वहाँ एक जगह सुंदर शीतल गहन वनकी घटामें एक चंपक वृक्षकी छायामें अपने हाथ ऊँचे रखकर जप करते हुए एक व्यक्तिको देखा ॥६॥

जाप पूरो करी पुरुष ते, बोल्यो करी प्रणाम रे,
सुपुरुष तुं भले आवियो, सर्युं माहरुं काम रे. वालम० ७

अर्थ—इतनेमें उस योगी पुरुषने जप पूर्ण कर कुँवरको प्रणाम कर कहा—हे सज्जन पुरुष ! आप यहाँ भले पधारे । अब मेरा काम सिद्ध हो जायेगा (ऐसा मैं मानता हूँ ।) ॥७॥

कुंवर कहे मुज सारीखुं, कहो जेह तुम काज रे,
घणे आगे उपकारने, दीधां देह धन राज रे. वालम० ८

अर्थ—तब कुँवरने कहा—हे योगीराज ! मेरे योग्य आपका जो भी काम हो कहियेगा, क्योंकि पूर्वकालमें अनेक महापुरुषोंने दूसरोंके उपकारके लिये अपना शरीर, धन और राज्य भी दे दिये हैं ॥८॥

ते कहे गुरु कृपा करी घणी, विद्या एक मुज दीध रे,
घणो उद्यम कर्यो साधवा, पण काज नहि सिद्ध रे. वालम०९

अर्थ—तब योगी कहने लगा—हे सज्जन पुरुष ! गुरुने मुझ पर बहुत ही कृपाकर एक विद्या दी है, उसे सिद्ध करनेके लिये मैंने बहुत प्रयत्न किया, फिर भी अभी तक मेरा कार्य सिद्ध नहीं हुआ ॥९॥

उत्तरसाधक नर विना, मन रहे नहि ठाम रे,
तिणे तुम एक करुं विनती, अवधारिये स्वाम रे. वालम०१०

अर्थ—क्योंकि, उत्तरसाधक मनुष्यके बिना मेरा मन स्थिर नहीं रहता, इसलिये हे स्वामी! मैं आपसे एक विनंती करता हूँ उसे स्वीकार कीजिये ॥१०॥

विस्तारार्थ—कोई भी विद्या सिद्ध करनेवाला साधक कहलाता है और उसके पास बैठकर निर्भयतासे उसका ध्यान रखनेवालेको उत्तरसाधक कहते हैं। उत्तरसाधकको उपसर्ग आने पर क्षुब्ध नहीं होना चाहिये। यदि उत्तर-साधक चलायमान हो जाय तो साधकको विद्या सिद्ध नहीं होती।

कुंवर कहे साध विद्या सुखे, मन करी थिर थोभ रे,
उत्तरसाधक मुज थकां, करे कोण तुज खोभ रे. वालम० ११

अर्थ—तब कुँवर कहने लगा—हे योगी! आप अपना मन स्थिर करके सुखपूर्वक विद्याकी साधना कीजिये, क्योंकि मेरे उत्तरसाधक होने पर आपको कौन क्षुब्ध कर सकेगा? अर्थात् आपको कोई चलायमान नहीं कर सकेगा ॥११॥

कुंवरनी सहायथी ततखिणे, विद्या थई तस सिद्ध रे,
उत्तम पुरुष जे आदरे, तिहां होये नव निद्ध रे. वालम० १२

अर्थ—कुँवरकी सहायतासे योगीको तत्क्षण विद्या सिद्ध हो गई, क्योंकि उत्तम पुरुष जो कार्य शुरू करते हैं वहाँ नौ निधि प्रकट होते हैं ॥१२॥

कुंवरने तेणे विद्याधरे, दीधी औषधि दोय रे,
एक जलतरणी अवरथी, लागे शस्त्र नहि कोय रे. वालम० १३

अर्थ—फिर उस योगीने कुँवरको दो औषधियाँ दी—एक 'जलतरणी' जिससे पानीमें तैरा जा सके और दूसरी 'शस्त्रहरणी' जिससे कोई शस्त्र उसे असर न करे, घात न करे ॥१३॥

कुंवर विद्याधर दोय जणा, चाल्या पर्वत मांहि रे,
धातुवादी रस साधता, दीठा तिहां तरु छांहि रे. वालम० १४

अर्थ—अब कुँवर और विद्याधर योगी दोनों उस पर्वत पर आगे चले। वहाँ उन्होंने एक वृक्षकी छायामें सुवर्णरसकी सिद्धि करते हुए धातुवादी पुरुषोंको देखा ॥१४॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तेह विद्याधरने कहे, तुमे विधि कह्यो जेह रे,
तिणे विधि खप अमे बहु कर्यो, न पामे सिद्धि एह रे. वालम०१५

अर्थ—वे धातुवादी पुरुष उस विद्याधर योगीसे कहने लगे—हे योगीराज ! आपने हमें जो विधि बतायी थी तदनुसार हमने सुवर्णसिद्धिके लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु अभी तक कार्यसिद्धि नहीं हुई ॥१५॥

कुंवर कहे मुज देखतां, वळी एह करो विधि रे,
कुंवरनी नजर महिमाथकी, थई ततक्षण सिद्धि रे. वालम०१६

अर्थ—तब कुँवर कहने लगा—आप यह विधि मेरी नजरके सामने फिर कीजिये। वैसा करने पर कुँवरकी दृष्टिके प्रभावसे उसी क्षण सर्व कार्यसिद्धि हो गई ॥१६॥

धातुवादी कहे नीपन्युं, कनक तुम अनुभाव रे,
एहमांथी प्रभु लीजिये, तुमह जे मन भाव रे. वालम०१७

अर्थ—तब वे धातुवादी कहने लगे—हे कुँवर ! आपके प्रभावसे यह सुवर्ण-सिद्धि हुई है, अतः हे स्वामी ! अपनी इच्छानुसार इसमेंसे आप सुवर्ण ग्रहण कीजिये ॥१७॥

कुंवर कहे मुज खप नहीं, कुण उचके भार रे,
अल्प तेणे अंचले बांधियुं, करी घणी मनोहार रे. वालम०१८

अर्थ—कुँवर बोला—मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं है। व्यर्थ यह बोझ कौन उठाये ? फिर भी उन्होंने बहुत आजिजी की और कुँवरके वस्त्रके छोर पर थोड़ा सुवर्ण बाँध दिया ॥१८॥

अनुक्रमे कुंवर आवियो, भरूअच नयर मझार रे,
हेम खरची सजाई करी, भलां वस्त्र हथियार रे. वालम०१९

अर्थ—फिर वहाँसे श्रीपालकुँवर चलते-चलते भरुच नगरमें आया। वहाँ सोना बेचकर अच्छे कपड़े और हथियार आदि खरीद कर तैयारी की ॥१९॥

सोवने मढिय ते औषधि, बांधी दोय निज बांहि रे,
बहुविध कौतुक देखतो, फरे भरूअच मांहि रे. वालम०२०

अर्थ—फिर उन दोनों औषधियोंको सोनेके तावीजमें मढ़कर अपने हाथ पर बाँध दी। फिर अनेक प्रकारके कौतुक देखता हुआ वह भरुच नगरमें घूमने लगा ॥२०॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

खंड बीजो एह रासनो, बीजी एह तस ढाळ रे,
विनय कहे धर्मथी सुख हुवे, जेम राय श्रीपाळ रे. वालम०२१

अर्थ—श्रीपाल राजाके रासका यह दूसरा खंड है, उसकी यह दूसरी ढाल पूरी हुई। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि हे भव्य प्राणी! धर्मके प्रभावसे सुखकी प्राप्ति होती है जैसे श्री श्रीपालराजाको हुई थी ॥२१॥

द्वितीय खंडकी दूसरी ढाल समाप्त

दोहा छंद

कोसंबी नयरी वसे, धवळ शेठ धनवंत,
लोक अनर्गल धन भणी, नाम कुबेर कहंत. १

अर्थ—उस जमानेमें पृथ्वी पर कौशांबी नामक एक नगरी थी। वहाँ धवल नामका एक धनवान सेठ रहता था। उसके पास अपार धन था जिससे लोग उसे 'कुबेर' कहते थे ॥१॥

शकट ऊंट गाडां भरी, करियाणां बहु जोडि,
ते भरूअच्चे आवियो, लाभ लहे लख कोडि. २

अर्थ—एक बार वह धवल सेठ बैलगाड़ियाँ, ऊँट और बोरे भरकर उसमें अनेक प्रकारका किराना लेकर व्यापार करनेके लिये भरुच शहरमें आया और वहाँ लाखों-करोड़ों रुपये कमाये ॥२॥

वस्तु सकल वेची तिणे, अवर वस्तु बहु लीध,
जलवट प्रवहण पूरवा, सबल सजाई कीध. ३

अर्थ—फिर उस सेठने सब प्रकारकी वस्तुएँ बेची और अन्य अनेक प्रकारकी नई वस्तुएँ खरीदी और समुद्र मार्गसे यात्रा करनेके लिये जहाज भरकर बड़ी तैयारी करने लगा ॥३॥

एक जूंग वाहण कियुं, कुवाथंभ जिहां सट्ठ,
कुवाथंभ सोळे सहित, अवर जूंग अडसट्ठ. ४

अर्थ—उसने एक जूंग जातिका ऐसा बड़ा जहाज तैयार करवाया कि जिसमें साठ मस्तूल (कूपक) थे। फिर सोलह-सोलह मस्तूलवाले जूंग जातिके अन्य अड़सठ जहाज तैयार करवाये ॥४॥

वडसफरी वाहण घणां, बेडा वेगड द्रोण,
शिल्प खूर्प आवर्त्त इम, भेद गणे तस कोण. ५

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—इसके अलावा बड़ी यात्रा करनेकी क्षमतावाले वडसफरी नामके (१००) जहाज करवाये, वेगड जातिके (१०८) कराये, द्रोण जातिके (८४) जहाज, शिल्प जातिके (५४) जहाज, खूर्प जातिके (कलछीकी आकृतिवाले) (३५) जहाज, और आवर्त जातिके (५०) जहाज करवाये—इस प्रकार अनेक प्रकारके जहाज करवाये, उन जहाजके प्रकारोंको सचमुच कौन गिन सकता है? ॥५॥

इणि परे प्रवहण पांचशे, पूर्या वस्तु विशेष,
बंदर मांहे आणियां, पामी नृप आदेश. ६

अर्थ—इन पाँचसौ जहाजोंमें विशिष्ट प्रकारकी चीजें भरी और राजाकी आज्ञा लेकर उन जहाजोंको भरुच बन्दरगाह पर लाया ॥६॥

मालिम पट पुस्तक जुए, सुखाणी सुखाण,
ध्रुव अधिकारी ध्रुवतणी, दोरी भरे निशान. ७

अर्थ—उन जहाजोंमें मालिम जातिके पुरुष पिंजरेमें बैठे बैठे पट तथा पुस्तकें देख रहे हैं, सुकान सँभालनेवाले लोग सुकान देख रहे हैं, ध्रुवतारेको देखनेवाले पुरुष ध्रुवतारेकी दिशा देख रहे हैं और निशान जाँचनेवाले रस्सी भरकर अर्थात् बाँधकर भूमि-मिट्टी-पहाड़की चट्टानोंकी छानबीन कर पानीकी गहराई तथा छिछरापन आदिकी जाँच कर रहे हैं ॥७॥

करे कराणी साचवण, नाखूदा ले न्याउ,
वायु परखे पंजरी, नेजामा निज दाउ. ८

अर्थ—कराणी जातिके पुरुष मालकी रक्षा कर रहे हैं, नाखुदा पुरुष पाल आदि कामका ध्यान रख रहे हैं, पंजरिया पुरुष वायुकी परीक्षा कर रहे हैं और पहेरायत पुरुष अपने योग्य काम कर रहे हैं ॥८॥

खरी मसागति खारुआ, सज्ज करे सढ दोर,
हलक हलेसां हालवे, बहु बेठा बिहुं कोर. ९

अर्थ—सच्ची मेहनत करनेवाले खलासी लोग पाल और रस्सी तैयार कर रहे हैं। डाँड मारनेके लिये बहुतसे हरकारे दोनों ओर बैठे हुए हैं ॥९॥

पंचवर्ण ध्वज वावटा, शिर करे चामर छत्र,
वाहण सवि शणगारियां, मांहि विविध वाजिंत्र. १०

अर्थ—मानो जहाजके सिरपर चमर तथा छत्ररूप हो वैसे पाँच वर्णवाले ध्वज और पताकाएँ शोभित हो रही थीं। इस प्रकार सब जहाज सुसज्ज किये गये थे। उन जहाजोंमें विविध प्रकारके वार्जित्र (बाजे) बज रहे थे ॥१०॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

सात भूमि वाहण तणी, निविड नाळनी पांति,
बयरीना वाहण तणी, करे खोखरी खांति. ११

अर्थ—उस प्रत्येक जहाजमें सात-सात भूमि अर्थात् खण्ड (मंजिल) थे। उस प्रत्येक खण्डमें अनेक तोपें कतारबंद रखी हुई थी जो शत्रुओंके जहाजवालोंकी मनकी मुराद नष्ट-भ्रष्ट करनेमें समर्थ थी ॥११॥

सुभट सनूरा सहस दश, वडा वडा झूझार,
बेठा चिहुं दिशे मोरचे, हाथ विविध हथियार. १२

अर्थ—फिर उन जहाजोंमें शूरवीर झूझार जातिके बड़े समर्थ (शक्तिशाली) दस हजार योद्धा थे। वे हाथमें अनेक प्रकारके हथियार लेकर चोतरफ मोर्चे पर बैठे हुए थे ॥१२॥

ईंधण जल संबल ग्रही, बहु व्यापारी लोक,
सोहे बेठा गोखडे, नूर दिये धन रोक. १३

अर्थ—अन्य व्यापारी भी लकड़ी, पानी और पाथेय (भाता) आदि लेकर जहाजके झरोखोंमें बैठे हुए शोभित हो रहे थे। वे सब धवल सेठको किरायेका पैसा नकद दे रहे थे ॥१३॥

हवे नांगर उपाडवा, वडा जूंगनी जाम,
नाळ धडूकी नाळ सवि, हुई धडोधड ताम. १४

अर्थ—अब जहाजोंको चलानेके लिये लंगर उठानेके लिये बड़े जूंग जहाजकी तोपमेंसे गोला छोड़ा गया, साथ ही अन्य सब जहाजोंमेंसे भी गोले छोड़े गये। इससे उस समय धड़ाधड़ आवाज हुआ ॥१४॥

सवि वाहणनां नांगरी, करे बराबर जोर,
पण नांगर हाले नहीं, सबल मच्यो तव सोर. १५

अर्थ—लंगर उठानेवाले लोग सब जहाजोंके लंगर उठानेके लिये अत्यंत जोर करने लगे, मगर लंगर हिले ही नहीं, इससे बड़ा शोर होने लगा ॥१५॥

धवळशेठ झांखो थयो, चिंता चित्त न माय,
शीकोतर पूछण गयो, हवे किम करवुं माय. १६

अर्थ—यह देखकर धवलसेठ निस्तेज हो गया, उसके मनमें अत्यंत चिंता होने लगी, इसलिये वह शीकोतर देवीसे पूछने गया और कहा—हे माता! मेरे जहाज चलते नहीं है, तो इसके लिये मैं क्या करूँ? ॥१६॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

शीकोतर कहे शेठ सुण, वहाण थंभ्यां देव,
छोडे बत्रीश लक्षणा, पुरुष तणो बलि लेव. १७

अर्थ—तब शीकोतर देवीने कहा—हे सेठ, सुन। ये जहाज देवीने पकड़ रखे हैं। वह देवी जब बत्तीस लक्षणवाले पुरुषका बलिदान लेगी तब जहाजोंको छोड़ेगी ॥१७॥

ढाल तीसरी

(श्रेणिक मन अचरज थयो—ए देशी)

धवळशेठ लई भेटणुं, आव्यो नरपति पाय रे,
कहे एक नर मुजने दियो, जेम बलि बाकुल थाय रे. धवळ० १

अर्थ—अब धवल सेठ अमूल्य वस्तुओंकी भेट लेकर राजाके पास आया और कहने लगा—हे राजन्! मुझे एक बत्तीस लक्षणवाला पुरुष दीजिये कि जिससे देवीको उबाले हुए दलहन (बाकुला) के साथ बलि दी जा सके ॥१॥

राय कहे नर ते दियो, सगो नहीं जस कोय रे,
बलि करजो ग्रही तेहने, जे परदेशी होय रे. धवळ० २

अर्थ—तब राजाने कहा—हे सेठ! इस नगरमें जिसका कोई सगा न हो और जो परदेशी हो ऐसा पुरुष आपको दिया जाता है, तो ऐसे पुरुषको पकड़कर बलिदान दे देना ॥२॥

सेवक चिहुं दिशे शेठना, फरे नयरमां जोता रे,
कुंवर देखी शेठने, वात कहे समहोता रे. धवळ० ३

अर्थ—फिर सेठके नौकर चारों दिशामें बत्तीस लक्षणवाले पुरुषको ढूँढते हुए नगरमें घूमने लगे। इतनेमें बत्तीस लक्षणयुक्त परदेशी श्रीपालकुँवरको देखकर हर्षित होते होते सेठके पास आकर बोले—॥३॥

दीठो बत्रीश लक्षणो, पुरुष एक परदेशी रे,
कहो तो झाली आणिये, शुद्धि न को तस लेशी रे. धवळ० ४

अर्थ—हे सेठ! हमने एक बत्तीस लक्षणवाला परदेशी पुरुष देखा है और उसका सगा यहाँ कोई न होनेसे उसकी कोई छानबीन करेगा नहीं, अतः आप कहे तो हम उसे पकड़कर यहाँ ले आये ॥४॥

धवळ कहे आणो इहां, म करो घडिय विलंब रे,
बलि देईने चालिये, वहार नहि तस बूंब रे. धवळ० ५

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—तब धवल सेठ कहने लगा—उस व्यक्तिको यहाँ पकड़कर लाओ, एक घड़ीका भी विलंब न करो। देवीको बलिदान देकर हम जल्दी रवाना हो जाये ताकि पीछे उसकी कोई शिकायत न करे ॥५॥

सुभट सहस दश सामटा, आवे कुंवरनी पासे रे,
अभिमानी उद्धतपणे, कडुआं कथन प्रकाशे रे. धवळ० ६

अर्थ—इस प्रकार सेठकी आज्ञासे एक साथ दस हजार सुभट कुँवरके पास आये और वे अभिमानी सुभट कुँवरके आगे उद्धताईके साथ इस प्रकार कडुवे वचन कहने लगे— ॥६॥

ऊठ आव्युं तुज आउखुं, धवल धिंग तुज रूठो रे,
बलि करशे तुजने हणी, म कर मान मन जूठो रे. धवळ० ७

अर्थ—अरे ! खड़ा हो जा, तेरा आयुष्य पूरा हो गया है। हमारा स्वामी धवलसेठ तुझ पर कोपायमान हुआ है इसलिये तुझे मारकर तेरी बलि देंगे। इसलिये तू मनमें व्यर्थ गर्व न कर ॥७॥

बलि नवि थाये सिंहनो, मूरख हैये विमासो रे,
धवल पशुनो बलि थशे, वचने कांई विरांसो रे. धवळ० ८

अर्थ—तब श्रीपालकुँवर बोले—हे मूर्खों ! हृदयमें इतना तो विचार करो कि सिंहका बलिदान कभी हुआ नहीं है परंतु तुम्हारे सेठ धवल पशुका ही बलिदान होगा, इसलिये ऐसे उलटे वचन बोलकर क्यों नुकसान कर रहे हो ? (यहाँ 'धवल' शब्द द्विअर्थी है—एक धवलसेठ और दूसरा बैल।) ॥८॥

वचन सुणी तस वांकडां, शेठने सुभट सुणावे रे,
शेठ विनवी रायने, बहोळुं कटक अणावे रे. धवळ० ९

अर्थ—इस प्रकार कुँवरके उलटे वचन सुनकर सुभटोंने सेठको वे शब्द सुनाये, तब सेठने राजासे विनती कर उनका बड़ा सैन्य मँगाया ॥९॥

एकलडो दोय सैन्यशुं, जव अतुली बल झूझे रे,
चहुटा वच्चे धुंखल मच्यो, कायर हियडां धूजे रे. धवळ० १०

अर्थ—जब अतुल पराक्रमवाला श्रीपाल अकेला दोनों सैन्योंके साथ युद्ध करने लगा तब बाजारमें बड़ा धमाल हुआ और उसे देखकर कायर पुरुषोंके हृदय काँपने लगे ॥१०॥

कुंत तीर तरवारना, जे जे घाले घाय रे,
कुंवर अंगे लागे नहीं, औषधिने महिमाय रे. धवळ० ११

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–युद्धमें सैनिक भाले, तीर और तलवारसे कुँवर पर वार करते थे, वे सब वार औषधिके प्रभावसे शरीर पर कोई असर नहीं करते थे, अर्थात् वार खाली जाते थे ॥११॥

कुंवर ताकी जेहने, मारे लाठी लोढे रे,
लहबहता लांबा थई, ते पुहवीए पोढे रे. धवळ०१२

अर्थ–जबकि श्रीपालकुँवर निशाना बाँधकर जिसे जिसे लकड़ी या लोहेसे मारता था, वे बिचारे लड़खड़ाते हुए लंबे होकर जमीन पर सो जाते थे ॥१२॥

भेंसा परे रणखेतमां, चिहुं दिशि धिंगड धाय रे,
जुड्या जोध वेला जिस्या, शिंगे विलग्या जाय रे. धवळ०१३

अर्थ–उस समय रणक्षेत्रमें भैंसोंकी तरह योद्धा दौड़ादौड़ कर रहे थे। इसलिये जैसे भैंसोंके सींगमें फँस जानेसे बेलें नष्ट हो जाती हैं वैसे बलवान योद्धाओंके धावा बोलनेसे बिचारे सामान्य योद्धाओंका तो बेलकी तरह कच्चरघान निकल जाता था ॥१३॥

मस्तक फूट्यां केईनां, पड्या केईना दांत रे,
केई मुखे लोही वमे, पडी सुभटनी पांत रे. धवळ०१४

अर्थ–उस समय कई सैनिकोंके सिर टूट गये, कितनोंके दाँत गिर गये, कितने ही मुँहसे लहू उगलने लगे। यों सुभट कतारबंद भूमि पर पड़े हुए थे ॥१४॥

केई पेठा हाटमां, केई पोळमां पेठा रे,
केई दांते तरणां देई, गळिया थईने बेठा रे. धवळ०१५

अर्थ–कई सुभट तो दूकानोंमें घुस गये, कई सेरियोंमें चले गये तो कई दाँतमें घासका तिनका लेकर छूट गये और कई दुर्बल बैलकी तरह बैठ गये ॥१५॥

केई कहे कायर अमे, केई कहे अमे रांक रे,
केई कहे मारो रखे, नथी अमारो वांक रे. धवळ०१६

अर्थ–कुछ यों कहने लगे कि हम अशक्त और कायर है। कुछ कहते थे कि हम गरीब है। कुछ यों आजिजी करते थे कि हमारी कोई भूल नहीं है इसलिये हमें मत मारिये ॥१६॥

केई कहे पेटारथी, अशरण अमे अनाथ रे,
मुखे दिये दश अंगुली, दे वळी आडा हाथ रे. धवळ०१७

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—कई पेटार्थी (पेट भरनेके अर्थी) लोग कहने लगे कि हमें कोई शरण नहीं है। हम नाथ (मालिक) रहित हैं, इसलिये पेटके (आजीविकाके) लिये यह किया है। तथा कई योद्धा तो मुँहमें दसों अंगुलियाँ डालकर और मुँहके आगे हाथ रखकर बैठ गये ॥१७॥

धवळशेठ ते देखतां, आवी लाग्यो पाय रे,
देव सरूपी दीसो तुमे, करो अम सुपसाय रे. धवळ०१८

अर्थ—इतनेमें धवल सेठ वहाँ आया और यह सब देखकर कुँवरके पैरों पड़कर कहने लगा—हे कुँवर! आप देव जैसे स्वरूपवान दिखायी दे रहे हैं, इसलिये हम पर कृपा करे ॥१८॥

महिमानिधि महोटा तुमे, तुम बल शक्ति अगाध रे,
अविनय कीध अजाणते, ते खमजो अपराध रे. धवळ० १९

अर्थ—हे स्वामी! आप बड़े महिमानिधि हैं, यशस्वी हैं। आपका बल और शक्ति अपरंपार है। हमने अज्ञानवश आपकी अविनय की है, इस हमारे अपराधको आप क्षमा करे ॥१९॥

अवधारो अम विनति, करो एक उपगार रे,
थंभ्यां वाहण तारवो, उतारो दुःख पार रे. धवळ० २०

अर्थ—हे स्वामी! हमारी एक विनति स्वीकारे और हम पर एक उपकार करे। ये जो हमारे जहाज रुके हुए हैं उन्हें चलाये और दुःखमेंसे हमें पार उतारे ॥२०॥

कुंवर कहे ए कामनुं, शुं देशो मुज भाडुं रे,
शेठ कहे लख सोनैया, खूतुं काढो गाडुं रे. धवळ० २१

अर्थ—तब कुँवर बोले—हे सेठ! यह काम करनेके बदलेमें आप मुझे क्या पारिश्रमिक देंगे? धवल सेठने कहा—यदि हमारे फँसे हुए जहाज आप चला देंगे तो एक लाख सोनामुहर दूँगा ॥२१॥

सिद्धचक्र चित्तमां धरी, नवपद जाप न चूके रे,
वडवहाण उपर चढी, सिंहनाद ते मूके रे. धवळ० २२

अर्थ—यह बात मान्य कर श्रीपालकुँवरने सिद्धचक्रजीको मनमें धारण कर नवपदजीका जप चूके बिना बड़े जहाज पर चढ़कर सिंह जैसा भयंकर आवाज किया ॥२२॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

जे देवी दुश्मन हती, दुष्ट गई ते दूर रे,
वहाण तर्यां कारज सर्यां, वाजे मंगळ तूर रे. धवळ० २३

अर्थ–उस समय जहाजको पकड़नेवाली जो दुष्ट देवी थी वह नवपदजीके प्रभावसे दूर चली गई और जहाज पानी पर तैरने लगे, जिससे सेठके सर्व कार्य सिद्ध हुए और मांगलिक वाद्य बजने लगे ॥२३॥

बीजे खंडे ढाळ ए, त्रीजी चित्तमां धरजो रे,
विनय कहे प्रवहण परे, भवियण भवजळ तरजो रे. धवळ० २४

अर्थ–इस प्रकार दूसरे खंडकी यह तीसरी ढाल सदा चित्तमें धारण कर रखियेगा। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं–हे भव्य जीवों! जैसे नवपदके प्रभावसे जहाज तैरने लगे, वैसे ही आप भी भवसमुद्र तिर जाइयेगा ॥२४॥

द्विपीय खंडकी तीसरी ढाल संपूर्ण

दोहा छंद

ते देखी चिंते धवल, चढ्यो चिंतामणि हाथ,
वडो वखत जो मुज हुये, तो ए आवे साथ. १

अर्थ–इस प्रकार कुँवरका महान प्रभाव देखकर धवलसेठ मनमें सोचने लगा–मेरे हाथमें यह चिंतामणी रत्न आया है। अब यदि मेरा भाग्य जोर करे और यह मेरे साथ आ जाये तो अच्छा हो ॥१॥

एक लाख दीनार तस, देई लाग्यो पाय,
कर जोडीने वीनवे, वात सुणो इक भाय. २

अर्थ–फिर धवलसेठ कुँवरको एक लाख सोनामुहर देकर पैरोंमें गिरा और हाथ जोड़कर विनती करने लगा–हे बंधु! मेरी एक बात सुनिये ॥२॥

वरस प्रत्ये एकेकने, सहस देउं दीनार,
सेवा सारे सहस दश, जोध भला झूझार. ३

अर्थ–हर वर्ष एक-एक योद्धाको एक-एक हजार सोनामुहर देता हूँ–ऐसे बलवान दस हजार योद्धा मेरी सेवामें जुड़े हुए हैं ॥३॥

तुमने मुह माग्युं दिउं, आवो अमारी साथ,
ए अवधारो विनति, अमने करो सनाथ. ४

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—फिर भी हे स्वामी! आप यदि हमारे साथ आयेंगे तो मैं आपको मुँहमागे पैसे दूँगा। तो हमारी यह विनती स्वीकारिये और हमारे साथ आकर हमें सनाथ (नाथ सहित) करिये ॥४॥

कुंवर कहे हुं एकलो, लेउं सर्वनुं मोल,
ए सर्वेनुं एकलो, कारज करुं अडोल. ५

अर्थ—तब कुँवर कहने लगा—मैं अकेला सबका पगार लूँगा और मैं अकेला ही दृढतासे इन सबका काम करूँगा ॥५॥

ते धननुं लेखुं करी, शेठ कहे कर जोड,
अमे वणिक जन एकने, किम देवाये क्रोड? ६

अर्थ—उन सबके पगारका हिसाब करके सेठ हाथ जोड़कर कहने लगा—हम बनिये हैं, अतः एक ही व्यक्तिको एक क्रोड सोनामुहर कैसे दे सकेंगे? ॥६॥

कुंवर कहे सेवक थई, दाम न झालुं हाथ,
पण देशान्तर देखवा, हुं आवुं तुम साथ. ७

अर्थ—तब कुँवर बोला—हे सेठजी! मैं नौकरी करके तुम्हारा पैसा हाथमें नहीं लूँगा। किन्तु परदेश देखनेकी मेरी इच्छा है इसलिये आपके साथ आऊँगा ॥७॥

भाडुं लई वहाणमां, द्यो मुज बेसण ठाम,
मास प्रते दीनार शत, भाडुं परठिउं ताम. ८

अर्थ—तो मुझे किराया लेकर जहाजमें बैठनेके लिये जगह दीजिये। इस प्रकार कहकर एक मासका किराया एक सौ सोनामुहर निश्चित किया ॥८॥

ढाल चौथी

(राग-मल्हार, जीहो जोयुं अवधि प्रयुंजीने—ए देशी)

जीहो कुंवर बेठो गोखडे, जीहो महोटा वहाणमांहि,
जीहो चिहुं दिशि जलधि तरंगनां, जीहो कौतुक जोवे त्यांहि,
सुगुण नर, पेखो पुण्य प्रभाव,
जीहो पुण्ये मनवांछित मळे, जीहो दूर टळे दुःख दाव. सुगुण० १

अर्थ—अब श्रीपालकुँवर बड़े जहाजके झरोखेमें बैठे बैठे चारों ओर समुद्रके तरंगोंका कौतुक देख रहे थे। हे सुगुण पुरुष! पुण्यके प्रभावको तो देखिये! पुण्यसे सारे मनोवांछित मिलते हैं और दुःखका दावानल दूर होता है ॥१॥

www.jaintatvagyanshala.org

जीहो सढ हंकार्या सामटा, जीहो पूर्या घण पवणेण,
जीहो वडवेगे वाहण वहे, जीहो जोयण जाये खणेण. सुगुण०२

अर्थ—फिर जहाजोंके पाल एक साथ चढ़ाये और उन्हें बहुत हवासे भर दिया जिससे अत्यंत तेज गतिसे चलते हुए वे जहाज एक क्षणमें एक योजन जाने लगे ॥३॥

जीहो जळ हस्ति पर्वत जिस्या, जीहो जळमां करे हल्लोल,
जीहो मांहोमांहे झूझता, जीहो उछाळे कल्लोल. सुगुण०३

अर्थ—उस समय पर्वत जैसे जलहस्ती समुद्रके पानीमें दौड़ादौड़ कर रहे थे, परस्पर झगड़ रहे थे और पानीकी तरंगें उछाल रहे थे ॥३॥

जीहो मगरमच्छ मोटा फिरे, जीहो सुसुमार केई कोडि,
जीहो नक्र चक्र दीसे घणा, जीहो करता दोडादोडि. सुगुण०४

अर्थ—बड़े मगरमच्छ भी बहुत घूम रहे थे। करोड़ो सुसुमार जातिके मत्स्य और छोटी मछलियों के झुंड भी भागमभाग करते दिखायी दे रहे थे ॥४॥

जीहो इम जातां कहे पंजरी, जीहो आज पवन अनुकूळ,
जीहो जळ ईंधण जो जोईए, जीहो आव्युं बब्बर कुळ. सुगुण०५

अर्थ—इस प्रकार समुद्रमें जाते जाते पंजरी (पवनकी दिशा जानने वाले) लोग कहने लगे—आज पवन अनुकूल है। अतः यदि पानी, लकड़ी आदिकी जरूरत हो तो बब्बरकोट बंदरगाह नजदीकमें आ गया है ॥५॥

जीहो तस बंदर मांहि ऊतरी, जीहो जळ ईंधण लिये लोक,
जीहो धवळशेठ कांठे रह्या, जीहो साथे सुभटना थोक. सुगुण०६

अर्थ—इस प्रकार कहनेसे सब लोग बंदरगाह पर उतरकर मीठा पानी तथा लकड़ी आदि ईंधन लेने लगे। धवलसेठ समुद्रकिनारे पर खड़े थे। साथमें अनेक सुभट भी थे ॥६॥

जीहो कोलाहल ते सांभळी, जीहो आव्या अति सपराण,
जीहो दाणी बब्बररायना, जीहो मांगे बंदर दाण. सुगुण० ७

अर्थ—इतनेमें लोगोंका कोलाहल सुनकर बब्बर राजाके जकात लेनेवाले अधिकारी शीघ्र वहाँ आये और बंदरगाहकी जकात माँगने लगे ॥७॥

जीहो शेठ सुभटने गारवे, जीहो दाण न दिये अबूझ,
जीहो तव तिहां लाग्युं तेहने, जीहो मांहोमांहे झूझ. सुगुण० ८

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–तब मूर्ख धवलसेठने घमंडसे यों सोचकर कि मेरे पास बहुत सुभट हैं तो ये थोड़े जकाताधिकारी क्या कर लेंगे ?–जकात दी नहीं जिससे वहाँ सुभट और जकाताधिकारी परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे ॥८॥

जीहो शेठतणे सुभटे हण्या, जीहो दाणी नाठा रे जाय,
जीहो सैन्य सबल तव सज करी, जीहो आव्यो बब्बरराय. सुगुण० ९

अर्थ–उस लड़ाईमें सेठके सुभटोंसे मार खाकर जकाताधिकारी भागकर राजाके पास गये और सारी बात कही, तब बब्बर राजा बड़ा सैन्य सज्जकर वहाँ आया ॥९॥

जीहो राजतेज न शक्या सही, जीहो दीधी सुभटे रे पूठ,
जीहो मार पडी तव नासतां, जीहो बाण भरी भरी मूठ. सुगुण०१०

अर्थ–राजाके वहाँ आनेसे धवलसेठके सुभट राजतेज सहन न कर सके और पीठ दिखाकर भागने लगे। उन भागते हुए सुभटों पर भी राजाके सैनिकोंने भयंकर (प्रचंड) बाणवर्षा की ॥१०॥

जीहो बांध्यो झाली जीवतो, जीहो रूख सरीखो शेठ,
जीहो बांह बेहु ऊंची करी, जीहो मस्तक कीधुं हेठ. सुगुण०११

अर्थ–फिर अभिमानी सेठको जिंदा पकड़कर वृक्षकी तरह अर्थात् जैसे वृक्ष डिगे नहीं वैसे दो हाथ ऊँचे कर मस्तक नीचे रखकर पेड़के साथ बाँध दिया, अर्थात् पेड़की ड़ालीके साथ औंधे सिर लटका दिया ॥११॥

जीहो रखेवाळ मूकी तिहां, जीहो वळियो बब्बरराय,
जीहो तव बोलावे शेठने, जीहो कुंवर करी पसाय. सुगुण०१२

अर्थ–फिर कोतवालको वहाँ छोड़कर बब्बरराजा अपने नगरकी ओर रवाना हुआ। उस समय श्रीपाल कुँवर दया लाकर सेठसे कहने लगे ॥१२॥

जीहो सुभट सवे तुम किहां गया, जीहो बांध्या बांह मरोड,
जीहो एवडुं दुःख न देखता, जीहो जो देता मुज क्रोड. सुगुण०१३

अर्थ–हे सेठ ! आपके सारे सुभट कहाँ गये कि आप यों हाथ मरोड़ कर बाँध दिये गये ? यदि मुझे एक करोड़ सोनामुहर देते तो इतना दुःख आपको देखना न पड़ता ॥१३॥

जीहो शेठ कहे तुमे कां दियो, जीहो दाधा उपर लूण,
जीहो पड्या पछी पादु किसी, जीहो हणे मूवाने कुण. सुगुण०१४

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–तब सेठ कहने लगे–आप जले पर नमक क्यों छिड़क रहे हैं? गिरे हुएको लात क्यों मारनी चाहिये? अथवा मरे हुएको कौन मारेगा? ।१४।

जीहो कहे कुंवर वैरी ग्रह्युं, जीहो जो वाळुं ए वित्त,
जीहो तो मुजने देशो किश्युं, जीहो भाखो थिर करी चित्त. सुगुण०१५

अर्थ–तब कुँवरने कहा–आपके शत्रुने जो धन ले लिया है उसे यदि मैं आपको वापस दिलाऊँ तो आप मुझे क्या देंगे? यह बात आप चित्तको स्थिर करके सोच-विचार कर कहिये ॥१५॥

जीहो शेठ कहे सुण साहिबा, जीहो ए मुज कारज साध,
जीहो वहेंची वहाण पांचसें, जीहो लेजो आधो आध. सुगुण०१६

अर्थ–सेठने कहा–हे साहिबजी! सुनिये। यदि मेरा यह कार्य आप सिद्ध कर देंगे तो मेरे पाँच सौ जहाजोंका बटवारा कर बराबर आधा भाग आप ले लीजियेगा ॥१६॥

जीहो बोलबंध साखी तणो, जीहो कुंवर पाडी तंत,
जीहो धनुष तीर तरकस ग्रही, जीहो चाल्यो तेज अनंत. सुगुण०१७

अर्थ–फिर कुँवरने स्पष्टता कर उस बातमें साक्षी (गवाह) रखकर लिखित दस्तावेज करके महाकाल राजाको जोरसे पुकारा। इतना ही नहीं, परन्तु हाथमें धनुष्य, बाण और भाथा लेकर अत्यंत तेजस्वी ऐसा वह कुँवर राजसैन्यका पीछा करने लगा ॥१७॥

जीहो जई बब्बर बोलावीओ, जीहो वळ पाछो वडवीर,
जीहो शस्त्र सेन भुजबळ तणो, जीहो नाद उतारुं नीर. सुगुण०१८

अर्थ–फिर श्रीपालकुँवरने नगरमें प्रवेश करते हुए बब्बर राजाको बुलाया और कहा–हे महावीर! तू पीछे लौट, ताकि तेरे शस्त्र, तेरी सेना और तेरे भुजबलके गर्वका पानी उतारूँ ॥१८॥

जीहो तुज सरिखो जे प्राहुणो, जीहो पहोतो अम घर आय,
जीहो सूखलडी मुज हाथनी, जीहो चाख्या विण किम जाय.सुगुण०१९

अर्थ–तेरे जैसा मेहमान हमारे घर आया हो तो हमारे हाथका मेथीपाक चखे बिना घर कैसे जायेगा? ॥१९॥

जीहो महाकाल जुए फरी, जीहो दीठो एक जुवान,
जीहो झाझानी परे झूझतो, जीहो लक्षण रूपनिधान.सुगुण०२०

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–(यह सुनकर) महाकाल राजाने पीछे घूमकर देखा तो अच्छे लक्षणवाला और रूपके भंडार जैसा और कई लोगोंके साथ युद्ध करता हुआ एक युवान पुरुष दिखाई दिया ॥२०॥

जीहो तुं सुंदर सोहामणो, जीहो दीसे यौवन वेश,
जीहो विण खूटे मरवा भणी, जीहो कांई करे उद्देश. सुगुण०२१

अर्थ–तब महाकाल राजा उसे कहने लगा–अरे ! तू सुंदर और मनोहर नौजवान दीख रहा है तो आयुष्य पूर्ण हुए बिना मरनेकी तैयारी क्यों कर रहा है ? ॥२१॥

जीहो कहे कुंवर संग्राममां, जीहो वचन किश्यो व्यापार,
जीहो जोधे जोध मल्या जिहां, जीहो तिहां शस्त्रे व्यवहार. सुगुण०२२

अर्थ–इस प्रकार महाकाल राजाके वचन सुनकर कुँवर बोला–युद्धमें वचनका व्यापार क्यों करना चाहिये ? क्योंकि जहाँ योद्धा मिलते हो वहाँ शस्त्रोंसे व्यापार योग्य है। (अर्थात् हमें वादविवाद न करके शस्त्रोंसे लड़ना चाहिये।) ॥२२॥

जीहो महाकाल कोप्यो तिसे, जीहो हलकारे निज सेन,
जीहो मूके शस्त्र झडोझडे, जीहो राता रोषरसेन. सुगुण० २३

अर्थ–यह सुनकर महाकाल राजा उस पर क्रुद्ध हुआ और उसने अपने सैन्यको ललकारा। इससे सुभट क्रोधके आवेशसे लालपीले होकर जोरसे शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥२३॥

जीहो वूठा तीखा तीरनां, जीहो गोळाना केई लाख,
जीहो पण अंगे कुंवर तणे, जीहो लागे नही सराख. सुगुण० २४

अर्थ–उस समय कुँवर पर तीक्ष्ण बाणोंकी बौछार होने लगी, लाखों गोले बरसने लगे, फिर भी औषधिके प्रभावसे कुँवरके एक भी अंगको तृणमात्र भी चोट नहीं लगी ॥२४॥

जीहो आकर्षी जे जे दिशे, जीहो कुंवर मूके बाण,
जीहो समकाळे दश वीशनां, जीहो तिहां छंडावे प्राण. सुगुण० २५

अर्थ–जबकि श्रीपालकुँवर जिस-जिस दिशामें खींचकर (तानकर) बाण छोड़ते थे तब वे एक साथ दस-बीसको प्राणरहित करते थे ॥२५॥

जीहो सैन्य सकल महाकाळनुं, जीहो भागी गयुं दह वट्ट,
जीहो नृप एकाकी कुंवरे, जीहो बांध्यो बंध निघट्ट. सुगुण० २६

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—इस प्रकार होनेसे महाकाल राजाका सारा सैन्य दसों दिशाओंमें भाग गया और अकेले श्रीपालकुँवरने राजाको गाढ बंधनसे बाँध दिया ॥२६॥

जीहो बांधीने निज साथमां, जीहो पासे आण्यो जाम,
जीहो बंधन छोड्यां शेठनां, जीहो रक्षक नाठा ताम. सुगुण० २७

अर्थ—फिर महाकालको बाँधकर अपने साथ, जहाँ धवलसेठको बाँधा हुआ था वहाँ ले आया और धवलसेठके बंधन छोड़ दिये। यह देखकर बब्बर राजाके रक्षक पुरुष नौ दो ग्यारह हो गये ॥२७॥

जीहो खडग लेई महाकाळने, जीहो मारण धायो रे शेठ,
जीहो कहे कुंवर बेसी रहो, जीहो बल दीठुं तुम ठेठ. सुगुण० २८

अर्थ—तब धवलसेठ तलवार लेकर महाकाल राजाको मारनेके लिये दौड़ा। यह देखकर कुँवरने कहा—हे सेठ! अब आप बैठ रहिये। आपका बल तो हमने पहिले ही देख लिया है ॥२८॥

जीहो बंधन बब्बररायनां, जीहो छोडावे तेणी वार,
जीहो भूषण वस्त्र पहेरामणी, जीहो करे घणो सत्कार. सुगुण०२९

अर्थ—फिर तुरत ही श्रीपालकुँवरने बब्बरराजाके भी बंधन छोड़ दिये और आभूषण तथा वस्त्र पहनाकर बहुत आदर-सत्कार किया ॥२९॥

जीहो सुभट जिके नाठा हता, जीहो ते आव्या सहु कोय,
जीहो भांजे तस आजीविका, जीहो शेठ कोप करी सोय. सुगुण०३०

अर्थ—इतनेमें धवलसेठके जो-जो सैनिक बब्बर राजाके साथ युद्ध करते भाग गये थे, वे सब वापिस आ गये। तब धवल सेठने उन पर क्रुद्ध होकर उन्हें नौकरीमेंसे निकाल दिया। इस प्रकार उनकी आजीविका तोड़ दी ॥३०॥

जीहो कुंवरे ते सवि राखियां, जीहो दीधी तेहने वृत्ति,
जीहो वहाण अढीसें माहरां, जीहो साचवजो एकचित्त. सुगुण० ३१

अर्थ—श्रीपालकुँवरने उन सबको नौकरी पर रख लिया और उन्हें पगार देने लगा, और कहा—मेरे इन ढाई सौ जहाजोंकी एक चित्तसे संभाल रखना ॥३१॥

जीहो जे पण बब्बररायनो, जीहो नाठो हतो परिवार,
जीहो तेहने पण तेडी करी, जीहो आदर दिये अपार. सुगुण० ३२

अर्थ–फिर बब्बरराजाका भी जो परिवार (सैनिक आदि) भाग गये थे, उन्हें भी बुलाकर उनका भी वस्त्र आदिसे अत्यंत आदर-सत्कार किया ॥३२॥

जीहो चोथी ढाळ एणी परे, जीहो बीजे खंडे होय,
जीहो विनय कहे फल पुण्यनां, जीहो पुण्य करो सहु कोय. सुगुण० ३३

अर्थ–इस प्रकार दूसरे खण्डकी यह चौथी ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं–यह सारी श्रीपालकुँवरकी ऋद्धि पुण्यका फल है, अतः सभीको पुण्य करना चाहिये ॥३३॥

द्वितीय खण्डकी चौथी ढाल समाप्त

दोहा छंद

महाकाळ श्रीपाळनुं, देखी भुजबळ तेज,
चित चमक्यो इम वीनवे, हियडे आणी हेज. १

अर्थ–इस प्रकार श्रीपालकुँवरकी भुजाके बलका तेज देखकर महाकाल राजा हृदयमें बहुत विस्मित हुआ और प्रेमपूर्वक इस प्रकार विनंती करने लगा ॥१॥

मुज मंदिर पावन करो, महेर करी महाराज,
प्रगट्यां पूरव भवे कर्यां, पुण्य अमारां आज. २

अर्थ–हे महाराज! हम पर कृपा करके, हमारे नगरमें आकर हमारा आँगन पवित्र करिये। सचमुच! हमारे पूर्वकृत पुण्य आज प्रकट हुए हैं ॥२॥

तुम सरीखा सुपुरुष तणा, अम दरशन दुर्लभ,
जिम मरुधरना लोकने, सुरतरु कुसुम सुरंभ. ३

अर्थ–जैसे मरुधर (रेगिस्तान) के लोगोंको (जहाँ सामान्य फूल भी नहीं होते) कल्पवृक्षके पुष्पोंकी सुगंध तो अति दुर्लभ हैं वैसे हम जैसोंको आप-से सत्पुरुषोंके दर्शन दुर्लभ है ॥३॥

वोळावा विण एकलो, चाली न शके दीन,
धवळशेठ तव वीनवे, इणि परे थई आधीन. ४

अर्थ–इस प्रकार राजाकी विनति सुनकर, धवलसेठ कुँवरके आधीन होकर बीचमें ही विनती करते हुए बोल ऊठा–'हे स्वामी! मार्गदर्शक (रक्षक) के बिना जैसे अनजान मुसाफिर एक दिन भी आगे नहीं चल सकता, वैसे आपके बिना मैं अकेला एक दिन भी आगे नहीं बढ़ सकता ॥४॥

www.jaintatvagyanshala.org

प्रभु तुमने वंछे सहु, देखी पुण्य पडूर,
पण विलंब थाये घणो, रतनद्वीप छे दूर. ५

अर्थ—हे स्वामी! आपको पुण्यवान समझकर सब लोग चाहते हैं, किन्तु रत्नद्वीप बहुत दूर है और हमें यहाँ रुके काफी समय हो गया है (अतः नगरमें जानेका न रखें तो ठीक रहेगा) ॥५॥

कुंवर कहे नररायनुं, दाखिण किम छंडाय?
तिणे नयरी जोवा भणी, कुंवरे कियो पसाय. ६

अर्थ—तब कुँवर कहने लगा—हे सेठ! राजाके दाक्षिण्यवचनका खंडन कैसे किया जाय? यों कहकर नगर देखनेके लिये कुँवरने राजा पर दया की अर्थात् राजाकी विनति स्वीकार की ॥६॥

हाट सज्यां हीरागले, घर घर तोरण माळ,
चहुटे चहुटे चोकमां, नाटक गीत रसाळ. ७

अर्थ—इधर राजाने दूकानें रेशमी कलाबतूनी कपड़ोंसे सजाई, घर घर तोरनकी कतारें बँधवाई और गली-गलीमें और चौकमें मनोहर नाटक और गीत होने लगे ॥७॥

फूल बिछायां फूटरां, पंथ करी छंटकाव,
गज तुरंग शणगारिया, सोवन रूपे साव. ८

अर्थ—मार्गमें पानी छँटवाकर विकस्वर फूल बिछाये तथा सोने और चाँदीके साजसे हाथी और घोड़ोंको सजाया (अर्थात् इस प्रकार स्वागतकी तैयारी की) ॥८॥

ढाल पाँचवीं

(राग-सिंधूडो, चित्रोडा राजा रे—ए देशी)

विनंती अवधारे रे, पुरमांहे पधारे रे,
महोत वधारे बब्बर रायनुं रे.
कुंवर वडभागी रे, देखी सोभागी रे,
जोवा रढ लागी पग पग लोकने रे. १

अर्थ—अब श्रीपालकुँवर राजाकी विनतीका स्वीकार कर नगरमें पधार रहे हैं और बब्बरकोटके राजाका महत्त्व (मान) बढ़ा रहे हैं। श्रीपालकुँवर महा भाग्यशाली और प्रतापी होनेसे पग-पग पर उसे देखनेके लिये लोगोंकी उत्कंठा बढ़ी ॥१॥

घर तेडी आव्या रे, साजन मन भाव्या रे,
सोवन मंडाव्यां आसन बेसणां रे,
मीठाई मेवा रे, पकवान कलेवा रे,
भगति करे सेवा बब्बर बहु परे रे. २

अर्थ—इस प्रकार कुँवरको राजा अपने महलमें ले आये जिससे सज्जनोंके मन भी बहुत हर्षित हुए। कुँवरके बैठनेके लिये सुवर्णके आसन बनवाये और राजा मेवा, मीठाई और पक्वान्न तैयार कराने लगा। इस प्रकार बब्बरकोटका राजा विविध प्रकारसे कुँवरकी सेवा-भक्ति करने लगा ॥२॥

भोजन घृत गोळ रे, उपर तंबोळ रे,
केसर रंगरोळ करे वळी छांटणां रे,
सवि साजन साखे रे, मुखे मधुरुं भाखे रे,
अंतर नवि राखे कांई प्रेममां रे. ३

अर्थ—गुड़ और घीमिश्रित अनेक प्रकारके भोजन कराये, ऊपर तांबूल दिया, फिर केसरयुक्त सुगंधी जल छिड़कवाया। फिर राजा सर्व स्वजनोंकी साक्षीसे अंतरंग प्रेमपूर्वक यों मधुर वचन कहने लगा— ॥३॥

दिये कन्यादान रे, देई बहुमान रे,
परणी अम वान वधारो वंशनो रे,
तव कुंवर भाखे रे, कुल जाण्या पाखे रे,
किम चित्तनी साखे, दीजे दीकरी रे. ४

अर्थ—हे कुँवर! हम आपको बहुमानपूर्वक कन्यादान दे रहे हैं अतः आप हमारी कन्यासे विवाह कर हमारे वंशका तेज बढ़ाइये अर्थात् हमारे कुलको उज्ज्वल करिये। तब कुँवरने कहा—हे राजन्! कुल आदि जाने बिना केवल चित्तकी साक्षीसे ही कन्या कैसे दी जाय (ब्याही जाय)? ॥४॥

कहे नृप अवतंस रे, छानो नहि हंस रे,
जाण्यो तुम उत्तम वंश गुणे करी रे,
जाणे सहु कोई रे, जे नजरे जोई रे,
हीरो नवि होई विण वेरागरे रे. ५

अर्थ—तब राजाने कहा—पक्षियोंमें मुकट समान हँस जैसे छिप नहीं सकता, वैसे आपके गुणोंसे आपका वंश उत्तम है ऐसा हमने जान लिया है। जो हीरेको अपनी नजरसे देखते हैं वे सब जानते हैं कि खानके बिना हीरा हो नहीं सकता ॥५॥

www.jaintatvagyanshala.org

महोत्सव मंडावे रे, साजन सहु आवे रे,
धवल गवरावे मंगल नरवरु रे;
रूपे जिसी मेना रे, गुण पार न जेना रे,
मदनसेना परणावी इणी परे रे. ६

अर्थ—यों कहकर राजाने परिणयोत्सव शुरू करवाया। उस प्रसंगपर सब प्रतिष्ठित लोग आ रहे हैं, राजा मांगलिक गीत गँवा रहे हैं। इस प्रकार अत्यंत ठाठबाटसे रूपसे अप्सरा जैसी और जिसके गुणोंका पार नहीं है ऐसी मदनसेना कन्याको ब्याही ॥६॥

मणि माणिक कोडी रे, मुक्ताफल जोडी रे,
नरपति कर जोडी दिये दायजो रे,
परेंपरें पहिरावे रे, मणि भूषण भावे रे,
पार न आवे जस गुण बोलतां रे. ७

अर्थ—फिर राजाने हाथ जोड़कर करोड़ों मणि, रत्न, माणेक तथा मोती कन्यादानमें दिये। जिसके गुणोंका पार नहीं है ऐसे मणिके आभूषण बारबार आग्रहपूर्वक कुँवरको पहनाये ॥७॥

नाटक नव दीधां रे, तिहां पात्र प्रसिद्धां रे,
जाणे ए लीधां मोले सरगथी रे,
बहु दासी दास रे, सेवक सुविलास रे,
दीधां उल्लासे सेवा कारणे रे. ८

अर्थ—इसके अलावा नौ नाटक मंडलियाँ दहेजमें दी, जिसमें मानो स्वर्गसे मूल्य चुकाकर खरीद लाये हो ऐसे प्रसिद्ध पात्र थे। तथा वधू-वरकी सेवाके लिये अनेक दास-दासी तथा हास्यप्रिय नौकर भी उल्लासपूर्वक दिये ॥८॥

रसभर दिन केता रे, तिहां रहे सुख वेता रे,
दान याचकने देता बहु परे रे,
अमने वोळावो रे, हवे वार न लावो रे,
कहे कुंवर जावो अम देशान्तरे रे. ९

अर्थ—यों कितने ही दिनों तक आनंदपूर्वक सुखका उपभोग करते हुए और याचकोंको बहुत दान देते हुए श्रीपालकुँवर वहाँ रहे। फिर कुँवरने कहा—अब हमें परदेश जाना है अतः देरी न करें और हमें शीघ्र बिदा करें ॥९॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

नृप मन दुःख आणे रे, केम राखुं पराणे रे,
घर इम जाणे न वसे प्राहुणे रे,
पुत्री जे जाई रे, ते नेट पराई रे,
करे सजाई हवे वोळाववा रे. १०

अर्थ—यह सुनकर राजाको बहुत दुःख हुआ और वह सोचने लगा—मेहमानको जबरजस्तीसे कैसे रख सकते हैं? मेहमानसे कभी घर नहीं बसता और पुत्री जो पैदा हुई है वह तो निश्चय पराई ही है। यों सोचकर वह बिदा करनेकी तैयारी करने लगा ॥१०॥

एक जूंग अलंभ रे, जे देखी अचंभ रे,
चोसठ कुवाथंभे सुंदर सोहतुं रे,
कारीगरे घडीया रे, मणि माणिक जडिया रे,
थंभ ते अडिया जई गयणांगणे रे. ११

अर्थ—(दहेजमें देनेके लिये एक जहाज ऐसा तैयार करवाया कि) जिसे देखकर आश्चर्य पैदा हो ऐसा एक जूंग जातिका दुर्लभ जहाज था जो चौसठ मस्तूलोंसे सुशोभित हो रहा था। उन मस्तूलोंमें कारीगरोंने मणि और माणेक जड़े थे, और वे मस्तूल मानो आकाशको छू रहे हो इतने ऊँचे दिखायी दे रहे थे ॥११॥

सोवन चित्राम रे, चित्रित अभिराम रे,
देखिये ठाम ठाम तिहां गोखडा रे,
धज मोटा झलके रे, मणि तोरण चलके रे,
चंचल ढलके चामर चिहुं दिशे रे. १२

अर्थ—उस जहाजमें सुवर्ण चित्रोंसे चित्रित मनोहर झरोखें जगह-जगह दिखायी दे रहे थे तथा उसमें बड़े बड़े झंड़े फहरा रहे थे, मणिमय तोरन चमक रहे थे और चारों दिशाओंमें चमर ढुल रहे थे ॥१२॥

भूंई सातमीए रे, तिहां चढी विशमीए रे,
बेसीने रमीए सोवन सोगठे रे,
बहु छंदे छाजे रे, वाजां घणां वाजे रे,
वहाण गाजे रह्युं समुद्रमां रे. १३

अर्थ—उस जहाजकी सातवीं मंजिलमें जाकर विश्रांति करे तथा वहाँ बैठकर सोनेकी गोटीसे खेले ऐसा रमणीय था और कई छंदोंसे शोभित हो

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

रहा था। उसमें कई प्रकारके बाजें बज रहे थे जिससे वह जहाज मानो समुद्रमें गर्जना कर रहा हो ऐसा लगता था ॥१३॥

पूरे ते रतने रे, राजा बहु जतने रे,
सासरवासो मन मोटे करे रे,
वोळावी बेटी रे, हियडाभरे भेटी रे,
शीखगुण पेटी दीधी बहु परे रे. १४

अर्थ—अब राजाने उस जहाजको विविध बहुमूल्य रत्नोंसे भर दिया। इस प्रकार उदार दिलसे दहेज दिया। फिर भरे हृदयसे आलिंगन कर बेटीको बिदा किया और उस समय उत्तम सीखरूप गुणोंकी पेटी दी अर्थात् कई हिदायतें दी ॥१४॥

साजन सोहाव्यां रे, मिलणां बहु लाव्यां रे,
कांठे सवि आव्यां आंसु पाडता रे,
वरवहु वोळाव्यां रे, मावितर दुःख पाव्यां रे,
तुर वजडाव्यां हवे प्रयाणनां रे. १५

अर्थ—उस समय अनेक प्रतिष्ठित लोग भी आये और अनेक प्रकारकी सौगाते लाये। फिर सर्व स्नेहीजन आँसु सारते हुए समुद्रकिनारे आये और वधूवरको बिदा दी, तब माता-पिताको बहुत दुःख हुआ। फिर प्रयाणकी नोबते बजने लगी ॥१५॥

नांगर उपडाव्यां रे, सढ दोर चढाव्यां रे,
वाहण चलाव्यां वेगे खलासीए रे,
नित नाटक थावे रे, गुणि जन गुण गावे रे,
वर वहु सोहावे बेहु गोखडे रे. १६

अर्थ—फिर जहाजके लंगर उठा लिये गये और पाल रस्सीसे बाँध दिये गये। फिर खलासी (मल्लाह) तेजीसे जहाज चलाने लगा। उस समय जहाजके झरोखेमें बैठे हुए वरवधू शोभित हो रहे थे। उनके आगे हमेशा नये-नये नाटक हो रहे थे और गुणवान लोग उनके गुणग्राम कर रहे थे ॥१६॥

मन चिंते शेठ रे, में कीधी वेठ रे,
सायर ठेठ फल्यो जुओ एहने रे,
जे खाली हाथे रे, आव्यो मुज साथे रे,
आजे ते आथें संपूरण थयो रे. १७

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—श्रीपालकुँवरकी यह सर्व ऋद्धि-सिद्धि देखकर धवलसेठ मनमें सोचने लगा कि मैंने तो केवल बेगार ही की है और इस कुँवरको पहलेसे ही समुद्र फलीभूत हुआ हैं, क्योंकि जो मेरे साथ खाली हाथ आया था वह तो आज धनसे परिपूर्ण हो गया है ॥१७॥

जळ ईंधण माटे रे, आव्या इण वाटे रे,
परण्यो रण साटे जुओ सुंदरी रे,
लखमी मुज आधी रे, इणे मुहियां लाधी रे,
दोलत वाधी देखो पलकमां रे. १८

अर्थ—हम यहाँ पर रास्तेमें फक्त पानी और लकड़ीके लिये ही रुके थे, किन्तु इस कुँवरने तो रणसंग्राम कर सुंदरीसे शादी भी कर ली और सहजमें मेरी आधी लक्ष्मी भी हड़प ली। यों पलभरमें इसकी दौलत बढ़ गयी ॥१८॥

किम मागुं भाडुं रे, खतपत्र देखाडुं रे,
देशे के आडुं अवळुं बोलशे रे,
कुंवर ते जाणी रे, मुखे मीठी वाणी रे,
भाडुं तस आणी आपे दश गणुं रे. १९

अर्थ—मेरा इसके पाससे एक महीनेका किराया बकाया निकलता है पर अब कैसे माँगूँ? और दस्तावेज भी कैसे दिखाऊँ? यदि मैं क्वचित् किराया माँग भी लूँ तो वह किराया देगा या उलटा-सीधा बोलेगा? फिर सेठके मनोभावसे कुँवरने यह बात जान ली, इसलिये मुँहसे मीठे वचन बोलते हुए दस गुना किराया दे दिया ॥१९॥

पाम्या अनुकरमे रे, नरभव जिनधरमे रे,
वहाण रयण दीवे खेमे सहु रे,
नांगर जल मेल्यां रे, सढ दोर संकेल्यां रे,
हळवे हळवे लोक सहु तिहां ऊतर्यां रे. २०

अर्थ—जैसे जैनधर्मके प्रभावसे मनुष्यजन्म प्राप्त होता है वैसे अनुक्रमसे सभी जहाज कुशलक्षेम रत्नद्वीप पहुँच गये। फिर वहाँ जहाजोंके लंगर पानीमें डाले और पालके रस्से समेट लिये तथा लोग धीरे-धीरे वहाँ उतरने लगे ॥२०॥

बीजे इम खंडे रे, जुओ पुण्य अखंडे रे,
एकणपिंडे उपार्जन करी रे,

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कुंवर श्रीपाळ रे, लह्या भोग रसाळ रे,
पांचमी ढाळ इसी विनये कही रे. २१

अर्थ—इस प्रकार महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराजने दूसरे खंडकी पाँचवीं ढाल कही। उसमें यों कहा—हे भव्य प्राणियों! देखो, अखंड पुण्यके प्रभावसे अकेले श्रीपालकुँवरने अनहद ऋद्धि पाकर श्रेष्ठ भोगोंको संप्राप्त किया ॥२१॥

द्वितीय खंडकी पाँचवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

दाण वळावी वस्तुनां, भरी अनेक वखार,
व्यापारी व्यापारनां, उद्यम करे अपार. १

अर्थ—अब उस रत्नद्वीप पर सब किरानेकी वस्तुओंकी जकात (टेक्ष) देकर, वह सारा माल अनेक गोदामोंमें भरकर व्यापारी व्यापार करनेके लिये अनेक प्रकारसे उद्यम करने लगे ॥१॥

लाल किनायत जरकसी, चंदरवा चोसाळ,
ऊंचा तंबु ताणिया, पंचरंग पटशाळ. २

अर्थ—वहाँ समुद्र किनारे पर पचरंगी रेशमी वस्त्रोंके ऊँचे तंबू खींचे और उसमें लालरंगके किनखापकी जरी वाले चौरस चँदवे बाँधे ॥२॥

सोवन पट मंडप तळे, रयण हिंडोळा खाट,
तिहां बेठां कुंवर जुए, रसभर नवरस नाट. ३

अर्थ—ऐसे सोनेके रंगवाले रेशमी जरीके वस्त्रोंके मंडपमें रत्नके झूलेमें बैठे बैठे कुँवर नवरसयुक्त नाटक आनंदपूर्वक देख रहे थे ॥३॥

धवळशेठ आवी कहे, वस्तु मूल्य बहु आज,
ते वेचावो कां नहि, भर्या अढीसें जहाज. ४

अर्थ—उस समय धवलसेठ आकर श्रीपालकुँवरसे कहने लगा—हे स्वामी! आज किरानेके भाव बहुत ही तेज है तो आप अपने ढाई सौ जहाजोंमें भरे हुए किरानेको क्यों नहीं बिकवाते? ॥४॥

कुंवर पभणे शेठने, घडो वस्तुनां दाम,
अवर वस्तु विणजो वळी, करो अमारुं काम. ५

अर्थ—तब श्रीपालकुँवरने सेठसे कहा—आप हमारी वस्तुएँ बेचकर

www.jaintatvagyanshala.org

उसकी नकदी करिये और दूसरी अच्छी वस्तु खरीदिये; इतना हमारा काम आप कर दीजिये ॥५॥

काम भळाव्युं अम भले, हरख्यो दुष्ट किराड,
आरत ध्याने जिम पड्यो, पामी दूध बिलाड. ६

अर्थ–श्रीपालका यह कथन सुनकर भील जैसा वह पापी धवल सेठ हर्षित तो हुआ किन्तु साथ ही जैसे बिलाव दूध देखकर आर्त्तध्यान करें वैसे वह भी आर्त्तध्यानमें पड़ गया। कहा है कि–

वृश्चिकानां भुजंगानां, दुर्जनानां च वेधसा ।
विभज्य नियतं न्यस्तं, विषं पुच्छे मुखे हृदि ॥१॥

अर्थात् ब्रह्माने बिच्छुकी पूँछमें, सर्पके मुखमें और दुर्जनके हृदयमें सचमुच ही सारा जहर बँटवारा कर भर दिया है ॥६॥

इण अवसर आव्यो तिहां, अवल एक असवार,
सुगुण सुरूप सुवेष जस, आप समो परिवार. ७

अर्थ–इतनेमें एक उत्तम घुडसवार वहाँ आया। वह घुड़सवार सुंदर गुणवाला, अच्छे रूपवाला और मनोहर वेषवाला था और साथमें उसका परिवार भी उसके जैसा ही था ॥७॥

कुंवरे तेडी आदरे, बेसार्यो निज पास,
अद्‌भुत नाटक देखतां, ते पाम्यो उल्लास. ८

अर्थ–श्रीपालकुँवरने उस व्यक्तिको आदरपूर्वक बुलाकर अपने पास बिठाया। वह व्यक्ति भी वहाँ अद्‌भुत नाटक देखकर अत्यंत हर्षित हुआ ॥८॥

हवे नाटक पूरे थये, कुंवर पूछे तास,
कुण कारण कुण ठामथी, पाउधार्या अम पास. ९

अर्थ–नाटक पूर्ण होने पर श्रीपालकुँवर उनसे पूछने लगे–हे बंधु! आप कहाँसे आये हैं? यहाँ किस प्रयोजनसे आये हैं? और मेरे लायक कोई काम हो तो बताइये ॥९॥

ढाल छठीं

(झांझरीया मुनिवर धन धन तुम अवतार–ए देशी)

तेह पुरुष हवे वीनवेजी, रतन ए द्वीप सुरंग,
रतनसानु पर्वत इहांजी, वलयाकार उत्तंग,
प्रभु! चित्त धरीने अवधारो मुज वात. १

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—अब वह व्यक्ति कुँवरसे विनतीपूर्वक कहने लगा—हे स्वामिन्! मैं आपसे जो बात कहूँ उसे आप शांतिसे ध्यानपूर्वक सुनियेगा। रत्नद्वीप नामक एक सुंदर द्वीप है। वहाँ अत्यंत ऊँचा गोलाकार और रत्नके शिखरवाला रत्नसानु नामका पर्वत है ॥१॥

रतनसंचया तिहां वसेजी, नयरी परवत मांह,
कनककेतु राजा तिहांजी, विद्याधर नरनाह. प्रभु० २

अर्थ—उस पर्वत पर रत्नसंचया नामक नगरी है और उस नगरीमें विद्याधर मनुष्योंका स्वामी कनककेतु राजा राज्य करता है ॥२॥

रतन जिसी रळियामणीजी, रतनमाला तस नार,
सुरसुंदर सोहामणाजी, नंदन छे तस चार. प्रभु० ३

अर्थ—उस राजाके रत्न जैसी देदीप्यमान रत्नमाला नामक रानी है और उसे देव जैसे मनोहर सुशोभित चार पुत्र हैं—(१) कनकप्रभ (२) कनकशेखर (३) कनकध्वज (४) कनकरुचि ॥३॥

ते उपर एक इच्छतांजी, पुत्री हुई गुणधाम,
रूपकला रति आगलीजी, मदनमंजूषा नाम. प्रभु० ४

अर्थ—इन चार पुत्रों पर उस राजाको इच्छानुसार एक गुणवान पुत्री हुई है जो रूप और कलामें कामदेवकी पत्नी रतिसे भी बढ़कर है। उस पुत्रीका नाम मदनमंजूषा है ॥४॥

पर्वतशिर सोहामणोजी, तिहां एक जिनप्रासाद;
रायपिताए करावियोजी, मेरुशुं मंडे वाद. प्रभु० ५

अर्थ—उस पर्वतके शिखर पर राजाके पिता द्वारा निर्मित एक मनोहर जिनप्रासाद है। वह जिनप्रासाद ऊँचाईमें मानो मेरुपर्वतके साथ स्पर्धा कर रहा हो ऐसा दिखाई दे रहा है। (अर्थात् वह जिनप्रासाद बहुत ऊँचा है) ॥५॥

सोवनमय सोहामणाजी, तिहां रिसहेसर देव,
कनककेतु राजा तिहांजी, अहनिश सारे सेव. प्रभु० ६

अर्थ—उस जिनप्रासादमें मनको आनंददायक ऐसी अलौकिक सुशोभित सुवर्णमय ऋषभदेवकी मूर्ति है और विद्याधरोंके स्वामी कनककेतु राजा उन प्रभुकी सदैव भक्ति करते हैं ॥६॥

भक्ते भली पूजा करेजी, राजकुंवरी त्रण काळ,
अगर उवेखे गुण स्तवेजी, गाये गीत रसाळ. प्रभु० ७

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—राजकुँवरी मदनमंजूषा भी खूब भक्तिभावपूर्वक त्रिकाल सम्यक् प्रकारसे प्रभुकी पूजा करती है, सुगंधी अगरुका धूप करती है और मनोहर गीत गाकर भगवानके गुणोंकी स्तवना करती है ॥७॥

एक दिन जिन आंगी रचीजी, कुंवरीए अति चंग;
कनकपत्र करि कोरणीजी, विच विच रतन सुरंग. प्रभु० ८

अर्थ—अब एक दिन मदनमंजूषा कुँवरीने सोनेके पत्र पर सुंदर कोरनी (आकृति) कर बीच-बीचमें रंगबेरंगी रत्न जड़कर प्रभुजीकी अत्यंत मनोहर आँगी बनाई ॥८॥

आव्यो राय जुहारवाजी, देखे सुता विज्ञान,
मन चिंते धन मुज धूआजी, चउसठ्ठ कला निधान. प्रभु० ९

अर्थ—इतनेमें राजा जिनेश्वर प्रभुके दर्शन करने आया और पुत्री द्वारा बनाई हुई आँगीकी कला देखी। उसे देखकर राजा चित्तमें विचार करने लगा—चौसठकलानिधान मेरी पुत्रीको धन्य है! ॥९॥

ए सरीखो जो वर मिलेजी, तो मुज मन सुख थाय,
साची सोवन मुद्रडीजी, काच तिहां न जडाय. प्रभु० १०

अर्थ—किन्तु जैसी यह मेरी पुत्री है वैसा उसके योग्य पति मिले तो मेरे मनको अत्यंत आनंद होगा। क्योंकि सोनेकी सच्ची अंगूठीमें काच जड़ा नहीं जाता ॥१०॥

एम ऊभो शूने मनेजी, चिंतातुर नृप होय,
इण अवसर अचरिज थयुंजी, ते सुणजो सहु कोय. प्रभु० ११

अर्थ—इस प्रकार चिंतामें मुग्ध हुआ राजा शून्य मनस्क होकर खड़ा था। इतनेमें जो आश्चर्य हुआ उसे आप सब लोग सुनिये ॥११॥

ओसरती पाछे पगेजी, जिन मुख जोती सार,
आवी गभारा बाहिरेजी, जव ते राजकुमारी. प्रभु० १२

अर्थ—अब वह राजकुँवरी जिनेश्वर भगवानके सुंदर मुखको देखती हुए उल्टे पैरों चलती हुई गर्भगृहके बाहर आई ॥१२॥

ताम गभारा तेहनांजी, देवाणां दोय बार,
हलाव्यां हाले नहीं जी, सलके नहि य लगार. प्रभु० १३

अर्थ—जैसे ही राजकुँवरी बाहर आई कि तुरत ही गर्भगृहके दोनों द्वार

www.jaintatvagyanshala.org

एकदम बंद हो गये। वे द्वार ऐसे बंद हो गये कि चाहे जितने हिलाने पर भी हिलते नहीं है और जरा भी खिसकते नहीं है ॥१३॥

राजकुंवरी इम चिंतवेजी, मन आणी विखवाद,
में कीधी आशातनाजी, कोईक धरी प्रमाद. प्रभु० १४

अर्थ—तब राजकुँवरीको बहुत दुःख हुआ। वह मनमें खेदपूर्वक यों सोचने लगी कि अवश्य प्रमादवश मुझसे कोई प्रकारकी आशातना हुई होनी चाहिये (नहीं तो ऐसा कैसे हो गया!) ॥१४॥

धिक् मुज जिन जोवातणोजी, उपन्यो एह अंतराय,
दोष सयल मुज सांसहोजी, स्वामी करी सुपसाय. प्रभु० १५

अर्थ—धिक्कार है मुझे! कि जिनेश्वर प्रभुके मुखकमलके दर्शनका अंतराय मुझे उदयमें आया। हे स्वामी! कृपा करके मुझसे जो आशातना हुई हो उसे क्षमा कीजियेगा ॥१५॥

दादा दरिसण दीजियेजी, ए दुःख में न खमाय,
छोरू होय कछोरूआंजी, छेह न दाखे माय. प्रभु० १६

अर्थ—हे दादाजी! हे नाथ! आप मुझे दर्शन दीजिये! हे प्रभो! यह दुःख मुझसे सहन नहीं होता। हे भगवन्! कदाच पुत्र कपूत हो, परंतु माता-पिता कभी खराब नहीं होते अर्थात् वे कभी बच्चोंको मझधारमें नहीं छोड़ते, उसी तरह आप भी मुझे इस तरह दुःखमें मत छोड़िये ॥१६॥

राय कहे वत्स सांभळोजी, दोष नहीं तुज एह,
दोष इहां छे माहरोजी, आणी तुज पर नेह. प्रभु० १७

अर्थ—इस प्रकार पुत्रीको विलाप करती हुई देखकर राजाने कहा—हे पुत्री! यह तेरी भूल नहीं है, परन्तु तुझ पर स्नेह लाकर मैंने अयोग्य चिंता की है इसलिये यहाँ दोष मेरा ही है ॥१७॥

वरनी चिंता चिंतवीजी, जिणहरमांहि जेण,
ते लागी आशातनाजी, बार देवाणां तेण. प्रभु० १८

अर्थ—क्योंकि हे पुत्री! मैंने जिनमंदिरमें तेरे वरकी चिंता की, इससे मुझे आशातना लगी और मंदिरके द्वार बंद हो गये ॥१८॥

जिनवर तो रूषे नहींजी, वीतराग सुप्रसिद्ध,
पण कोईक अधिष्ठायकेजी, ए मुज शिक्षा दीध. प्रभु० १९

अर्थ—परंतु हे पुत्री ! जिनेश्वर भगवान तो रागद्वेष रहित (वीतराग) है, वे किसी पर गुस्सा करते ही नहीं है। मगर किसी अधिष्ठायक देवने मुझे शिक्षा देनेके लिये इस प्रकार किया लगता है ॥१९॥

ए कमाड विण ऊघडेजी, जाउं नहीं आवास,
सपरिवार नृपने तिहांजी, त्रण हुआ उपवास. प्रभु० २०

अर्थ—अब, जब तक ये जिनमंदिरके द्वार नहीं खुलेंगे तब तक मैं यहाँ से घर (महल) नहीं जाऊँगा। इस प्रकार निर्धार करके राजाको परिवार सहित वहाँ रहते तीन उपवास हुए ॥२०॥

त्रीजे दिन निशि पाछलीजी, वाणी हुई आकाश,
दोष नथी इहां कोईनोजी, कांई करो रे विषाद. प्रभु० २१

अर्थ—तीसरे दिन रात्रीके पिछले प्रहरमें आकाशवाणी हुई कि यहाँ किसीका भी दोष नहीं है, इसलिये आप लोग खेद क्यों कर रहे हैं? ॥२१॥

जेहनी नजरे देखतांजी, ऊघडशे ए बार,
मदनमंजूषा तणो थशेजी, तेह ज नर भरतार. प्रभु० २२

अर्थ—जिस महापुरुषकी नजर पड़ते ही ये मंदिरके द्वार खुलेंगे, वही मनुष्य इस मदनमंजूषाका पति होगा। (यह बात बतानेके लिये ही ये मंदिरके द्वार बंद हुए हैं) ॥२२॥

ऋषभदेवनी किंकरीजी, हुं चक्केसरी देवी,
एक मास मांहे हवेजी, आवुं वरने लेवी. प्रभु० २३

अर्थ—(यह जो बोल रही हूँ वह) मैं ऋषभदेव भगवानकी दासी चक्रेश्वरी देवी हूँ। अब मैं एक महीनेमें ही उसके पतिको लेकर आती हूँ ॥२३॥

सुणी तेह हरख्यां सहुजी, रायने अति आणंद,
प्रेमे कीधां पारणांजी, दूर गयां दुःख दंद. प्रभु० २४

अर्थ—इस प्रकार देवीकी आकाशवाणी सुनकर सब लोग खुश हुए और राजाको भी अत्यंत आनंद हुआ। फिर राजाने और सब लोगोंने पारणा किया तथा सारे दुःख दूर चले गये ॥२४॥

दिन गणतां ते मासमांजी, ओछो छे दिन एक,
तिणे जुवे सहु वाटडीजी, करे विकल्प अनेक. प्रभु० २५

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—अब गिनती करते हुए वह महीना पूरा होनेमें एक ही दिन बाकी है इसलिये सब लोग राह देख रहे हैं और अनेक प्रकारके विकल्प कर रहे हैं ॥२५॥

पुत्र शेठ जिनदेवनोजी, हुं श्रावक जिनदास,
प्रवहण आव्यां सांभळीजी, आव्यो इहां उल्लास. प्रभु० २६

अर्थ—हे कुँवर ! मैं इसी नगरके जिनदेव नामक सेठका पुत्र जिनदास श्रावक हूँ। यहाँ जहाज आये हुए हैं यह सुनकर उल्लासपूर्वक यहाँ आया हूँ ॥२६॥

सुणी नाद नाटक तणोजी, देखण आव्यो जाम,
मनमोहन प्रभु तुम तणुंजी, दरिसण दीठुं ताम. प्रभु० २७

अर्थ—नाटक आदिका आवाज सुनकर मैं जैसे ही वह देखने आया उतनेमें हे स्वामी ! मुझे आप जैसे मनमोहक प्रभुके दर्शन हुए ॥२७॥

जाणुं देवी चक्केसरीजी, तुमे आण्या अम पास,
जिणहर बार उघाडतांजी, फळशे सहुनी आश. प्रभु० २८

अर्थ—मैं मानता हूँ कि अवश्य चक्रेश्वरी देवीने ही आपको हमारे पास लाया है, इससे आपकी दृष्टि पड़ते ही जिनमंदिरके द्वार खुलेंगे और हम सबकी आशा फलीभूत होगी ॥२८॥

पूज्य! पधारो देहरेजी, जुहारो श्री जगदीश,
ऊघडशे ते बारणांजी, जाणुं वीसवा वीश. प्रभु० २९

अर्थ—इसलिये हे पूज्य ! आप ऋषभदेव प्रभुके मंदिरमें पधारिये और तीन भुवनके नाथ श्री जिनेश्वर देवको नमस्कार कीजिये, ताकि ये दरवाजे खुल जायेंगे—ऐसा मैं शतप्रतिशत मानता हूँ ॥२९॥

बीजे खंडे इणी परेजी, सुणतां छट्ठी ढाळ,
विनय कहे श्रोता घरेजी, होजो मंगळ माळ. प्रभु० ३०

अर्थ—इस प्रकार दूसरे खंडकी यह छठीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि यह ढाल सुननेवाले श्रोताओंके घरमें मांगलिक माला होओ ॥३०॥

द्वितीय खंडकी छठीं ढाल समाप्त

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

दोहा छंद

तव हरखे कुंवर भणे, धवळशेठने तेडी,
जईए देव जुहारवा, आवो दुर्मति फेडी. १

अर्थ–इस मौके पर श्रीपालकुँवर हर्षपूर्वक धवलसेठको बुलाकर कहने लगे–हे सेठ ! आप दुर्बुद्धिको छोड़कर हमारे साथ चलिये, हम जिनेश्वर देवकी वंदनाके लिये जा रहे हैं ॥१॥

शेठ कहे जिनवर नमो, नवरा तुमे निचिंत,
विण उपराजे जेहनी, पहोंचे मननी खंत. २

अर्थ–धवलसेठ बोला–हे कुँवर ! आप बेकार (कामकाजरहित) और निश्चिंत हैं तथा बिना उपार्जन किये धन आपके पास आता है और आपकी मनकी इच्छाएँ पूर्ण होती है, इसलिये आप जिनेश्वरदेवको नमस्कार किया करे ॥२॥

अमने जमवानो नहीं, घडी एक परवार,
सीरामण वाळु जिमण, करिये एक ज वार. ३

अर्थ–हमें तो खानेके लिए एक घड़ी भी समय नहीं मिलता, इसलिये नाश्ता (सुबहका भोजन), ब्यालू (शामका भोजन) और दोपहरका भोजन–इन तीनोंके बदले एक ही बार भोजन करते हैं ॥३॥

हवे कुंवर जावा तिहां, जव थाये असवार,
हरख्यो हेषारव करे, तेजी ताम तुखार. ४

अर्थ–अब श्रीपालकुँवर वहाँ जानेके लिये घोड़े पर सवार हुए कि जातिवान अश्व हर्षित होकर हेषारव (घोड़ेका शकुनसूचक हीनहीनानेका आवाज) करने लगा ॥४॥

साथे लई जिनदासने, अवल अवर परिवार,
अनुक्रमे आव्या कुंवर, ऋषभदेव दरबार. ५

अर्थ–फिर श्रीपालकुँवर उस जिनदास श्रावक तथा अन्य पूरे परिवारको साथ लेकर अनुक्रमसे चलते चलते श्री ऋषभदेव प्रभुके दरबारमें आये ॥५॥

एकेको आवो जई, सहु गभारा पास,
कुंवर पछी पधारशे, इम बोले जिनदास. ६

अर्थ–वहाँ जिनदास श्रावक यों कहने लगा कि हर एक व्यक्ति अनुक्रमसे मंदिरके गर्भगृहके पास जाकर आ जाय। फिर श्रीपालकुँवर पधारेंगे ॥६॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

जिम निर्णय करी जाणिये, बार उघाडणहार,
गभारे आव्यां जई, सहुको करे जुहार. ७

अर्थ—इस प्रकार करनेसे यह निश्चित किया जा सकेगा कि द्वार खोलनेवाला कौन है? फिर सभी लोग अनुक्रमसे गर्भगृहके पास जाकर भगवानको वंदन कर आये ॥७॥

हवे कुंवर करी धोतियां, मुख बांधी मुखकोश,
जिणहर मांहि संचरे, मन आणी संतोष. ८

अर्थ—फिर श्रीपालकुँवर शुद्ध धोती पहनकर, मुँह पर मुखकोश (मुखवस्त्रिका) बाँधकर मनमें आनंदित होते हुए जिनेश्वर प्रभुके मंदिरकी ओर चले ॥८॥

ढाल सातवीं

(राग मल्हार—बे बे मुनिवर विहरण पांगर्याजी—ए देशी)

कुंवर गभारो नजरे देखतांजी, बेहु उघडियां बार रे,
देव कुसुम वरसे तिहांजी, हुवो जयजयकार रे. कुंवर० १

अर्थ—अब जैसे ही श्रीपालकुँवरने गर्भगृह पर नजर डाली कि तुरत ही दोनों दरवाजे खुल गये और देवोंने वहाँ पुष्पवृष्टि की तथा जयजयकारकी ध्वनि हुई ॥१॥

रायने गई तुरत वधामणीजी, आज सफल सुविहाण रे,
देवी दीओ वर इहां आवियोजी, तेजे झलामळ भाण रे. कुंवर०२

अर्थ—फिर तुरत ही राजाके पास बधाईके समाचार गये—हे राजन्! आजका दिन सफल हुआ है, क्योंकि देवीदत्त (देवीका दिया हुआ) वरराजा आज यहाँ आ पहुँचा है जो तेजसे झगमगते सूर्यके समान है ॥२॥

सोवन भूषण लाख वधामणीजी, देई पंचांग पसाय रे,
सकल सजन जन परवर्योजी, देहरे आवे नरराय रे. कुंवर०३

अर्थ—तब राजाने बधाई देनेवालेको सोनेके सर्व आभूषण (मुकटको छोड़कर) तथा लाख रुपये का इनाम पंचांग नमस्कार करके दिया। फिर स्वजन और सज्जनोंके साथ वह ऋषभदेव प्रभुके प्रासादमें आया ॥३॥

दीठो कुंवर जिन पूजतोजी, केशर कुसुम घनसार रे,
चैत्यवंदन चित्त उल्लसेजी, स्तवन कहे इम सार रे. कुंवर० ४

अर्थ—वहाँ मंदिरमें राजाने श्रीपालकुँवरको केसर, पुष्प और चंदन

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

आदिसे पूजा करते हुए देखा। पश्चात् कुँवरने उल्लसित मनसे चैत्यवंदन किया और इस प्रकार श्रेष्ठ स्तवन बोला– ॥४॥

दीठो नंदन नाभिनरिंदनोजी, देवनो देव दयाळ रे,
आज महोदय में लह्योजी, पाप गयां पायाळ रे. कुंवर० ५

अर्थ–मैंने आज देवोंके देव और दयालु ऐसे नाभिराजाके पुत्र श्री ऋषभदेव प्रभुको देखा जिससे मुझे आज महान अभ्युदय प्राप्त हुआ और मेरे सब पाप पातालमें चले गये अर्थात् नष्ट हो गये ॥५॥

देव पूजीने कुंवर आवियाजी, रंगमंडप मांहि जाम रे,
राय सजन जने परवर्याजी, बेठा करीय प्रणाम रे. कुंवर० ६

अर्थ–यों वीतरागदेवकी पूजाकर कुँवर जब बाहरके रंगमंडपमें आये तब स्वजन मनुष्योंसे परिवृत्त राजा उन्हें प्रणाम करके बैठे ॥६॥

जिनहर बार उघाडतांजी, अचरिज कीधी तुमे वात रे,
देव स्वरूपी दीसो आपणांजी, वंश प्रकाशो कुल जात रे. कुंवर० ७

अर्थ–फिर राजा कुँवरकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे–हे कुँवर! आपने जिनमंदिरके द्वार खोलकर सबको हैरतमें डाल दिया है और आप देव जैसे दिखायी दे रहे हैं तो आप अपना कुल, जाति और वंश प्रकट करिये ॥७॥

न कहे उत्तम नाम ते आपणुं जी, नवि करे आप वखाण रे,
उत्तर न दीधो तेणे रायनेजी, कुंवर सयल गुण जाण रे. कुंवर०८

अर्थ–"उत्तम पुरुष स्वमुखसे अपना नाम नहीं कहते तथा स्वप्रशंसा भी नहीं करते" इस न्यायके अनुसार सर्वगुणसंपन्न कुँवरने राजाको कोई उत्तर नहीं दिया ॥८॥

देखो अचंभो इणे अवसरेजी, हुओ गयणे उद्योत रे,
ऊंचे वदने जोवे तव सहुजी, ए कुण प्रगटी ज्योत रे. कुंवर० ९

अर्थ–हे श्रोताजन! सुनिये। उस समय वहाँ एक आश्चर्य उत्पन्न हुआ– एकाएक आकाशमें उद्योत (प्रकाश) फैल गया जिससे सब लोग ऊँचे मुँह करके देखने लगे और कहने लगे कि यह कैसी ज्योति प्रकट हुई है? ॥९॥

विद्याचारण मुनि आवियाजी, देव घणा तस साथ रे,
जई गभारे जिन वांदियाजी, थुण्या श्री जगनाथ रे. कुंवर० १०

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—इतनेमें आकाशमार्गसे वहाँ एक विद्याचारण मुनि (जो मुनि विद्यासे आकाशमें गमन करते है) आये। उनके साथ कई देव भी थे। उन सबने गर्भगृहके पास जाकर जिनेश्वर भगवानको वंदन किया और जगनाथ ऐसे श्री ऋषभदेव प्रभुकी स्तुति की ॥१०॥

देव रचित वर आसनेजी, बेठा तिहां मुनिराय रे,
दिये मधुर ध्वनि देशनाजी, भविक श्रवण सुखदाय रे. कुंवर०११

अर्थ—फिर विद्याचारण मुनि देवरचित उत्तम सिंहासन पर बिराजे और भव्यजीवोंके कानोंको सुख देनेवाली मधुर देशना देने लगे ॥११॥

नवपद महिमा तिहां वरणवेजी, सेवो भविक सिद्धचक्र रे,
इह भव परभव लहिये एहथीजी, लीला लहेर अथक्क रे. कुंवर०१२

अर्थ—उस देशनामें वे नवपदजीकी महिमाका वर्णन करने लगे—हे भव्य जीवों! श्री सिद्धचक्रजीकी सेवा करो। उनकी सेवासे इस भव और परभवमें अपार खुशहाली प्राप्त होती है ॥१२॥

दुःख दोहग सवि उपशमेजी, पग पग पामे ऋद्धि रसाळ रे,
ए नवपद आराधतांजी, जिम जग कुंवर श्रीपाळ रे. कुंवर०१३

अर्थ—इस नवपदकी आराधनासे श्रीपालकुँवरकी तरह जगतमें सर्व प्रकारके दुःख और दौर्भाग्य शान्त होते हैं और पग पग पर मनोहर ऋद्धि प्राप्त होती है ॥१३॥

प्रेमे सयल पूछे परषदाजी, ते कुण कुंवर श्रीपाळ रे,
मुनिवर तव धुरथी कहेजी, तेहनुं चरित्र रसाळ रे. कुंवर०१४

अर्थ—तब प्रेमपूर्वक पर्षदा (सभाके लोग) पूछने लगे—हे पूज्य! वे श्रीपाल कुँवर कौन थे? तब मुनिराजने श्रीपालकुँवरका मनोहर चरित्र शुरूआतसे लेकर मंदिरके द्वार खोलने तकका पूरा चरित्र कह सुनाया ॥१४॥

ते तुम पुण्ये इहां आवियोजी, ऊघड्यां चैत्य दुवार रे,
तेह सुणीने नृप हरखियोजी, हरख्यो सवि परिवार रे. कुंवर०१५

अर्थ—(फिर मुनिराजने कहा कि) वही श्रीपालकुँवर आपके पुण्यसे यहाँ आये हुए हैं और उन्हींकी दृष्टिसे ये मंदिरके द्वार खुले हैं। यह सारी बात सुनकर राजा हर्षित हुआ और सारे परिवारको भी आनंद हुआ ॥१५॥

एम कहीने मुनिवर उतपत्याजी, गयण मारग ते जाय रे,
ऊभा थई ऊंचे मुखेजी, वंदे सहु तस पाय रे. कुंवर०१६

अर्थ—इस प्रकार कहकर मुनि भगवान तो आकाशमार्गसे उड़कर चले गये। फिर पर्षदाके सब लोग खड़े होकर ऊँचा मुँह करके उनके चरणोंमें वंदना करने लगे ॥१६॥

ढाळ सुणी इम सातमीजी, खंड बीजानी एह रे,
विनय कहे सिद्धचक्रनीजी, भक्ति करो गुणगेह रे. कुंवर०१७

अर्थ—हे भव्यजीवों! इस प्रकार दूसरे खंडकी यह सातवीं ढाल सुनकर अनेक गुणोंके घर समान श्री सिद्धचक्र भगवानकी आप भी अत्यंत भक्ति करिये ॥१७॥

द्वितीय खंडकी सातवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

बेठा जिनहर बारणे, मुखमंडप सहु कोय,
कुंवर निरखी रायनुं, हैडुं हरषित होय. १

अर्थ—अब सब लोग जिनमंदिरके दरवाजेके बाहर मंडपमें आकर बैठे और राजा कुँवरका मुँह देखकर मनमें अत्यंत हर्षित हो रहा था ॥१॥

धन रिसहेसर कल्पतरु, धन चक्केसरी देवी,
जास पसाये मुज फल्यां, मनवांछित ततखेवी. २

अर्थ—फिर राजा कहने लगा—धन्य है कल्पवृक्ष तुल्य श्री ऋषभदेव प्रभुको! और धन्य है इस चक्रेश्वरी देवीको! कि जिसकी कृपासे मेरे मनोवांछित तत्काल फलीभूत हुए ॥२॥

तिलक वधावी कुंवरने, देई श्रीफळ पान,
सुजन साखे प्रेमे करी, दीधुं कन्यादान. ३

अर्थ—फिर कुँवरको तिलक कर, चावलसे पूजकर, श्रीफल और पान देकर सब सज्जन मनुष्योंकी साक्षीसे हर्षपूर्वक कन्यादान दिया ॥३॥

श्रीफळ फोफल सयणने, देई घणां तंबोळ,
तिलक करीने छांटणां, कीधां केसर घोळ. ४

अर्थ—फिर सज्जन मनुष्योंको भी श्रीफल, सुपारी और अनेक प्रकारके पान आदि मुखवासन देकर, तिलक कर, केसरमिश्रित पानीका छंटकाव किया ॥४॥

निज डेरे कुंवर गया, मंदिर पहोता राय,
बेहु ठामे विवाहना, घणा महोत्सव थाय. ५

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–फिर श्रीपालकुँवर अपने तंबूमें गये और राजा अपने महलमें गया। वहाँ दोनोंके आवास पर विवाहके अनेक प्रकारके महोत्सव शुरू हुए ॥५॥

वडी वडारण दे वडी, पापड घणां वणाय,
केलवीए पकवान बहु, मंगल धवल गवाय. ६

अर्थ–वहाँ बड़ी दासियाँ चौलेकी बरी बना रही है, फिर बहुत सारे पापड़ भी बेले जा रहे हैं, अनेक प्रकारके पक्वान्नकी तैयारियाँ चल रही है और अनेक प्रकारके मंगलगीत गाये जा रहे हैं ॥६॥

वाघा सीवे नवनवा, दरजी बेठा बार,
जडिया मणि माणिक जडे, घाट घडे सोनार. ७

अर्थ–दर्जी दरवाजेके पास बैठकर नये नये बागे (पैर तक पहरनेके लंबे कपड़े) सी रहे हैं, सुनार लोग नये नये गहने बना रहे हैं और पच्चीकार लोग उसमें मणि तथा माणिक जड़ रहे हैं ॥७॥

राये मंडाव्यो मांडवो, सोवन मणिमय थंभ,
थंभ थंभ मणि पूतळी, करती नाटारंभ. ८

अर्थ–राजाने एक बड़ा मंडप बनाया है, उस मंडपमें मणिजड़ित सोनेके स्तंभ हैं और हरेक स्तंभ पर नाचती हुई मणिमय पुतलियाँ रखी गई है ॥८॥

तोरण चिहुं दिशि बारणे, नील रयण मय पान,
झूमे मोती झूमखां, जाणे सरग विमान. ९

अर्थ–उस मंडपकी चारों दिशाओंमें प्रत्येक दरवाजे पर नीलरत्नके पानवाले तोरन बाँधे हुए हैं तथा मोतीके गुच्छे लटकते हुए झूल रहे हैं इससे मानो वह मंडप देवलोकका विमान हो ऐसा लगता है ॥९॥

पंच वरणने चंद्रूवे, दीपे मोती दाम,
मानुं तारामंडले, आवी कियो विशराम. १०

अर्थ–उस मंडपमें पाँच रंगके चंद्रवे बाँधे हुए हैं। उन चंद्रवोंके बीचमें मोतीकी मालाएँ चमक रही है इससे मैं मानता हूँ कि मानो तारोंके झुंडने यहाँ आकर विश्राम न लिया हो! ऐसा दृश्य लगता है ॥१०॥

चोरी चिहु पखे चीतरी, सोवन माणिक कुंभ,
फूलमाल अति फूटरी, महके सबल सुरंभ. ११

अर्थ—चारों ओर चोरी (लग्न-मंडप) रंगी हुई है और उसमें सुवर्ण और मणिके कुंभ स्थापित किये हुए हैं, उन कुंभों पर रखी हुई अत्यंत श्रेष्ठ पुष्प-मालाओंमेंसे सुगंध महक रही है ॥११॥

ढाल आठवीं

(राग-खंभायती, करडो तिहां कोटवाल—ए देशी)

हवे श्रीपालकुमार, विधिपूर्वक मज्जन करेजी,
पहेरे सवि शणगार, तिलक निलाडे शोभा धरेजी. १

अर्थ—अब श्रीपालकुँवरने विधिपूर्वक शरीर पर विलेपन किया, स्नान किया, फिर सर्व प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंसे युक्त हुए और ललाट पर शोभायमान तिलक किया ॥१॥

शिर खूणालो खूंप, मणि माणिक मोती जड्योजी.
हसे हीराने तेज, जाणे हुं नृप शिर चड्योजी. २

अर्थ—फिर सिर पर मणि, माणिक और मोतीसे जड़ी हुई नुकीली कलगी (मौर) धारण की। वह कलगी हीरोंके तेजसे चमक रही थी जिससे ऐसा लगता था कि मानो वह कलगी "मैं राजाके मस्तकके ऊपर सवार हुई हूँ" यह सोचकर हँस रही हो ॥२॥

काने कुंडल दोय, हार हैये सोहे नवलखाजी,
जड्यां कंदोरे रतन, बांहे बाजुबंध बेरखाजी. ३

अर्थ—दोनों कानोंमें दो कुंडल धारण किये। हृदय पर अमूल्य हार शोभित हो रहा था। कमरके कंदोरेमें (करधनीमें) रत्न जड़े हुए थे। भुजाओं पर बाजूबंध और बैराखी धारण किये थे ॥३॥

सोवन वींटी वेढ, दश आंगलीए सोहीएजी,
मुख तंबोळ सुरंग, नरनारी मन मोहीएजी. ४

अर्थ—और दसों अंगुलियों पर सोनेकी अंगूठियाँ और छल्ले (पोरिये) शोभित हो रहे थे। कुँवरका मुँह पान और तांबूलके रंगसे सुंदर रंगवाला हो गया था। ऐसे सुंदर कुँवरको देखकर सभी स्त्री-पुरुषोंके मन मोहित हो रहे थे ॥४॥

कर धरी श्रीफळ पान, वरघोडे जव संचर्याजी,
सांबेलां श्रीकार, सहस गमे तव परवर्याजी. ५

अर्थ—फिर हाथमें श्रीफल और नागरवेलके पान लेकर जब श्रीपाल

वरराजा बनकर वरयात्रामें घोड़े पर बैठकर चलने लगा तब उसके आगे हजारों सुंदर शहबाले (साबेला) चलने लगे ॥५॥

वाजे ढोल निशान, सरणाई भुंगल घणीजी,
रथ बेठी सयबद्ध, गाये मंगल जानणीजी. ६

अर्थ—उस समय वरयात्रामें ढोल, नोबत, शहनाई और अनेक प्रकारकी भुंगले (एक वाद्य) बज रही थी तथा रथमें बैठी हुई सैंकड़ो बरातिन (बराती स्त्रियाँ) मांगलिक गीत गा रही थी ॥६॥

साव सोनेरी साज, हयवर हीसे नाचताजी,
शिर सिंदूर सोहंत, दीसे मयगल माचताजी. ७

अर्थ—संपूर्ण सोनेके शृंगारवाले और नाचते हुए घोड़े हेषारव (हीनहीनानेकी आवाज) कर रहे थे और जिनके मस्तकपर सिंदूर शोभा दे रहा है ऐसे हाथी ठाठसे धीरे धीरे चलते हुए दिखाई दे रहे थे ॥७॥

चहुटे चहुटे लोक, जुवे महोत्सव नवनवेजी,
इम मोटे मंडाण, मोहन आव्या मांडवेजी. ८

अर्थ—हरेक चौटेमें लोग नये-नये महोत्सव देख रहे थे। इस प्रकार बड़े ठाठमाठके साथ मनमोहन श्रीपालकुँवर लग्नमंडपमें पधारे ॥८॥

पोंखी आण्या मांहि, सासुए ऊलट घणेजी,
आणी चोरी मांहि, हर्ष घणो कन्यातणेजी. ९

अर्थ—उस समय सासुने बड़े उत्साहसे परछनसे परछकर वरराजाको घरमें लाया और कन्याको चौरीमें लाई। तब कन्याको अत्यंत हर्ष हुआ ॥९॥

करमेलावो कीध, वेद पाठ बांभण भणेजी,
सोहव गाये गीत, बिहु पखें आप आपणेजी. १०

अर्थ—फिर ब्राह्मण वेदपाठ बोलने लगे और 'वर कन्या सावधान' यों बोलते हुए हस्तमिलाप करवाया। तब दोनों पक्षकी सुहागन स्त्रियाँ अपनी अपनी बड़ाईयाँके गीत गाने लगी ॥१०॥

करी अग्निनी साख, मंगल चारे वरतियांजी,
फेरा फरतां ताम, दान नरिंदे बहु दियांजी. ११

अर्थ—फिर अग्निकी साक्षीसे चारों मंगल प्रवर्तित हुए और वरकन्या भाँवर भरने लगे, उस समय राजाने बहुत कन्यादान दिया ॥११॥

www.jaintatvagyanshala.org

केलवीयो कंसार, सरस सुगंधी महमहेजी,
कवल ठवे मुखमांहि, मांहोमांहि मन गहगहेजी. १२

अर्थ–उस प्रसंग पर केसर, कस्तूरी, इलायची और बादाम आदि सुगंधी पदार्थोंसे महक उठे ऐसा कसार (एक मिष्टान्न) बनाया गया था। उस कसारके कौर वरकन्या परस्पर एक दूसरेके मुँहमें हृदयके आनंदपूर्वक रख रहे थे ॥१२॥

मदनमंजूषा नारी, प्रेमे परणी इणी परेजी,
बिहुं नारीशुं भोग, सुख विलसे ससुराघरेजी. १३

अर्थ–इस प्रकार श्रीपालकुँवरने मदनमंजूषा कुँवरीके साथ शादी की, फिर दोनों पत्नियोंके साथ ससुरके घरमें आनंदपूर्वक संसारसुख भोगने लगे ॥१३॥

ऋषभदेव प्रासाद, उच्छव पूजा नित करेजी,
गीत गान बहु दान, वित्त घणुं तिहां वावरेजी. १४

अर्थ–ऐसे सुखके समयमें भी श्रीपालकुँवर हमेशा भगवान श्री ऋषभदेव प्रभुके मंदिरमें उत्सवपूर्वक पूजा करते थे, गीत-गायन-स्तवनोंसे भक्ति करते थे और अनेक प्रकारसे दान देनेमें धनका उपयोग करते थे ॥१४॥

चैत्र मासे सुखवास, आंबिल ओळी आदरेजी,
सिद्धचक्रनी सार, लाखीणी पूजा करेजी. १५

अर्थ–इतनेमें चैत्र मास आने पर सुखके घररूप ऐसी उत्तम आयंबिलकी ओली शुरू की और प्रगटप्रभावी श्री सिद्धचक्रजीकी अमूल्य सामग्रीसे पूजा की ॥१५॥

वरतावी अमारि, अट्ठाई महोत्सव घणोजी,
सफल करे अवतार, लाहो लिये लखमी तणोजी. १६

अर्थ–ओलीके नौ दिवस तक 'अमारि' (किसी जीवको मारना नहीं सो, अहिंसा) का प्रवर्तन करवाया और बड़ा अट्ठाई महोत्सव किया। इस प्रकार श्रीपालकुँवरने अपने जन्मको सफल किया और प्राप्त लक्ष्मीका सदुपयोग करनेरूप लाभ लिया ॥१६॥

इक दिन जिनहरमांहि, कुंवर राय बेठा मळीजी,
नृत्य करावे सार, जिनवर आगळ मनरळीजी. १७

अर्थ–एक दिन श्रीपालकुँवर और राजा जिनमंदिरमें साथमें बैठे थे और

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

हृदयके आनंदपूर्वक जिनेश्वरदेवके समक्ष श्रेष्ठ नृत्य करा रहे थे ॥१७॥

इणे अवसर कोटवाल, आवी अरज करे इसीजी,
दाणचोरीए चोर, पकड्यो तस आज्ञा किसीजी. १८

अर्थ—इतनेमें कोतवालने आकर राजासे यों विनती की—करचोरी करनेवाले चोरको पकड़ा है तो उसे क्या सजा दी जाय? सो आज्ञा फरमाइये ॥१८॥

वळी भांगी तुम आण, बल बहुलुं इणे आदर्युंजी,
अमे देखाड्या हाथ, तव महोदुं झांखुं कर्युंजी. १९

अर्थ—हे राजन्! उसने आपकी आज्ञाका भी भंग किया है और अपने बलका प्रदर्शन कर रहा है। जब हमने अपने हाथ अजमाये, तब उसका मुँह फीका हो गया ॥१९॥

राजा बोले ताम, दंड चोरनो दीजियेजी,
जिणहरमां ए वात, कहे कुंवर किम कीजियेजी. २०

अर्थ—तब राजाने कहा—इसमें पूछते क्या हो? चोरीकी जो सजा हो दे दो। तब कुँवर राजासे कहने लगा—हे राजन्! जिनमंदिरमें ऐसी बात कैसे की जाय? (अर्थात् मंदिरमें ऐसी बात करनी ही नहीं चाहिये।) ॥२०॥

नजरे करी हजूर, पहेलां कीजे पारखुंजी,
पछे देईजे दंड, सहुने न होये सारिखुंजी. २१

अर्थ—विशेषमें हे राजन्! जो चोर हो उसे पहले अपने सामने लाना चाहिये, उसकी परीक्षा करनी चाहिये, तत्पश्चात् उसे योग्य दंड देना चाहिये, क्योंकि एक ही गुन्हेंकी सभीको एक जैसी सजा नहीं हो सकती ॥२१॥

आण्यो जिसे हजूर, धवलशेठ तव जाणियोजी,
कहे कुंवर महाराज, चोर भलो तुमे आणियोजी. २२

अर्थ—फिर जब कोतवालने चोरको हाजिर किया तब 'यह तो धवलसेठ है' यों पहचानकर कुँवर कहने लगे—हे महाराज! आपने चोर तो बहुत अच्छा पकड़ लाया है ॥२२॥

ए मुज पिता समान, हुं ए साथे आवियोजी,
कोटिध्वज सिरदार, वहाण इहां घणां लावियोजी. २३

अर्थ—अरे राजन्! यह तो मेरे पिता समान है। मैं भी इनके साथ ही यहाँ आया हूँ। और यह ऐसा-वैसा सामान्य आदमी नहीं है, परंतु

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

क्रोडाधिपतियोंमें अग्रेसर है और बहुत सारे जहाज लेकर यहाँ व्यापारके लिये आया हुआ है ॥२३॥

छोडावी तस बंध, तेडी पासे बेसाडियोजी,
गुनह करावी माफ, रायने पाय लगाडियोजी. २४

अर्थ–इस प्रकार राजाको समझाकर, श्रीपालने धवलसेठके बंधन छुड़वाये और उसे अपने पास बिठाया। फिर राजाके पास उसका गुन्हा माफ करवा कर राजाके चरणोंमें नमस्कार करवाया ॥२४॥

राय कहे अपराध, एहनो परमेसरे सह्योजी,
अजरामर थयो एह, जेह तुमे बांहे ग्रह्योजी. २५

अर्थ–तब राजा कहने लगा–इसका अपराध तो परमेश्वरने माफ कर लिया है। और आपने इसके हाथ पकड़े हैं इसलिये यह तो अजरामर हो गया ऐसा समझना चाहिये ॥२५॥

एक दिन आवी शेठ, कुंवरने इम वीनवेजी,
वेची वहाणनी वस्तु, पूर्या करियाणे नवेजी. २६

अर्थ–फिर एक दिन सेठ आकर कुँवरसे यों विनती करने लगा–आपके जहाजकी सभी वस्तुएँ बेच दी है और उसमें नया किराना भर दिया है ॥२६॥

तुमे अमने इण ठाम, कुशल खेमे जिम आणियाजी,
तिम पहोंचाडो देश, तो सुख पामे प्राणियाजी. २७

अर्थ–अब हे कुँवर ! तुमने जैसे हमें यहाँ कुशलक्षेम पहुँचाया, वैसे ही हमें अपने देशमें पहुँचा दो, कि जिससे सब लोक सुखी हो जाय ॥२७॥

कुंवरे जणाव्यो भाव, निज देशे जावा तणोजी,
तव नृपने चित्तमांहि, असंतोष उपनो घणोजी. २८

अर्थ–यह सुनकर कुँवरने राजासे अपने देशकी ओर जानेकी अपनी इच्छा प्रकट की तब राजाके मनमें अत्यंत असंतोष पैदा हुआ ॥२८॥

माग्यां भूषण जेह, ते उपर ममता किसीजी,
परदेशीशुं प्रीत, दुःखदायी होये इसीजी. २९

अर्थ–(राजा सोचने लगा कि–) किसीके पाससे गहने माँगकर लाये हो उस पर ममता क्यों करनी ? उसी तरह परदेशी मनुष्य परकी प्रीति तो दुःख देनेवाली ही होती है ॥१९॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

सासु ससरो दोय, कर जोडी आदर घणेजी,
आंसु पडते धार, कुंवरने इणिपरे भणेजी. ३०

अर्थ—फिर सासु और ससुर दोनों अपने नेत्रोंमेंसे अश्रुधारा बहाते हुए हाथ जोड़कर बहुत आदरपूर्वक कुँवरसे इस प्रकार कहने लगे— ॥३०॥

मदनमंजूषा एह, अम उत्संगे ऊछरीजी,
जन्म थकी सुख मांहि, आज लगे लीला करीजी. ३१

अर्थ—यह मदनमंजूषा नामकी हमारी बेटी हमारी गोदमें बड़ी हुई है, उसने जन्मसे लेकर आज तक हमेशा सुखपूर्वक आनंद ही आनंद किया है ॥३१॥

वहाली जीवितप्राय, तुम हाथे थापण ठवीजी,
एहने म देशो छेह, जो पण परणो नव नवीजी. ३२

अर्थ—यह पुत्री हमें प्राणसे भी अधिक प्रिय है उसे हम आज आपके हाथमें धरोहरके रूपमें सौंप रहे हैं। यद्यपि आप नई नई स्त्रियोंसे शादी करेंगे, फिर भी हमारी इस बेटीको धोखा मत देना ॥३२॥

पुत्रीने कहे वत्स, क्षमा घणी मन आणजोजी,
सदा लगे भरतार, देव करीने जाणजोजी. ३३

अर्थ—फिर माता-पिता अपनी पुत्रीको शिक्षा देते हुए कहने लगे—हे पुत्री! तू मनमें बहुत ही क्षमा (सहनशीलता) रखना। और हमेशा अपने पतिको देवकी तरह मानना ॥३३॥

सासु ससरा जेठ, लज्जा विनय म चूकजोजी,
परिहरजो परमाद, कुल मरजादा म मूकजोजी. ३४

अर्थ—हे पुत्री! सास, ससुर, जेठ आदिकी लज्जा और विनय मत चूकना। प्रमादका त्याग करना और अपने कुलकी मर्यादा कभी मत छोड़ना ॥३४॥

कंत पहेली जाग, जागतां नवि ऊंघीएजी,
शोक्य बहेन करी जाण, वचन न तास उल्लंघीएजी. ३५

अर्थ—फिर हे पुत्री! तू पतिसे पहले जगना, और पति जागते हो तब तक सोना मत। अपनी सौतको बहिनकी तरह मानना और उसके वचनका कभी उल्लंघन मत करना ॥३५॥

www.jaintatvagyanshala.org

कंत सयल परिवार, जम्या पछी भोजन करेजी,
दास दासी जण ढोर, खबर सहुनी चित्त धरेजी. ३६

अर्थ–हे पुत्री! अपने पति और कुटुंबके सभी व्यक्तियोंके भोजन करनेके बाद तू भोजन करना। दास, दासी आदि मनुष्य तथा पशुओंका ध्यान रखनेका हमेशा चित्तमें ख्याल रखना ॥३६॥

जिनपूजा गुरुभक्ति, पतिव्रता व्रत पाळजोजी,
शी कहिये तुम शीख, इम अम कुळ अजुवाळजोजी. ३७

अर्थ–हे बेटी! तू जिनेश्वरदेवकी पूजा और गुरुकी भक्ति करना, सदा पतिव्रत धर्मका पालन करना। इससे ज्यादा तुझे क्या शिक्षा दी जाय? संक्षेपमें इतना ही कहते हैं कि तू अच्छे आचरणसे हमारे कुलकी शोभा बढ़ाना ॥३७॥

रयण ऋद्धि परिवार, देई नृपे वाहण भर्यांजी,
मदणमंजूषा धूअ, वोळावा सहु नीसर्यांजी. ३८

अर्थ–इस प्रकार पुत्रीको शिक्षा देकर, फिर राजाने रत्न आदि ऋद्धि और नौकर-चाकर आदि परिवार से जहाज भर दिये। फिर राजा रानी आदि सब लोग मदनमंजूषा पुत्रीको अलविदा करने निकल पड़े ॥३८॥

कांठे सयल कुंटुब, हैडां भर भेटी मळ्यांजी,
तस मुख वारोवार, जोतां ने रोतां पाछां वळ्यांजी. ३९

अर्थ–समुद्रकिनारे बंदरगाह पर सब लोगोंने भरे हृदयसे पुत्रीको सीनेसे लगाया और उसका मुँह बार बार देखते हुए और रोते रोते वापिस नगरमें आये ॥३९॥

कुंवर वहाण मांहि, बेठां साथे दोय वहुजी,
काम अने रति प्रीति, मळियां इम जाणे सहुजी. ४०

अर्थ–श्रीपालकुँवर अपनी दो पत्नियोंके साथ जहाजमें बैठे हुए थे वो ऐसे लगते थे मानो कामदेव और उसकी स्त्रियाँ रति और प्रीति ये तीनों एकसाथ बैठे हों ॥४०॥

बीजे खंडे एह, ढाळ थुणी इम आठमीजी,
विनय कहे सिद्धचक्र, भक्ति करो सुरतरु समीजी. ४१

अर्थ–इस प्रकार दूसरे खंडकी आठवीं ढालका वर्णन किया।

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

महोपाध्याय श्री विनयविजयजी कहते हैं कि हे भव्य जीवों! तुम कल्पवृक्ष समान मनोवांछितको पूरनेवाले पूर्ण करनेवाले श्री सिद्धचक्रजीकी अत्यंत भक्ति करो ॥४१॥

द्वितीय खंडकी आठवीं ढाल समाप्त

(चौपाई छंद)

खंड खंड मधुरो जिम खंड, श्री श्रीपाल चरित्र अखंड,
कीर्तिविजय वाचकथी लह्यो, बीजो खंड इम विनये कह्यो. १

अर्थ—जैसे गन्नेके पहले टुकड़ेसे दूसरेमें ज्यादा मिठास होती है, उससे तीसरेमें और अधिक मीठास होती है, वैसे ही इस श्रीपाल राजाके रासमें पहले खंडसे दूसरेमें, दूसरेसे तीसरमें, और तीसरेसे चौथेमें ज्यादा मिठास है। ऐसा अखंड श्रीपालचरित्रवाला यह दूसरा खण्ड अपने गुरु महोपाध्याय श्री कीर्तिविजयजी महाराजसे प्राप्तकर महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराजने रासके रूपमें काव्यबद्ध किया ॥१॥

श्रीमान् महोपाध्याय श्री कीर्तिविजयगणिके शिष्य उपाध्याय श्री विनयविजयजी गणि रचित श्री श्रीपालराजाके रासमें श्रीपाल राजाका विदेशगमन, दो कन्याओंका पाणिग्रहण इत्यादि वर्णनवाला और श्री सिद्धचक्रजीकी महिमा आदिके वर्णनवाला यह द्वितीय खण्ड पूर्ण हुआ।

द्वितीय खण्ड समाप्त

www.jaintatvagyanshala.org

तृतीय खंड

मंगलाचरण

दोहा छंद

सिद्धचक्रना गुण घणा, कहेतां नावे पार,
वांछित पूरे दुःख हरे, वंदुं वारोवार. १

अर्थ—श्री सिद्धचक्रजी भगवानके अनेकानेक गुण होनेसे उनका वर्णन करने पर भी अंत नहीं आता, अर्थात् श्री सिद्धचक्रजीकी आराधनासे प्राणियोंके सर्व मनोवांछित पूर्ण होते हैं और सर्व दुःखोंका नाश होता है ऐसे सकल सिद्धिदायक श्री सिद्धचक्रजीको मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ ।।१।।

सभा कहे श्रीपालने, समुद्र उतारो पार,
अमने उत्कंठा घणी, सुणवा म करो वार. २

अर्थ—अब श्रेणिकराजा आदि सभासद प्रभु श्री गौतमस्वामीसे कहते हैं कि हे प्रभो ! श्रीपालकी कथा आगे कैसी है ? सो जाननेकी हमें बहुत उत्कंठा है इसलिये आप जल्दीसे आगे कथा कहिये और श्रीपालराजाको समुद्रसे पार उतारिये ।।२।।

कहे कवियण आगळ कथा, मीठी अमिय समान,
निद्रा विकथा परिहरी, सुणजो देई कान. ३

अर्थ—तब कवि महोदय कहते हैं—हे श्रोताजन ! यह कथा अब आगे अमृत समान मधुर है अतः निद्रा और निंदा (निद्रा=नींद; निंदा=विकथा, बेकारकी बातें करना) आदि प्रमादोंको छोड़कर ध्यान देकर सुनें ।।३।।

धवलशेठ झूरे घणुं, देखी कुंवरनी ऋद्ध,
एकलडो आव्यो हतो, है है दैव शुं कीध ! ४

अर्थ—(अब कथा आगे चलती है।) श्रीपालकुँवरकी ऋद्धि-सिद्धि देखकर धवलसेठ अत्यंत झूरने (कलपने) लगा—अरेरे ! यह कुँवर तो अकेला ही खाली हाथ आया था, पर हा ! हा ! हे दैव ! तूने यह सब क्या कर दिया ? ।।४।।

वहाण अढीसें माहरां, लीधां शिरमां देई,
जोउं घर किम जायशे, ऋद्धि एवडी लेई. ५

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—अरे ! इसने मेरे सिरमें मारकर (जबरदस्तीसे) मेरे ढ़ाइसौ जहाज हड़प लिये है; ख़ैर, अब मैं देखता हूँ कि वह इतनी सारी ऋद्धि लेकर अपने घर कैसे जाता है ! ॥५॥

एक जीव छे एहने, नाखुं जलधि मझार,
पछी सयल ए माहरुं, रमणी ऋद्धि परिवार. ६

अर्थ—(आगे धवलसेठ सोचता है कि—) यह कुँवर अकेला जीव है; अतः मैं इसे ही समुद्रमें डाल दूँगा। फिर यह स्त्री, यह वैभव, यह परिवार सब मेरा ही है ॥६॥

देखी न शके पारकी, ऋद्धि हिये जस खार,
सायर थाये दूबळो, गाजंते जलधार. ७

अर्थ—(कवि कहता है कि—) जिसके हृदयमें ईर्ष्या होती है वह मनुष्य परायी ऋद्धि नहीं देख सकता। जैसे मेघकी गर्जना सुननेसे समुद्र दुर्बल (क्षीण) होता है अर्थात् सूखने लगता है वैसे दूसरोंकी ईर्ष्या करनेसे मनुष्य दुर्बल होता है ॥७॥

विस्तारार्थ—कनिष्ठ पुरुषके लक्षणके बारेमें कहा है—

परवादे दशवदनः परदोषनिरीक्षणे सहस्राक्षः ।
परवृत्तवित्तहरणे, बाहुसहस्रार्जुनो नीचः ॥

अर्थात् नीच मनुष्य परनिंदा करनेमें दस मुखवाला, परके दोष देखनेमें हजार नेत्र वाला और सज्जनका धन हरण करनेमें हजार हाथवाला होता है।

वरसाले वनराई जे, सवि नवपल्लव थाय,
जाय जवासानुं किस्युं, जे ऊभो सुकाय. ८

अर्थ—वर्षाऋतुमें सारी वनस्पतियाँ नवपल्लवित (एकदम हरी) हो जाती है, किन्तु उस *जवासके वृक्ष (एक प्रकारकी वनस्पति) का क्या जाता है कि वह खड़ा खड़ा ही सूख जाता है ? ॥८॥

विस्तारार्थ—सचमुच ईर्ष्यालु मनुष्य भी जवासके वृक्षकी तरह किसीका भी भला देखकर खुश नहीं होते। इतना ही नहीं, किन्तु ईर्ष्याकी आगमें बिचारे जलकर राख हो जाते हैं। अतः किसीकी उन्नति देखकर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये।

---

* जवास=एक प्रकारका काँटेदार पौधा जो औषधियोंके काममें आता है। इसकी विशेषता यह है कि यह वर्षाऋतुमें सूख जाता है।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

जे किरतारे वडा किया, तेशुं केही रीस,
दांत पड्या गिरि पाडतां, कुंजर पाडे चीस. ९

अर्थ–जिसे भाग्यने बड़ा बनाया हो उसकी ईर्ष्या करनेसे क्या फायदा? देखो! पर्वतको बड़ा देखकर उसकी ईर्ष्या करनेसे पर्वतको गिरानेमें हाथीके सारे दाँत टूट गये, परंतु पर्वत छोटा हुआ नहीं और वह चिल्लाता ही रहा ॥९॥

इस दृष्टांतके अनुसार धवलसेठ भी श्रीपालकुँवरको दुःखी करनेके लिये यथाशक्य प्रयत्न करता है परंतु उसे दुःखी करने जाते अपना ही क्या हाल होता है? वह बात आगे कहते हैं।

विस्तारार्थ–प्रत्येक जीवको अपने पुण्यके अनुसार वैभव प्राप्त होता है इसलिये किसी भी प्राणीकी ऋद्धि या उन्नति देखकर ईर्ष्या या द्वेष न करना चाहिये। द्वेष करनेसे सामनेवालेका कुछ नहीं बिगड़ता, परंतु स्वयंको अशुभ कर्मका बंध होता हैं। कहावत है–हाथना कर्यां हैये वागे? वैसे ही भवान्तरमें उस कर्मके उदयसे उससे भी ज्यादा दरिद्रता या नीचता प्राप्त होती है यों समझकर सुज्ञ प्राणियोंको ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये।

ढाल पहली

(राग-मल्हार, शीतल तरुवर छाया के–ए देशी)

देखी कामिनी दोय, के कामे व्यापियो रे, के कामे व्यापियो रे,
वळी घणो धन लोभ, के वाध्यो पापियो रे, के वाध्यो पापियो रे,
लाग्या दोय पिशाच, के पीडे अति घणुं रे, के पीडे अति घणुं रे,
धवळशेठनुं चित्त, के वश नहीं आपणुं रे, के वश नहीं आपणुं रे. १

अर्थ–अब धवलसेठ श्रीपालकुँवरकी दोनों स्त्रियोंको देखकर कामसे व्याप्त हो गया और उस पापिष्ठको धनका लोभ भी बढ़ने लगा अर्थात् श्रीपालकी स्त्रियाँ और धन प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा पैदा हुई। ये दोनों राक्षस उसे बहुत हैरान करने लगे जिससे धवलसेठका चित्त उसके खुदके वशमें नहीं रहा अर्थात् वह परवश हो गया ॥१॥

उदक न भावे अन्न, के नावे निद्रडी रे, के नावे०
उल्लस वालस थाय, के जक नहीं एक घडी रे, के जक०
मुख मूके निसास, के दिन दिन दूबळो रे, के दिन०
रात दिवस नवि जाय, के मन बहु आमळो रे, के मन० २

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—कामपीड़ासे आर्त्त होनेसे धवलसेठको अन्न-पानी भाते नहीं थे, निद्रा आती नहीं थी, आकुलता-व्याकुलता होती थी, एक घड़ी भी चैन नहीं था, बार बार मुँहसे निश्वास निकलते थे, दिन पर दिन दुर्बल होता जा रहा था तथा मनमें बहुत बेचैनी होनेसे बड़ी मुशकिलसे रात-दिन भी नहीं बीतते थे ।।२।।

विस्तारार्थ—सचमुच यह बात बड़ी गहराईसे सोचने जैसी है कि धवल सेठके पास इतनी सारी ऋद्धि होने पर भी वह पलभर भी सुखका अनुभव नहीं कर सकता, उसे निरंतर उद्वेग रहा करता है। इसका कारण एक ही है—"प्राप्तिकी तृप्ति नहीं है और अप्राप्तिका संतोष नहीं है।" ऐसे असंतोषी मनुष्यको सुखी करनेकी ताकत किसीमें नहीं है। अर्थात् इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि संसारके धन, वैभव, स्त्री, परिवार कोई हमें सुखी नहीं कर सकते। ये सब होते हुए भी कई लोग दुःखी हैं, अतः इनकी तृष्णा (चाहना) न करनी चाहिये। तृष्णा ही महादुःख है।

महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजने अन्यत्र कहा है कि 'परस्पृहा महादुःखम्'—परवस्तुकी इच्छा ही महान दुःख है।

चार मळ्या तस मित्र के, पूछे प्रेमशुं रे, के पूछे॰
कोण थयो तुम रोग, के झूरो एम शुं रे; के झूरो॰
के चिंता उत्पन्न, के कोईक आकरी रे, के कोईक॰
भाई थाओ धीर, के मन काठुं करी रे, के मन॰ ३

अर्थ—उस समय उसके चार मित्र इकट्ठे होकर उसके पास आकर प्रेम-पूर्वक पूछने लगे—हे सेठ! तुम्हें हुआ है क्या? क्या कोई रोग हुआ है? यों क्यों झूर रहे हो? अथवा तो कोई असह्य चिंता सता रही है? हे भाई! जरा मनको मजबूत करके और धैर्य धारण करके जो हो सो कहो ।।३।।

दुःख कहो अम तास, उपाय विचारिये रे, उपाय॰
चिंता सायर एह, के पार उतारिये रे, के पार॰
लज्जा मूकी शेठ, कहे मन चिंतव्युं रे, कहे मन॰
तव चारे कहे मित्र, के धिक ए शुं लव्युं रे के धिक॰ ४

अर्थ—हे सेठ! तुम हमें अपना दुःख कहोगे तो हम उसका उपाय सोच निकालेंगे और तुम्हें इस चिंताके समुद्रमेंसे पार उतार देंगे। तब सेठने लज्जाका त्यागकर जो मनमें सोचा था वह बता दिया। यह सुनकर उसके चारों मित्र कहने लगे—अरे सेठ! धिक्कार है तुम्हें! यह तुम क्या बोले? ।।४।।

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

परनारीने पाप, भवोभव बूडीए रे, भवोभव॰
किम सुरतरुनी डाळ, कुहाडे झूडीए रे; कुहाडे॰
पर उपकारी एह, जिस्यो जग केवडो रे, जिस्यो॰
दीठो प्रत्यक्ष जास, के महिमा एवडो रे, के महिमा॰ ५

अर्थ—परस्त्रीगमन जैसा और कोई पाप नहीं है। इससे तो भवभवमें डूब मरना है। और यह श्रीपालकुँवर तो दुनियामें केवड़ेके पेड़की तरह परोपकारी है (अर्थात् जैसे केवड़ेका पेड़ सबको सुगंधित करता है वैसे ही यह कुँवर सबका भला करता है) और इसका इतना प्रभाव तो तुमने प्रत्यक्ष देखा है तो उसे कैसे मारा जाय? कल्पवृक्षकी शाखा कुल्हाड़ीसे कैसे छेदी जाय?॥५॥

छोडाव्या दोय वार, इणे तुमे जीवता रे इणे॰
उगरियां धन माल, जो पासे ए हता रे, जो पासे॰
तार्यां थंभ्यां वहाण, इणे आगळ रही रे, इणे॰
एहवो पुरुष रतन्न, के जग बीजो नहीं रे. के जग॰ ६

अर्थ—इस कुँवरने ही तुम्हें एक बार बब्बरराजाके हाथसे और दूसरी बार कनककेतु राजाके हाथसे—यों दो-दो बार छुड़ाया है। और यह साथमें था तो तुम्हारा माल-सामान और धन सब कुछ बच गया था। फिर इसने ही तुम्हारे रुके हुए जहाज आगे आकर चला दिये थे। अतः इसके जैसा पुरुषरत्न तो दुनियामें और कहीं मिलेगा नहीं॥६॥

करी एहशुं द्रोह, जो विरूओ ताकशो रे, जो विरूओ॰
तो अणखूटे किहां इक, अंते थाकशो रे; के अंते॰
भाग्ये लाधी ऋद्धि, इणे जो एवडी रे, इणे जो॰
पडी कांई दुर्बुद्धि, गळे तुम जेवडी रे, गळे तुम॰ ७

अर्थ—यदि तुम इससे द्रोहकर इसका बुरा सोचोगे तो आयुष्य पूर्ण होनेसे पहले ही बीचमें बेमोत मारे जाओगे! इसे इतनी सारी ऋद्धि इसके भाग्यसे संप्राप्त हुई है, इसमें तुम्हें ऐसी दुर्बुद्धि क्यों सूझ रही है?॥७॥

त्रण मित्र हित शीख, ते एम देई गया रे, ते एम॰
चोथो कहे सुण शेठ, के ए वैरी थया रे; के ए वैरी॰
गणीए पाप न पुण्य, के लखमी जोडिये रे, के लखमी॰
लखमी होये जो गांठ, तो पाप विछोडिये रे, तो पाप॰ ८

अर्थ—इस प्रकार तीन मित्र तो हित-शिक्षा देकर चले गये, किन्तु चौथा

www.jaintatvagyanshala.org

मित्र सेठको प्रिय होनेके लिये कहने लगा–हे सेठ ! सुनो। ये सब तो तुम्हारे दुश्मन है। अरे ! पैसा इकट्ठा करना इसमें पाप और पुण्य ये कुछ गिनना नहीं चाहिये, क्योंकि लक्ष्मी पास होगी तो दान आदिसे पाप भी नष्ट कर दिया जायगा ॥८॥

उपराजी इणे ऋद्धि, ते काजे ताहरे रे, ते काजे०
धणी थाये भाग्यवंत, कमाई कोई मरे रे; कमाई०
करशुं इस्यो उपाय, के ए दोलत घणी रे, के ए दोलत०
एहनी सुंदरी दोय, के थाशे तुम तणी रे, के थाशे० ९

अर्थ–अरे सेठ ! इस कुँवरने जो ऋद्धि प्राप्त की है वह तुम्हारे लिये ही एकत्र की है। क्योंकि संसारमें देखते है कि एक मनुष्य कमा-कमाकर मर जाता है और उस धनका मालिक कोई दूसरा भाग्यशाली ही होता है (अर्थात् कमाता है कोई और भोगता है कोई), इसलिये हम ऐसा उपाय करेंगे कि जिससे यह सारी लक्ष्मी और उसकी स्त्रियाँ सब कुछ तुम्हारा ही हो जायगा ॥९॥

जिम पामे विश्वास, मळो तिम एहशुं रे, मळो तिम०
मुखे मीठी करो वात, के जाणे नेहशुं रे; के जाणे०
मीठी लागी वात, ते शेठने मन वसी रे, ते शेठने०
आव्यो फीटणकाल, मति तेहनी खसी रे, मति० १०

अर्थ–इसलिये अब उस श्रीपालकुँवरके मनमें तुम्हारे प्रति विश्वास पैदा हो उस प्रकारसे उसके साथ हिल-मिलकर रहो और मुँहसे मीठी-मीठी बातें करो कि जिससे उसे ऐसा लगे कि 'सेठ मुझ पर प्रेम रखते हैं।' इस प्रकार चौथे मित्रकी चिकनी-चुपड़ी बाते सेठको मीठी लगी और मनमें जम गयी। क्योंकि अब सेठका विनाशकाल निकट था इसलिये उसकी बुद्धि खिसक गई थी, भ्रष्ट हो गयी थी। (कहावत भी है कि विनाशकाले विपरीत बुद्धि)।१०।

दूध ज देखे डांग, न देखे मांकडो रे, न देखे०
मस्तक लागे चोट, थाये तव रांकडो रे, थाये तव०
रोगी करे कुपथ्य, ते लागे मीठडुं रे, ते लागे०
वेदन व्यापे जाम, ते थाये अनीठडुं रे, ते थाये० ११

अर्थ–जैसे बंदर पासमें पड़े हुए दूधको ही देखता है, परंतु उसके पीछे छिपी हुई लाठीको नहीं देखता, किन्तु जब सिर पर लाठीकी चोट लगती है

तब वह रंक बन जाता है। वैसे ही रोगी मनुष्यको भी कुपथ्यसेवन मीठा लगता है किन्तु जब रोग बढ़ता है तब अनिष्टकारी लगता है ॥११॥

विस्तारार्थ–यहाँ जैसे रोगीको कुपथ्य प्रारंभमें अच्छा लगता है, परंतु जब उससे पीड़ा बढ़ती है तब वह अनिष्टकारी लगता है, वैसे ही धवलसेठको श्रीपाल कुँवरके साथ ठगाई करनेकी चौथे मित्रकी सलाह अच्छी लगती है, परंतु अंतमें वह अहितकारी होनेवाली है।

बेसे कुंवर पास, के विनय घणो करे रे, के विनय०
तुं प्रभु जीव आधार, मुखे इम उच्चरे रे, मुखे०
पूरव पुण्य पसाय, के तुम सेवा मळी रे, के तुम०
पग पग तुम्ह पसाय, के अम्ह आशा फळी रे, के अम्ह० १२

अर्थ–फिर धवलसेठ कुँवरके पास बैठकर उसकी अत्यंत विनय करने लगा और मुँहसे मीठा-मीठा बोलने लगा–हे स्वामी ! आप ही हमारे जीवनके आधार है। हमारा प्रबल पुण्य है कि हमें आपकी सेवा संप्राप्त हुई है और आपकी सेवासे पग-पग पर हमारी सभी आशाएँ फलीभूत हुई है ॥१२॥

विस्तारार्थ–यहाँ धवलसेठके हृदयमें कपट है और वह मुँहसे चिकनी-चुपड़ी बातें कर रहा है। दुर्जनोंका ऐसा ही स्वभाव होता है। उसके लिये संस्कृतमें एक उक्ति है–मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम् ॥१॥ अर्थात् दुष्ट मनुष्य मुँहसे मधु (शहद) जैसे बानी बोलता है परन्तु उसके हृदयमें हलाहल जहर होता है।

जोतां तुम मुखचंद, के सवि सुख लेखिये रे, के सवि०
रखे तुमारी वात, के विरूई देखिये रे, के विरूई०
कुंवर सघळी वात, ते साची सद्दहे रे, ते साची०
दुर्जननी गति भाति, ते सज्जन नवि लहे रे, ते सज्जन० १३

अर्थ–आपका मुखरूपी चंद्र देखनेसे हमें सर्व सुख मिल गये हैं ऐसा मानते हैं। अतः हम आपके विपरीत बात स्वप्नमें भी सुनना नहीं चाहते। इस प्रकारकी धवलसेठकी सारी बातें कुँवर सच्ची मानते थे, क्योंकि दुर्जनकी गतिकी रीतिको सज्जन जान नहीं सकता ॥१३॥

जे वाहणनी कोरे, के मांचा बांधिया रे, के मांचा०
दोरतणे अवलंबे, ते उपर सांधिया रे; ते उपर०
तिहां बेसीने शेठ, ते कुंअरने कहे रे, ते कुंअर०
देखी अचरिज एह, के मुज मन गहगहे रे, के मुज० १४

अर्थ–फिर धवलसेठने जहाजके किनारे पर एक मचान (मंच) बँधवाया और रस्सेसे उसे जहाजके साथ जोड़ दिया। फिर उस मचान पर बैठकर सेठ कुँवरसे कहने लगा–हे साहिब! एक अलौकिक आश्चर्य देखकर आपको दिखानेके लिये मेरा मन उत्साहित हुआ है ॥१४॥

मगर एक मुख आठ, के दीसे जुजुआ रे, के दीसे०
एहवां रूप स्वरूप, न होशे न हुआं रे, न होशे०
जोवा इच्छो साहेब, तो आवो वही रे, के तो आवो०
पछी काढशो वांक, जे कांई कह्युं नहीं रे, जे कांई० १५

अर्थ–वह आश्चर्य ऐसा है कि मगर एक है परंतु उसके आठ मुँह है। उसमें भी वह प्रत्येक मुँह अलग अलग प्रकारका है। ऐसे रूप और स्वरूपवाला मगर कभी हुआ नहीं और होगा नहीं। तो हे साहिब! यदि आप देखना चाहते हो तो यहाँ शीघ्र आइये, नहीं तो फिर मुझे दोष देंगे कि हमें कहा नहीं? ॥१५॥

कुंवर मांचे ताम, चड्यो उतावळो रे, के चड्यो०
ऊतरीओ तव शेठ, धरी मन आमळो रे; धरी मन०
बिहुं मित्रे बिहुं पासे, दोर ते कापिया रे, के दोर०
करतां एहवां कर्म, न बीहे पापिया रे, न बीहे० १६

अर्थ–यह सुनकर श्रीपालकुँवर कौतुक देखनेके लिये मचान पर चढ़ गये। उसी समय सेठ मनमें कपटभाव रखते हुए मचान परसे नीचे उतर गये और सेठ तथा उसके मित्रने मिलकर मचानकी दोनों ओरसे रस्से काट दिये। सचमुच! पापी लोग ऐसे (काले) काम करते हुए डरते नहीं है ॥१६॥

पडतां सायर मांही, के नवपद मन धरे रे, के नवपद०
सिद्धचक्र परतक्ष, के सवि संकट हरे रे; के सवि०
मगरमत्स्यनी पूंठ, के बेठो स्थिर थई रे, के बेठो०
वाहण तणी परे तेह, के पहोतो तट जई रे, के पहोतो० १७

अर्थ–समुद्रमें गिरते गिरते श्रीपालकुँवर मनमें नवपदजीका ध्यान करने लगा। उसी वक्त प्रकट प्रभावी श्री सिद्धचक्रजीके अधिष्ठायक देवने प्रत्यक्ष होकर सारे संकटोंका नाश कर दिया। जैसे ही श्रीपालकुँवर समुद्रमें गिरे, कि तुरत नीचेसे एक मगरमच्छ प्रकट हुआ और वे उसकी पीठ पर स्थिर होकर बैठ गये और मानो जहाज पर बैठे हो वैसे समुद्र किनारे जा पहुँचे ॥१७॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

औषधिना महिमाये, के जलभय निस्तरे रे, के जल०
सिद्धचक्र परभावे, के सुर सानिध करे रे; के सुर०
त्रीजे खंडे ढाळ, ए पहेली मन धरो रे, ए पहेली०
विनय कहे भवि लोक, के भवसायर तरो रे, के भव० १८

अर्थ–यों हाथ पर बाँधी हुई "जलतरणी" औषधिकी महिमासे और श्री सिद्धचक्रजीके प्रभावसे देवताओंकी सान्निध्यता होनेसे जलका भय नष्ट हो गया। महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं–हे भव्यों! तीसरे खंडकी यह पहली ढाल चित्तमें धारण करें और श्रीपालकुँवरकी तरह भवसमुद्रको तिर जायें ॥१८॥

तृतीय खंडकी पहली ढाल समाप्त

दोहा छंद

कोंकण कांठे ऊतर्यो, पहोतो इक वनमांहि;
थाक्यो निद्रा अनुसरे, चंपक तरुवर छांहि. १

अर्थ–मगरमच्छकी पीठ पर बैठा हुआ श्रीपालकुँवर समुद्र पारकर कोंकण देशके किनारे पर उतरा और एक वनमें गया। थका हुआ होनेसे वह चंपकवृक्षकी छायामें सो गया ॥१॥

सदा लगे जे जागतो, धर्म मित्र समरथ्थ;
कुंवरनी रक्षा करे, दूर करे अनरथ्थ. २

अर्थ–सदा जागृत और महा समर्थ ऐसा धर्मरूपी मित्र हरपल कुँवरकी रक्षा करता है और उसके संकटोंको दूर करता है ॥२॥

दावानल जलधर हुवे, सर्प हुवे फूलमाळ,
पुण्यवंत प्राणी लहे, पग पग ऋद्धि रसाळ. ३

अर्थ–(यहाँ कवि कहता है कि–) जो प्राणी पुण्यवान हो उसे दावानल समुद्र जैसा शीतल हो जाता है, सर्प हो तो फूलकी माला बन जाती है। कहनेका तात्पर्य यह है कि पुण्यवान प्राणी पग पग पर मनोहर ऋद्धि संप्राप्त करता है ॥३॥

करे कष्टमां पाडवा, दुर्जन कोडि उपाय,
पुण्यवंतने ते सवे, सुखनां कारण थाय. ४

अर्थ–ऐसे पुण्यवान प्राणीको कोई दुष्ट मनुष्य दुःखमें डालनेके लिये जो करोड़ों उपाय करता है वे सब उसे तो सुखके कारणरूप हो जाते हैं ॥४॥

www.jaintatvagyanshala.org

थल प्रगटे जलधि विचे, नयर रानमां थाय,
विष अमृत थई परिणमे, पूरव पुण्य पसाय. ५

अर्थ–पूर्व पुण्यके प्रसादसे (प्रभावसे) समुद्रमें भी पृथ्वी प्रगट हो जाती है, जंगल नगररूप हो जाता है और जहरका अमृत हो जाता है ॥५॥

ढाल दूसरी

(जिन ताहरी, वाणी अमिय रसाल, सुणतां मुज आशा फली जीरेजी–ए देशी)

जीरे महारे, जाग्यो कुंवर जाम, तव देखे दोलत मळी, जीरे जी,
जीरे महारे, सुभट भला सें बद्ध, करे विनती मन रळी, जीरे जी. १

अर्थ–इधर जब श्रीपालकुँवर निद्रामेंसे जागृत हुआ तब उसे सामने दौलत दिखायी दी। साथमें सैंकडो सुभट मिलकर हर्षित मनसे विनती करने लगे– ॥१॥

जीरे महारे, स्वामी अरज अम एक, अवधारो आदर करी, जीरे जी,
जीरे महारे, नयरी ठाणा नाम, वसे जिसी अलकापुरी, जीरे जी. २

अर्थ–हे स्वामी! हमारी एक विनती है उसे आप प्रेमपूर्वक स्वीकार किजीये। वह विनती यह है कि यहाँ अलकापुरी (कुबेरकी नगरी) जैसी एक ठाणा नामकी नगरी है ॥२॥

जीरे० तिहां राजा वसुपाल, राज्य करे नरराजियो, जीरे जी,
जीरे० कोंकण देश नरिंद, जस महिमा जग गाजियो, जीरे जी. ३

अर्थ–उस नगरीमें वसुपाल नामक राजा राज्य करता है। कोंकण देशके उस राजाकी कीर्ति सारी दुनियामें फैली हुई है ॥३॥

जीरे० एक दिन सभा मझार, निमित्तियो एक आवियो, जीरे जी,
जीरे० प्रश्न पूछवा हेत, रायतणे मन भावियो, जीरे जी. ४

अर्थ–अब एक दिन निमित्तशास्त्रका जानकार एक ज्योतिषी राज्यसभामें आया। उसे भविष्य संबंधी प्रश्न पूछनेकी राजाकी इच्छा हुई ॥४॥

जीरे० कहो जोशी अम धूअ, मदनमंजरी गुणवती, जीरे जी,
जीरे० तेह तणो भरतार, कोण थाशे भलो भूपति, जीरे जी. ५

अर्थ–राजाने पूछा–हे ज्योतिषी! गुणोंकी भंड़ार ऐसी हमारी मदनमंजरी नामक पुत्री है, तो कौनसा सुंदर राजकुमार उसका पति होगा? सो कहिये ॥५॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

जीरे० किम मळशे अम तेह, शे अहिनाणे जाणशुं, जीरे जी,
जीरे० कोण दिवस कोण मास, घर तेडीने आणशुं, जीरे जी. ६

अर्थ—वह राजकुमार हमें कैसे प्राप्त होगा? किस निशानीसे हम उसे पहचान सकेंगे? और हम उसे कौनसे महीनेके कौनसे दिनको घर ले आयेंगे? ॥६॥

जीरे० सकल कहो ए वात, जो तुम विद्या छे खरी, जीरे जी,
जीरे० शास्त्र तणे परमाण, अम चिंता टाळो परी, जीरे जी. ७

अर्थ—तो हे ज्योतिषी! यदि आपकी विद्या और ज्योतिष सच्चे हो तो ये सारी बातें कहिये और शास्त्रके प्रमाण (साक्षी) से हमारी चिंता दूर करिये ॥७॥

जीरे० जोशी कहे निमित्त, शास्त्रतणे पूरणबले, जीरे जी,
जीरे० पूरवगत आम्नाय, ध्रुवतणी परे नवि चले, जीरे जी. ८

अर्थ—यह सुनकर ज्योतिषी कहने लगा—मैं निमित्तशास्त्रके पूर्णबलसे और परंपरासे प्राप्त विद्याके गुप्त भेदसे ध्रुवके तारेकी तरह कभी चलायमान न हो ऐसी भविष्यवाणी कहता हूँ ॥८॥

जीरे० शुदि दशमी वैशाख, अढी पहोर दिन अतिक्रमे, जीरे जी,
जीरे० रयणायर उपकंठ, जई जोज्यो तेणे समे, जीरे जी. ९

अर्थ—हे राजन्! वैशाख सुदि दसवींके दिन, ढाई प्रहर दिन व्यतीत होनेके बाद समुद्रके किनारे पर जाकर देख लीजियेगा ॥९॥

जीरे० नवनंदन वनमांहि, शयन कीधुं चंपातले, जीरे जी,
जीरे० जोज्यो तस अहिनाण, तरुवर छाया नवि चले, जीरे जी. १०

अर्थ—वहाँ नवनंदन वनमें चंपकवृक्षके नीचे एक पुरुष सोया हुआ होगा। (वह पुरुष मदनमंजरीका पति होगा) और उसकी निशानी यह है कि सूर्य चाहे जिधर जाये मगर उस पुरुष परसे वृक्षकी छाया नहीं हटेगी ॥१०॥

जीरे० राये न मानी वात, एम कहे ए शुं केवली, जीरे जी,
जीरे० अमने मोकलिया आंहि, आज वात ते सवि मली, जीरे जी. ११

अर्थ—ज्योतिषीकी ऐसी बात सुनकर राजाने उसे सत्य न मानी और कहने लगा—क्या यह कोई केवलज्ञानी है? परंतु आज वह दिन आ पहुँचा है इसलिये उस बातकी सत्यताकी प्रतीति करनेके लिये हमें यहाँ भेजा है और उसकी हर बात सत्य सिद्ध हुई है ॥११॥

www.jaintatvagyanshala.org

जीरे० प्रभु थाओ असवार, अश्वरत्न आगळ धर्यो, जीरे जी,
जीरे० कुंवर चाल्यो ताम, बहु असवारे परवर्यो, जीरे जी. १२

अर्थ–इसलिये हे स्वामी! आप इस अश्व पर सवार हो जाइये। इस प्रकार कहकर राजाके सेवकने कुँवरके आगे अश्व खड़ा किया। फिर कुँवर भी अश्व पर बैठकर कई असवारोंके साथ शहरकी ओर चलने लगा ॥१२॥

जीरे० आगळ जई असवार, नृपने दिये वधामणी, जीरे जी,
जीरे० सन्मुख आव्यो राय, साथे लई दोलत घणी, जीरे जी. १३

अर्थ–इधर किसी एक असवारने आगे जाकर राजाको बधाई दी, जिससे राजा ऋद्धि लेकर कुँवरके सामने अगवानीके साथ स्वागतके लिये आया ॥१३॥

जीरे० शणगार्या गजराज, अंबाडी अंबर चडी, जीरे जी,
जीरे० घंटा घूघर माल, पाखरमणि रयणे जडी, जीरे जी. १४

अर्थ–उस अगवानीमें मणि-रत्नोंसे जड़ित पाखर और घंटडी तथा घूघरोंसे सजाये हुए हाथी थे। वे हाथी इतने सारे ऊँचे थे कि मानो उनकी अंबारी (हौदा) आकाशमें न चढ़ गई हो! ऐसा लगता था ॥१४॥

जीरे० सोवनजडित पलाण, तेजाला तेजी घणा, जीरे जी,
जीरे० जोतरीआ केकाण, रथ जाणे दिनकरतणा, जीरे जी. १५

अर्थ–फिर सुवर्णजड़ित पलानवाले कई द्रुतगति घोड़े थे और मानो सूर्यके ही रथ हो! ऐसे रथ जोड़े हुए थे ॥१५॥

जीरे० वर बेहेडां धरी शीश, सामी आवे बालिका, जीरे जी,
जीरे० मोती सोवन फूल, वधावे गुण मालिका, जीरे जी. १६

अर्थ–उस समय कुँवारिकाएँ मस्तक पर पानीसे भरे हुए श्रेष्ठ कुंभ (घड़े) धारण कर सन्मुख आ रही थी और मानो वे गुणकी माला ही न हो! ऐसी वे कुँवारिकाएँ सोना-चाँदीके फूल और मोतीसे कुँवरको पूजती थी अर्थात् आवभगत करती थी ॥१६॥

जीरे० राज वाहन चकडोल, रयण सुखासन पालखी, जीरे जी,
जीरे० साबेला सेंबद्ध, केतु पताका नवलखी, जीरे जी. १७

अर्थ–उस अगवानीमें राज्यके बड़े बड़े वाहन, हिंडोला, रत्नमय सुखासन और पालकियाँ थी तथा सैंकडों शहबालें सजे हुए थे। साथमें अपूर्व और मूल्यवान निशान-डंके और ध्वजा-पताकाएँ भी थी ॥१७॥

जीरे० वाजे बहु वाजिंत्र, नाचे पात्र ते पगे पगे, जीरे जी,
जीरे० शणगार्या घर हाट, पाट सावटू झगमगे, जीरे जी. १८

अर्थ—उस अगवानीमें अनेक प्रकारके वाद्य बज रहे थे, उसके साथ ताल मिलाती हुई नर्तकियाँ नाच रही थी। उस नगरमें रेशमी वस्त्रोंसे सजाये हुए घर तथा दूकानें झगमगा रहे थे ॥१८॥

जीरे० एम महोटे मंडाण, पेसारो महोत्सव करे, जीरे जी,
जीरे० राय सकल गुण जाण, कुंवर पधराव्या घरे, जीरे जी. १९

अर्थ—इस प्रकार बड़े आडंबरपूर्वक राजाने कुँवरका प्रवेश-महोत्सव किया और सर्व गुणोंका ज्ञाता ऐसा वसुपाल राजा श्रीपालकुँवरको अपने महलमें ले गया ॥१९॥

जीरे० जोशी तेडाव्या जाण, लगन तेहीं ज दिने आवियुं, जीरे जी,
जीरे० देई बहुलां दान, राये लगन वधावियुं, जीरे जी. २०

अर्थ—फिर राजाने विद्वान ज्योतिषियोंको बुलाया और लग्नका मुहूर्त्त दिखाया, तो उसी दिनका मुहूर्त्त निकला, इसलिये राजाने विविध प्रकारका दान देकर उस मुहूर्त्तको प्रेमपूर्वक मान्य रखा ॥२०॥

जीरे० तेही ज रयणी मांहि, धूआ मदनरेखा तणो, जीरे जी,
जीरे० राये कर्यो विवाह, साजन मन ऊलट घणो, जीरे जी. २१

अर्थ—फिर राजाने उसी रातको अपनी पुत्री मदनरेखाका विवाह किया। उस प्रसंग पर सर्व सगे-संबंधियोंके मनमें बहुत ही उत्साह दिखायी देता था ॥२१॥

जीरे० गज रथ घणा भंडार, दीधां करम्हेलामणे, जीरे जी,
जीरे० जईये महिमा देखी, सिद्धचक्रने भामणे, जीरे जी. २२

अर्थ—हस्तमिलापके बाद करमोचनके समय राजाने अनेक हाथी, रथ और धनके भंड़ार दिये। सचमुच ! यह सब श्री सिद्धचक्रजीका ही प्रताप है। उसका प्रभाव देखकर उसकी आरती उतारनी चाहिये ॥२२॥

जीरे० पडिया सायर मांहि, एक ज दुःखनी यामिनी, जीरे जी,
जीरे० बीजी रात्रे जोय, इणि परे परण्या कामिनी, जीरे जी. २३

अर्थ—देखिये ! श्रीपालकुँवर समुद्रमें गिरे तब केवल एक ही रात दुःखमें बीती। और दूसरी ही रातको इस प्रकार राजकुँवरीसे शादी की ! ! ॥२३॥

www.jaintatvagyanshala.org

जीरे० नृप दीधा आवास, तिहां सुखभर लीला करे, जीरे जी,
जीरे० मयणरेहाशुं नेह, दिन दिन अधिकेरो धरे, जीरे जी. २४

अर्थ—फिर राजाने उन्हें रहनेके लिये महल दिया, वहाँ वह दंपति सुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगा और श्रीपालकुँवर मदनरेखा पर दिनोंदिन अधिक अधिक स्नेह धारण करने लगे ॥२४॥

जीरे० नृप दिये बहु अधिकार, कुंअर न वंछे ते हिये, जीरे जी,
जीरे० थयो थगीधर आप, पान तणां बीडां दिये, जीरे जी. २५

अर्थ—फिर राजा कुँवरको बड़े बड़े अधिकार (ओहदा) देने लगे, मगर कुँवरको किसी पदकी दिलसे भी चाहना न थी, अतः उन्होंने +थगीधरका पद स्वीकार किया और पान-बीड़ा देनेका काम करने लगे ॥२५॥

जीरे० जे कोई अति गुणवंत, मान दिये नृप जेहने, जीरे जी,
जीरे० तेहने बीडां पान, देवरावे कुंअर कने, जीरे जी. २६

अर्थ—अब जो कोई सेठ-साहुकार आता था, और उनमेंसे राजा जिसे मान देता था उस पुरुषको राजकुँवरके हाथसे पान-बीड़ा दिलवाता था ॥२६॥

जीरे० त्रीजे खंडे एह, बीजी ढाळ सोहामणी, जीरे जी,
जीरे० सिद्धचक्र गुणश्रेणि, भवि सुणजो विनये भणी, जीरे जी. २७

अर्थ—इस प्रकार तीसरे खंडकी यह मनोहर दूसरी ढाल पूर्ण हुई। हे भव्य प्राणियों! इसमें महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराजने श्री सिद्धचक्रजीके गुणोंकी जो श्रेणी कही है उसे आप सुनियेगा।२७॥

तृतीय खंडकी दूसरी ढाल समाप्त

दोहा छंद

वहाणमांहि जे हुई, हवे सुणो ते वात,
धवळ नाम काळो हिये, हरख्यो साते धात. १

अर्थ—अब श्रीपालकुँवर समुद्रमें गिरनेके पश्चात् इधर जहाजमें क्या हुआ? सो सुनिये। नाम धवल (अर्थात् बाहरसे उज्वल श्वेत) और अंदरसे काले हृदयवाला ऐसा धवलसेठ सातों धातुओंसे (रोमरोमसे) हर्षित हुआ ॥१॥

मन चिंते मुज भाग्यथी, मोटी थई समाधि,
पलकमांहि विण ओसडे, विरूई गई विराधि. २

+ एक मानवंती पदवी, स्वागताध्यक्ष

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—वह धवलसेठ मनमें विचार करने लगा कि मेरे भाग्यके उदयसे आज मुझे महान शांति हुई और औषधिके बिना ही एक पलभरमें विषम व्याधि नष्ट हो गयी ॥२॥

ए धन ए दोय सुंदरी, एह सहेली साथ,
परमेसर मुज पाधरो, दीधुं हाथोहाथ. ३

अर्थ—मेरा परमेश्वर सीधा (अनुकूल) होनेसे यह धन, ये दोनों स्त्रियाँ और यह सहेलियोंका समूह—यह सब मुझे अपने हाथसे ही दे दिया ॥३॥

कूडी माया केळवी, दोय रीझवुं नार,
हाथ लई मन एहनां, सफल करुं संसार. ४

अर्थ—अब मैं मिथ्या मायाजाल फैलाकर इन दोनों स्त्रियोंको खुश करूँ और उनके मनको आकृष्ट कर मेरे संसारको सफल करूँ ॥४॥

दुखिया थईये तस दुःखे, वयण सुकोमळ रीति,
अनुक्रमे वश कीजिये, न होय पराणे प्रीति. ५

अर्थ—(उसका मार्ग यह है कि) पहले तो उनके दुःखमें दुःखी होऊँ (अर्थात् कुँवरकी मृत्युसे मुझे अत्यंत दुःख हुआ है ऐसा दिखावा करूँ) और फिर कोमल एवं प्रिय वचन बोलकर क्रमशः उन्हें वश करूँ, क्योंकि जबरजस्तीसे प्रीति नहीं होती ॥५॥

धूर्त इम चित्तमां धरी, करे अनेक विलाप,
मुखे रूवे हईडे हसे, पाप विगोवे आप. ६

अर्थ—धूर्त्त सेठ इस प्रकार मनमें सोचकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा, मुँहसे ऊँची आवाजसे रोने लगा परंतु हृदयसे हँसने लगा। यों पापी धवलसेठ अपने आपकी निंदा करने लगा ॥६॥

ढाल तीसरी

(रहो रहो रथ फेरवो रे—ए देशी)

जीव जीवन प्रभु किहां गया रे, दियो दरिसण एक वार रे,
सुगुणा साहेब तुम विना रे, अमने कोण आधार रे. जीव०१

अर्थ—हे प्राणियोंको जिलानेवाले प्रभु! आप कहाँ चले गये? अब एक बार तो दर्शन दीजिये। हे सद्गुणी स्वामी! आपके बिना हमें कौन आधार है? ॥१॥

www.jaintatvagyanshala.org

शिर कूटे पीटे हियुं रे, मूके मोटी पोक रे,
हाल कल्लोल सायर थयो रे, भेळा हुआ घणां लोक रे. जीव० २

अर्थ—इस प्रकार विलाप करता हुआ वह सेठ सिर कूटने लगा, छाती पीटने लगा और चीख-चीखकर चिल्लाने लगा। इससे समुद्रमें कुहराम मच गया। यह सुनकर बहुतसे लोग इकट्ठे हुए ॥२॥

कौतुक जोवाने चढ्या रे, मांचे वहाणनी कोर रे,
है है दैव ए शुं थयुं रे, तूट्यां जूनां दोर रे. जीव० ३

अर्थ—लोग सेठसे पूछने लगे तब सेठने कहा—अरेरे! क्या कहूँ? ये कुँवर कौतुक देखनेके लिये जहाजके किनारे मचान पर चढ़े थे और यकायक ये पुराने रस्से टूट गये। अरे! अरे! हे दैव! यह क्या हो गया? ॥३॥

जव बेहु मयणा तणे रे, काने पडी ते वात रे,
ध्रसक पड्यो तव ध्रासको रे, जाणे वज्रनो घात रे. जीव० ४

अर्थ—जब यह बात उन दोनों स्त्रियोंके कानमें पहुँची तो मानो वज्रकी चोट लगी न हो! ऐसा उनके हृदयमें एकदम बड़ा आघात पहुँचा ॥४॥

थई अचेतन धरणी ढळी रे, करती क्रोड विखास रे,
सही साहेली सवि मली रे, नाके जुए निसास रे. जीव० ५

अर्थ—वे दोनों स्त्रियाँ करोड़ों विलाप और खेद करती हुई मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह देखकर उनकी सहेलियाँ और सखियाँ घबरा गई और नाकमें श्वास देखने लगी अर्थात् उनके जीवितव्यकी उन्हें शंका होने लगी ॥५॥

छांट्यां चंदन कमकमां रे, कर्या विंझणे वाय रे,
चेत वळ्युं तव आरडे रे, हैये दुःख न माय रे. जीव० ६

अर्थ—फिर अत्यंत सुगंधी और शीतल चंदनका पानी छाँटने लगी और पंखेसे हवा देने लगी। तब उन स्त्रियोंको कुछ भान आया जिससे वे फिर रोने लगी। उस समय उनके हृदयमें तो दुःख समाता नहीं था ॥६॥

कांई प्राण पाछां वळ्या रे, जो रूठो किरतार रे,
पियरीआ अलगां रह्यां रे, मूकी गयो भरतार रे. जीव० ७

अर्थ—वे विलाप करती हुई कहने लगी—आज यदि दैव (प्रारब्ध) हम पर रुष्टमान हुआ है तो हे प्राण! तुम वापिस क्यों आये? अरे! अब तो पीहरके लोग भी दूर रहे और ये पति भी छोड़कर चले गये ॥७॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

माय बापने परिहरी रे, कीधो जेहनो साथ रे,
फिट हियडा फूटे नहीं रे, विछड्यो ते प्राणनाथ रे. जीव० ८

अर्थ–हे हृदय ! तुझे फिटकार है कि मातापिताका त्याग कर जिसका साथ किया था वे प्राणनाथ (पति) भी जुदा हुए, फिर भी तू क्यों फूट नहीं जाता ? ॥८॥

धवळशेठ तिहां आवियो रे, कूडा करे विलाप रे,
शुं कीजे ए दैवने रे, दीजे किश्या शराप रे. जीव० ९

अर्थ–इतनेमें धवलसेठ भी उन स्त्रियोंके पास आया और खोटे विलाप करने लगा तथा कहने लगा–इस दैवको क्या करें ? और इसे क्या क्या शाप दे ? ॥९॥

दुःख सह्यां माणस कह्यां रे, भूख सह्यां जिम ढोर रे,
धीरज आप न मूकिये रे, करिये हृदय कठोर रे. जीव० १०

अर्थ–जैसे पशु भूखको सहन करनेवाले होते हैं उसी तरह दुःखको सहन करनेवाला ही मनुष्य कहलाता है। इसलिये अब आप धीरज न छोड़े और हृदयको मजबूत करे ॥१०॥

मणि माणेक मोती खरां रे, जेहना गुण अभिराम रे,
जिहां जाशे तिहां तेहने रे, मुकुट हार शिर ठाम रे. जीव० ११

अर्थ–फिर सच्चे मणि, माणिक और मोतीकी तरह जो मनोहर गुणवाले हैं ऐसे ये कुँवर जहाँ भी होंगे वहाँ–मुकट और माला जैसे सिर पर प्रस्थापित होती है वैसे–वे अग्र स्थानको ही प्राप्त होंगे ॥११॥

व्यंग वचन एहवुं सुणी रे, मन चिंते ते दोय रे,
एह करम एणे कर्युं रे, अवर न वैरी कोय रे. जीव० १२

अर्थ–इस प्रकार सेठका व्यंग वचन सुनकर वे दोनों सुंदरियाँ सोचने लगी–हमारे पतिको मारनेका काम इस दुष्टने ही किया है। इसके जैसा दूसरा कोई वैरी नहीं है ॥१२॥

धन रमणीनी लालचे रे, कीधो स्वामी द्रोह रे,
मीठो थई आवी मळे रे, खांड गलेफियुं लोह रे. जीव० १३

अर्थ–इस दुष्ट सेठने ही धन और स्त्रीकी लालचसे स्वामीका द्रोह किया है और अब बाहरसे मधुरता दिखाते हुए मिलने आया है, इसलिये शहदलिपटी तलवारकी तरह (लोहे पर शक्करका गिलाफ (खोली) चढ़ाया हो, उसे खाने

www.jaintatvagyanshala.org

पर पहले शक्करका स्वाद आता है किन्तु बादमें जीभ और दांतके बुरे हाल होते हैं उसी तरह) कपटी मनुष्यके विश्वाससे वैसे ही खराब हाल होते हैं ।।१३।।

शील हवे किम राखशुं रे, ए करशे उपघात रे,
करीए कंत तणी परे रे, सायर झंपापात रे. जीव० १४

अर्थ–अब यह सेठ हमारे शीलका खंडन करेगा, तो हम अपने शीलकी रक्षा कैसे करेगी ? अतः स्वामीकी तरह हम भी समुद्रमें झंपापात कर ले ।।१४।।

समकाले बेहु जणी रे, मन धारी ए वात रे,
इण अवसर तिहां उपनो रे, अति विसमो उतपात रे. जीव० १५

अर्थ–इस प्रकार मनमें इस बातका विचार कर दोनों स्त्रियोंने एक साथ झंपापातकी तैयारी की। इतनेमें उस समय समुद्रमें भयंकर उत्पात (तूफान) शुरू हुआ ।।१५।।

हालकल्लोल सायर थयो रे, वाये उभड वाय रे,
घोर घनाघन गाजियो रे, विजळी चिहुं दिशि थाय रे. जीव० १६

अर्थ–तूफानी पवन फूँकने लगा, जिससे समुद्रमें पानीकी बड़ी बड़ी लहरें उठने लगी, फिर आकाशमें भयंकर मेघगर्जना होने लगी और चारों ओर बिजली चमकने लगी ।।१६।।

कूवाथंभा कडकडे रे, उडी जाय सढ दोर रे,
हाथे हाथ सूझे नहीं रे, थयुं अंधारुं घोर रे. जीव० १७

अर्थ–ऐसी हालतमें जहाजोंके मस्तुल कडकड आवाज करने लगे (टूटने लगे) और पालके रस्से उड जाने लगे तथा भयंकर अंधकार फैल गया जिससे हाथको हाथ दीखता नहीं था ।।१७।।

डम डम डमरू डमकते रे, मुख मूके हुंकार रे,
खेत्रपाळ तिहां आविया रे, हाथे लेई तरवार रे. जीव० १८

अर्थ–इतनेमें डमडम डमरु (एक वाद्य) बजाते हुए और मुँहमेंसे हुंकार ध्वनि करते हुए क्षेत्रपाल देव हाथमें तलवार लेकर वहाँ आये ।।१८।।

वीर बावने परवर्या रे, हाथे विविध हथियार रे,
छडीदार दोडे छडा रे, चार चतुर पडिहार रे. जीव० १९

अर्थ—बावन वीर उनके साथ थे और उनके आगे हाथमें अलग अलग प्रकारके हथियारोंसे सज्ज ऐसे चार चतुर प्रतिहार छड़ीदारकी तरह आगे दौड़ रहे थे ॥१९॥

बेठी मृगपति वाहने रे, चक्र भमाडे हाथ रे,
चक्केसरी पाउधारिया रे, देव देवी बहु साथ रे. जीव० २०

अर्थ—उनके पीछे सिंहके वाहन पर बैठी हुई, हाथमें चक्र घुमाती हुई, अनेक देव-देवियोंके साथ चक्रेश्वरी देवी भी आई ॥२०॥

हण्यो कुबुद्धि मित्रने रे, जिणे वांकी मति दीध रे,
खेत्रपाळे तव ते ग्रही रे, खंड खंड तनु कीध रे. जीव० २१

अर्थ—फिर क्षेत्रपाल देवने, सेठको उलटी बुद्धि देनेवाले कुबुद्धि मित्रको पकड़कर खूब मारा तथा मार मार कर उसे मौतके घाट उतार दिया। फिर उसके शरीरके टुकड़े टुकड़े कर दिये ॥२१॥

ते देखी बीहतो घणुं रे, मयणा शरणे पईठ रे,
शेठ पशु परे ध्रूजतो रे, देवी चक्केसरी दीठ रे. जीव० २२

अर्थ—इस प्रकार मित्रकी हालत देखकर सेठ बहुत डर गया और सुंदरियोंकी शरणमें घुस गया। तब पशुकी तरह काँपते हुए उस सेठको चक्रेश्वरी देवीने देखा ॥२२॥

जा रे मूक्यो जीवतो रे, सती शरण सुपसाय रे,
अंते जाईश जीवथी रे, जो मन धरीश अन्याय रे. जीव० २३

अर्थ—तब देवीने कहा—हे धवल ! तूने शीलवती सुंदरियोंकी शरण ग्रहण की है, इसलिये जा, तुझे जिंदा छोड़ती हूँ। परंतु अब यदि मनमें अन्याय और दुष्ट बुद्धि धारण की तो जानसे जायेगा, ऐसा मान ले ॥२३॥

मयणाने चक्केसरी रे, बोलावे धरी प्रेम रे,
वत्स ! कांई चिंता करो रे, तुम पियुने छे खेम रे. जीव० २४

अर्थ—फिर वह चक्रेश्वरी देवी सती सुंदरियोंको प्रेमपूर्वक बुलाकर दिलासा देने लगी—हे वत्स ! तुम चिंता क्यों कर रही हो ? तुम्हारे पतिदेव तो क्षेमकुशल है ॥२४॥

मास एक मांहि सही रे, तमने मलशे तेह रे,
राज रमणी ऋद्धि भोगवे रे, नरपति ससरा गेह रे. जीव० २५

अर्थ—तुम्हारे पति आजसे एक महीनेके अंदर अवश्य तुम्हें मिलेंगे। अभी वे अपने ससुर वसुपाल राजाके महलमें राजकन्या और राजऋद्धिका सुख भोग रहे हैं ॥२५॥

बेहुने कंठे ठवी रे, फूल अमूलक माल रे,
कहे देवी महिमा सुणो रे, एहनो अतिहि रसाल रे. जीव० २६

अर्थ—फिर उस चक्रेश्वरी देवीने उन दोनों स्त्रियोंके गलेमें अमूल्य पुष्पमाला पहनायी और कहने लगी—इस मालाका अत्यंत मनोहर प्रभाव सुनो— ॥२६॥

शीलजतन एहथी थशे रे, दिन प्रते सरस सुगंध रे,
जेह कुमीटे जोयशे रे, ते नर थाशे अंध रे. जीव० २७

अर्थ—इस मालासे शीलव्रतकी रक्षा होगी और दिन-ब-दिन वह अच्छी सुगंध देगी। तथा जो मनुष्य कुदृष्टिसे तुम्हें देखेगा, वह मनुष्य इस मालाके प्रभावसे अंध हो जायेगा ॥२७॥

एम कही चक्केसरी रे, उतपतियां आकाश रे,
सयल देवशुं परिवर्या रे, पहोतां निज आवास रे. जीव० २८

अर्थ—यों कहकर चक्रेश्वरी देवी और क्षेत्रपाल आकाशमें अदृश्य हो गये और सारे देव-देवीके परिवारके साथ अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥२८॥

तव उतपात सवे टल्या रे, वहाण चाल्यां जाय रे,
चिंता भांगी सर्वनी रे, वाया वाय सुवाय रे. जीव० २९

अर्थ—उस समय समुद्रका सारा उत्पात भी शांत हो गया, सब जहाज चलने लगे और सब लोगोंकी चिंता दूर हुई तथा सुंदर अनुकूल हवा चलने लगी ॥२९॥

मित्र त्रण कहे शेठने रे, दीठी परतक्ष वात रे,
चोथो मित्र अधर्मथी रे, पाम्यो वेगे घात रे. जीव० ३०

अर्थ—अब तीन मित्र सेठसे कहने लगे—हमारी कही हुई बात आपने प्रत्यक्ष देखी न? यह चौथा कुबुद्धि मित्र अधर्मसे शीघ्र मृत्युकी शरण हुआ ॥३०॥

ते माटे ए चित्तथी रे, काढी मूको साल रे,
पर लखमी परनारने रे, हवे म पडशो ख्याल रे. जीव० ३१

अर्थ—इसलिये हे सेठ! अब पराई लक्ष्मी और परस्त्रीकी प्राप्तिका

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

विचार करना भी छोड़ दो और उस इच्छारूपी शल्यको मनसे निकाल दो ॥३१॥

पण दुर्बुद्धि शेठनुं रे, चित्त न आव्युं ठाय रे,
जइवि कपूरे वासिये रे, लसण दुर्गंध न जाय रे. जीव० ३२

अर्थ—ऐसा कहने पर भी, जैसे कपूरसे वासित भी लहसूनकी दुर्गंध जाती नहीं है, वैसे ही दुष्ट बुद्धिवाले सेठका चित्त ठिकाने न आया ॥३२॥

हैडा करने वधामणां रे, अंश न दुःख धरेश रे,
जो बच्यो छुं जीवतो रे, तो सवि काज करेश रे. जीव० ३३

अर्थ—अब सेठ अपने मनमें यों सोचने लगा—हे हृदय! तुझे जिंदा बचनेके लिये बधाई हो, तू जरा भी दुःख धारण न कर; क्योंकि यदि तू जिंदा बचा है तो सब कार्यकर सकेगा ॥३३॥

जो मुज भाग्ये एवडुं रे, विघ्न थयुं विसराळ रे,
तो मिलशे ए सुंदरी रे, समशे विरहनी झाळ रे. जीव० ३४

अर्थ—मेरे सद्‌भाग्यके उदयसे इतना बड़ा विघ्न भी नष्ट हो गया है, तो निश्चित ही मैं पुण्यशाली हूँ और मुझे ये सुंदरियाँ अवश्य संप्राप्त होगी और विरहकी अग्नि शांत होगी ॥३४॥

एम चिंती दूती मुखे रे, कहावे हुं तुम दास रे,
नेक नजर करी निरखिये रे, मानो मुज अरदास रे. जीव० ३५

अर्थ—यों सोचकर दूतीके द्वारा कहलवाया—मैं आपका सेवक हूँ, इसलिये आप मुझे प्रेमभरी नजरसे देखिये और मेरी अर्ज स्वीकारें ॥३५॥

दूतीने काढी परी रे, देई गलहत्थो कंठ रे,
तोही निर्लज लाज्यो नही रे, वळी थयो उल्लंठ रे. जीव० ३६

अर्थ—तब उन सुंदरियोंने दूतीको गला पकड़कर निकाल दिया, तो भी निर्लज्ज सेठ शरमिंदा नहीं हुआ, अपितु उलटा विशेष शैतान हो गया ॥३६॥

वेश करी नारी तणो रे, आव्यो मयणा पास रे,
दृष्टि गई थयो आंधळो रे, काढ्यो करी उपहास रे. जीव० ३७

अर्थ—अब सेठ स्त्रीका वेश (कपड़े) पहनकर सुंदरियोंके पास आया, तब उसकी दृष्टि पुष्पमालाके प्रभावसे चली गई और वह अंधा हो गया जिससे दासियों आदिने उसकी मसखरी करके बाहर निकाल दिया ॥३७॥

www.jaintatvagyanshala.org

ऊतरिये उत्तर तटे रे, वहाण चलावो वेग रे,
पण सन्मुख होय वायरो रे, शेठ करे उद्वेग रे. जीव० ३८

अर्थ—अब सेठ खलासियोंसे कहने लगा—तुम जहाजोंको उत्तर दिशामें त्वरासे चलाओ, हम उत्तर दिशाके किनारे उतर जायेंगे। परंतु पवन प्रतिकूल चलने लगा जिससे सेठ मनमें अत्यंत उद्विग्न हुआ ॥३८॥

अवर देश जावा तणा रे, कीधा कोडि उपाय रे,
पण वहाण कोंकण तटे रे, आणी मूक्यां वाय रे. जीव० ३९

अर्थ—इस प्रकार सेठने कोंकण देशको छोड़कर दूसरे देशमें जहाज ले जाने के लिये करोड़ों उपाय किये परन्तु प्रारब्धयोगसे पवन जहाजोंको कोंकण देशके किनारे पर ही ले आया ॥३९॥

त्रीजे खंडे इम कही रे, विनये त्रीजी ढाळ रे,
सिद्धचक्र गुण बोलतां रे, लहिये सुख विशाळ रे. जीव० ४०

अर्थ—इस प्रकारे तीसरे खंडकी तीसरी ढाल पूर्ण हुई। इसमें महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि सिद्धचक्रजीके गुण गानेसे विशाल सुख प्राप्त होता है ॥४०॥

तृतीय खंडकी तीसरी ढाल समाप्त

दोहा छंद

कोंकण कांठे नांगर्यां, सवि वहाण तिणि वार;
नृपने मळवा ऊतर्यो, शेठ लई परिवार. १

अर्थ—अब सारे जहाज कोंकणदेशके किनारे पर ही रोके गये, और धवलसेठ राजासे मिलनेके लिये परिवारके साथ जहाजमेंसे उतरा ॥१॥

आव्यो नरपति पाउले, मिलणां करे रसाल,
बेठो पासे रायने, तव दीठो श्रीपाल. २

अर्थ—फिर धवलसेठ राजाके पास आया और राजाके चरणोंमें मनोहर भेट रखी। फिर राजाके पास बैठा। उस समय उसने वहाँ बैठे हुए श्रीपाल कुँवरको देखा ॥२॥

देखी कुंवर दीपतो, हैये उपनी हूक,
लोचन मींचाई गयां, रवि देखी जिम घूक. ३

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–उस समय वहाँ तेजस्वी श्रीपालकुँवरको देखकर सेठके हृदयमें तीव्र वेदना हुई तथा जैसे सूर्यको देखकर उल्लूकी आँखें मीच जाती है वैसे उसके नेत्र भी बंद हो गये ।।३।।

नृप हाथे श्रीपाळने, देवरावे तंबोळ,
शेठ भली पेरे ओळखी, चित्त थयुं डमडोळ. ४

अर्थ–फिर राजाने श्रीपालकुँवरके हाथसे धवलसेठको पानका बीड़ा दिलवाया, तब सेठने श्रीपालकुँवरको अच्छी तरहसे पहचान लिया और उसका चित्त डोलने लगा ।।४।।

है है दैव अटारडो, एह किश्यो उतपात,
नाखी हती खारे जले, प्रगट थई ते वात. ५

अर्थ–वह सोचने लगा–हे हे वक्र दैव ! यह क्या उत्पात हुआ ? मैंने जो बात खारे पानीमें (समुद्रमें) डाली थी वह बात यहाँ प्रकट हो गयी ।।५।।

सभा विसरजी राय जब, पहोतो महेल मझार;
तब शेठे पडिहारने, पूछ्यो एह विचार. ६

अर्थ–जब राजा सभा विसर्जन कर अपने महलमें पहुँचा, तब सेठ प्रतिहारसे कुँवरके बारेमें सारी बातें पूछने लगा– ।।६।।

एह थगीधर कोण छे? नवलो दीसे कोय,
तेह कहे गति एहनी, सुणतां अचरिज होय. ७

अर्थ–अरे ! यह स्वागताध्यक्ष (थगीधर) कौन है ? यह तो कोई नया आदमी दीखता है । तब वह प्रतिहार विस्तारसे कहने लगा–इसकी कहानी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ।।७।।

वनमां सूतो जागवी, घर आण्यो भलि भात;
परणावी निज कुंवरी, पूछी न नात के जात. ८

अर्थ–अरे ! यह कुँवर तो जंगलमें सोया हुआ था, उसे जगाकर बड़े सत्कारके साथ राजा यहाँ लिवा आये । न तो उसकी ज्ञाति पूछी और न ही उसकी जाति पूछी ! बस कुछ भी पूछे बिना ही अपनी राजकुँवरी ब्याह दी ।।८।।

शेठ सुणी रीझ्यो घणुं, चित्तमां करे विचार;
एहने कष्टे पाडवा, भलुं देखाड्युं बार. ९

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—यह बात सुनकर धवलसेठ अत्यंत खुश हुआ और मनमें सोचने लगा—इसे दुःखमें डालनेके लिये इसने सुंदर मार्ग बताया है ॥९॥

देई कलंक कुजातिनुं, पाडुं एहनी लाज;
राजा हणशे एहने, सहेजे सरशे काज. १०

अर्थ—अब मैं इस पर नीच जातिका कलंक देकर इसकी बेइज्ज़ती करूँ कि जिससे राजा इसे नीच जातिका पुरुष मानकर मार डालेगा। इससे मेरा (इन स्त्रियोंसे शादी करनेका) कार्य सरलतासे सिद्ध हो जायेगा ॥१०॥

जो पण जे जे में कर्या, एहने दुःखनां हेत;
ते ते सवि निष्फळ थयां, मुज अभिलाष समेत. ११

अर्थ—यद्यपि आज तक मैंने इस कुँवरको दुःखी करनेके लिये जो-जो कार्य किये, वे सभी मेरी अभिलाषाके साथ निष्फल गये हैं ॥११॥

तो पण वाज न आविये, मन करीए अनुकूळ;
उद्यमथी सुख संपजे, उद्यम सुखनुं मूळ. १२

अर्थ—फिर भी उसमें निराश होनेकी कोई जरूरत नहीं है; हिंमत रखकर, मनकी स्थिरताके साथ अब भी उद्यम करनेकी जरूरत है, क्योंकि उद्यम (पुरुषार्थ) ही सुखका मूल (कारण) है ॥१२॥

वैरीने वाध्यो घणो, ए मुज खणशे कंद;
प्रथम ज हणवा एहने, करवो कोईक फंद. १३

अर्थ—(इसके अलावा नीति वचन है कि शत्रु और रोगको बढ़नेसे पहले ही दबा देना चाहिये।) इसलिये यदि यह शत्रु ज्यादा बढ़ जायगा तो यह मेरा मूल काट डालेगा, इसलिये सबसे पहले इस शत्रुरूप कुँवरको मारनेके लिये कोई उपाय करना चाहिये ॥१३॥

इम चिंतवतो ते गयो, उतारे आवास;
पलक एक तस जक नहीं, मुख मूके निसास. १४

अर्थ—इस प्रकार अशुभ चिंतवन करता हुआ धवल सेठ अपने निवासस्थान पर गया; परंतु उसे एक पलके लिये भी चैन नहीं था और मुँहसे निःश्वास छोड़ रहा **था ॥१४॥**

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ढाल चौथी

(अषाढभूति अणगारने रे कहे गुरु अमृत वाण रे,
जोगीसर चेला, भिक्षाने भमतां थकां हो लाल—ए देशी)

इण अवसर तिहां डूंबनुं रे, आव्युं टोळुं एक रे,
चतुर नर, ऊभा ओळगडी करे हो लाल,
तेडी महत्तर डूंबने रे, शेठ कहे अविवेक रे,
चतुर नर, काज अमारुं एक करो हो लाल. १

अर्थ—अब इस अवसर पर वहाँ डूंबजाति (चंडालों की एक विशिष्ट जाति) के लोगोंका झुंड आया और खड़े खड़े दीनतापूर्वक आजिजी करने लगा। तब विवेकरहित धवल सेठ उस डूंबजातिके लोगोंके नायक (नेता) को बुलाकर कहने लगा—आप हमारा एक काम कर दीजिये ॥१॥

जेह जमाई रायनो रे, तेहने कहो तुमे डूंब रे,
चतुर नर, लाख सोनैया तुमने आपशुं हो लाल,
धाईने वळगो गळे रे, सघळुं मळी कुटुंब रे,
चतुर नर, पाड घणो अमे मानशुं हो लाल. २

अर्थ—यहाँ इस राजाका जो जमाई है उसे आप डूंबजातिका अपना सगा है ऐसा कहे और उसकी ओर अत्यंत प्रेमसे दौड़-दौड़कर आपका सारा कुटुंब मिलकर उसके गले लग जाये—यह काम करनेके बदलेमें हम आपको एक लाख सोनामुहर देंगे और आपका बहुत ही उपकार मानेंगे ॥२॥

डूंब कहे स्वामी सुणो रे, करश्यां ए तुम काम रे,
चतुर नर, मुजरो हमारो मानजो हो लाल,
केळवशुं कूडी कला रे, लेश्युं परठ्या दाम रे,
चतुर नर, साबासी देजो पछे हो लाल. ३

अर्थ—तब डूंबका नायक धवलसेठसे कहने लगा—हे सेठ! आपके कहे अनुसार हम पूरेपूरा झूठा माया-प्रपंच करेंगे और आपका काम परिपूर्ण करेंगे। परंतु हमारी आपसे एक विनती है कि काम करनेके बाद ठहराये हुए पैसे पूरे लेंगे। (फिर आप वणिकभाई है! इसमें आप आनाकानी करेंगे तो नहीं चलेगा।) तथा बादमें हमें साबासीके साथ सिरोपाव खुश होकर दीजियेगा ॥३॥

www.jaintatvagyanshala.org

डूंब मळी सवि ते गया रे, राय तणे दरबार रे,
चतुर नर, गाये ऊभा घूमता हो लाल,
राग आलापे टेकशुं रे, रीझ्यो राय अपार रे,
चतुर नर, मांगो कांई ! मुख इम कहो हो लाल. ४

अर्थ—फिर डूंब लोग सब मिलकर राजाके महलमें गये और वहाँ दरवाजेके आगे गोल गोल घूमते हुए गीत-गायन गाने लगे और टेकके साथ रागके नये नये आलाप करने लगे। इससे राजा अत्यंत खुश हुआ और बोला—आप क्या चाहते हैं ? सो अपने मुखसे कहिये ।।४।।

डूंब कहे अम दीजीए रे, मोहत वधारी दान रे,
चतुर नर, मोहत अमे वांछुं घणुं हो लाल,
तव नरपति कुंवर कने रे, देवरावे तस पान रे,
चतुर नर, तेहनुं मोहत वधारवा हो लाल. ५

अर्थ—तब डूंब लोग कहने लगे—हमें अपनी महत्ता बढ़ाकर दान दीजिये, क्योंकि हम मान-महत्ताको ही ज्यादा चाहते हैं। तब राजा उनकी महत्ता बढ़ानेके लिये कुँवरके पास उन्हें पान दिलाने लगा ।।५।।

पान देवा जव आवियो रे, कुंवर तेहनी पास रे,
चतुर नर, हसित वदन जोतो हसी हो लाल,
वडो डूंब विलगो गळे रे, आणी मन उल्लास रे,
चतुर नर, पुत्र आज भेट्यो भलो हो लाल. ६

अर्थ—जब श्रीपालकुँवर पान बीड़ा देनेके लिये डूंबके झुंडके पास आया, तब सबसे बड़ा डूंब प्रसन्नवदन होकर हँसते हुए कुँवरको देखने लगा और मनमें उल्लास और प्रेम लाकर कुँवरके गले लिपट गया और बोलने लगा—हे पुत्र ! अच्छा हुआ कि तू आज हमें अचानक मिल गया ।।६।।

एहवे आवी डूंबडी रे, रोई लागी कंठ रे,
चतुर नर, अंगो अंगे भेटती हो लाल,
बेन थईने एक मली रे, आणी मन उत्कंठ रे,
चतुर नर, वीरा जाउं तुम भामणे हो लाल. ७

अर्थ—इतनेमें तो एक बूढ़ी डूंबडी आकर रोती रोती कुँवरके गले लग गई और बारबार उसे छातीसे दबाने लगी। इतनेमें एक डूंबडी बहिन बनकर आई और मनमें उल्लासपूर्वक कहने लगी—हे भाई ! मैं तेरी बलायें लूँ ।।७।।

एक कहे मुज माउलो रे, एक कहे भाणेज रे,
चतुर नर, एवडा दिन तुमे किहां रह्या हो लाल,
एक काकी एक फई थई रे, देखाडे घणुं हेज रे,
चतुर नर, वाट जोतां हतां ताहरी हो लाल. ८

अर्थ–फिर एक कहता था कि ये तो मेरे मामा है। दूसरा कोई कहता था कि यह मेरा भानजा है। अरे भाई! इतने दिन तू कहाँ खो गया था? इतनेमें एक डूंबडी चाची होकर और दूसरी एक बुआ बनकर आई और बहुत स्नेह दिखाने लगीं–हे भाई! हम तो तेरी कई दिनोंसे राह देख रहे थे ॥८॥

डूंब कहे नररायने रे, ए अम कुळ आधार रे,
चतुर नर, रीसाई चाल्यो हतो हो लाल,
तुम पसाय भेळो थयो रे, सवि माहरो परिवार रे,
चतुर नर, भाग्यां दुःख विछोहनां हो लाल. ९

अर्थ–फिर बड़ा डूंब कहने लगा–हे राजन्! यह कुँवर हमारे कुलका आधार है। वह हमसे रुष्ट होकर भाग गया था और आज आपकी कृपासे मेरा सारा परिवार मिल गया है, आज हम सबके वियोगके दुःख नष्ट हो गये हैं ॥९॥

राजा मने चिंते इस्युं रे, सुणी तेहनी वाच रे,
चतुर नर, वात घणी विरूई थई हो लाल,
एह कुटुंब सवि एहनुं रे, दीसे परतख्ख साच रे,
चतुर नर, धिग् मुज वंश विटालियो हो लाल. १०

अर्थ–इस प्रकार डूंब लोगोंका कहना सुनकर राजा मनमें इस प्रकार सोचने लगा–बहुत बुरी बात हो गई है। क्योंकि यह सारा कुटुंब परिवार इस कुँवरका है ऐसा प्रत्यक्ष सच लग रहा है। इसलिये धिक्कार है कि उसने मेरे वंशको भ्रष्ट कर दिया ॥१०॥

निमित्तिओ तेडावियो रे, में तुज वचन विशास रे,
चतुर नर, पुत्री दीधी एहने हो लाल;
किम मातंग कह्यो नहीं रे, तें दीधो गळे पास रे,
चतुर नर, निमित्तिओ वळतुं कहे हो लाल. ११

अर्थ–इस प्रकार सोचकर राजाने ज्योतिषीको बुलाया और कहा–हे जोशी! मैंने तेरे वचन पर विश्वास रखकर इसे मेरी पुत्री दी है, तो तूने ऐसा

क्यों नहीं कहा कि यह मातंग (चंडाल) जातिका है? सचमुच! तूने मेरे गलेमें पाश (फंदा) डाल दिया है—सच छुपाकर मुझे फँसा दिया है। इस प्रकार राजाका कहना सुनकर ज्योतिषी प्रत्युत्तर देने लगा ॥११॥

मुज निमित्त जूठुं नहीं रे, सुणजो साची वात रे,
चतुर नर, ए बहु मातंगनो धणी हो लाल,
राय अरथ समजे नहीं रे, कोप्यो चिंते घात रे,
चतुर नर, कुंअर निमित्तिआ उपरे हो लाल. १२

अर्थ—हे राजन्! मेरा निमित्तशास्त्र जरा भी मिथ्या नहीं है। मेरी बात सच्ची है। सो आप सुनिये—यह कुँवर अनेक मातंगका स्वामी है। इस प्रकारका ज्योतिषीका कथन सुनकर राजा उसका रहस्यार्थ समझ नहीं सका, इसलिये कुँवर और ज्योतिषी पर गुस्सा होकर उन्हें मारनेका उपाय सोचने लगा ॥१२॥

ते बेहु जणने मारवा रे, राये कीध विचार रे,
चतुर नर, सुभट घणा तिहां सज किया हो लाल,
मदनमंजरी ते सुणी रे, आवी तिहां ते वार रे,
चतुर नर, रायने इणि परे वीनवे हो लाल. १३

अर्थ—फिर राजाने दोनोंको मारनेका निश्चय कर अनेक सुभट तैयार किये। इतनेमें यह हकीकत सुनकर मदनमंजरी वहाँ आई और इस प्रकार विनती करने लगी— ॥१३॥

काज विचारी कीजीए रे, जिम नवि होय उपहास रे,
चतुर नर, जगमां जस लहीए घणो हो लाल;
आचारे कुल जाणीए रे, जोईए हिये विमास रे,
चतुर नर, दुर्बलकन्ना नवि होईए हो लाल. १४

अर्थ—हे पिताजी! जो कुछ काम करे उसे सोच-विचारकर करना चाहिये ताकि बादमें लोग मश्करी न करे और जगतमें अपना यश फैले। इसके अलावा मनुष्यका कुल उसके आचार-विचारसे ज्ञात होता है ऐसा हृदयमें सोचना चाहिये, किन्तु कच्चे कानवाला नहीं होना चाहिये ॥१४॥

कुंअरने नरपति कहे रे, प्रगट कहो तुम्ह वंश रे,
चतुर नर, जिम सांशो दूरे टळे हो लाल;
कुंअर कहे किम उच्चरे रे, उत्तम निज परशंस रे,
चतुर नर, कामे कुल ओलखावशुं हो लाल. १५

अर्थ—इस प्रकार पुत्रीकी बात सुनकर राजा कुँवरसे कहने लगा—हे कुँवर ! आप अपना वंश प्रकट कहिये कि जिससे हमारा संशय दूर हो जाय। तब कुँवर कहने लगा—उत्तम पुरुष अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा नहीं करते, इसलिये हम अपना कुल अपने किसी कार्यसे बतायेंगे ॥१५॥

सैन्य तुमारुं सज करो रे, मुज करे द्यो तरवार रे,
चतुर नर, तव मुज कुल परगट थशे हो लाल,
माथुं मुंडाव्या पछी रे, पूछे नक्षत्र ने वार रे,
चतुर नर, एह उखाणो साचव्यो हो लाल. १६

अर्थ—अथवा आप अपना सैन्य तैयार करिये और मेरे हाथमें केवल एक तलवार ही दीजिये, इससे मेरा कुल प्रकट होगा। दूसरी बात, कोई मुंडन करानेवाला व्यक्ति मुंडन करानेके बाद ज्योतिषीसे नक्षत्र, वार, तिथि पूछे ऐसी कहावतको आज आपने सिद्ध कर दिखाया (अर्थात् कन्या ब्याहनेके बाद आप मेरा कुल पूछ रहे हैं—अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत) ॥१६॥

अथवा प्रवहणमां अछे रे, दोय परणी मुज नार रे,
चतुर नर, तेडी पूछो तेहने हो लाल;
ते कहेशे सवि माहरो रे, मूळ थकी अधिकार रे,
चतुर नर, इणि परे कीजे पारखुं हो लाल. १७

अर्थ—अथवा अभी जो जहाज यहाँ आये हुए हैं, उसमें मेरी दो परिणीत स्त्रियाँ है, उन्हें बुलाकर मेरी बात पूछिये। वे प्रारंभसे मेरी सारी बात बतायेगी, इसलिये इस प्रकार मेरी परीक्षा कीजिये ॥१७॥

तेहने तेडवा मोकल्यो रे, राये निज परधान रे,
चतुर नर, ते जईने तिहां वीनवे हो लाल;
तव मयणा मन हरषियां रे, पामी आदर मान रे,
चतुर नर, सही कंते तेडावियां हो लाल. १८

अर्थ—इस प्रकार कुँवरका कहना सुनकर राजाने उन स्त्रियोंको बुलानेके लिये अपने मंत्रीको भेजा। मंत्रीने वहाँ जहाजमें जाकर उन स्त्रियोंसे राज्यदरबारमें आनेके लिये विनती की, तब वे स्त्रियाँ इस प्रकारका आदर-सत्कार देखकर मनमें हर्षित होकर सोचने लगी कि अवश्य हमारे पतिदेवने ही हमें बुलाया है ॥१८॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

बेसी रयण सुखासने रे, आव्यां राय हजूर रे,
चतुर नर, भूपति मन हर्षित थयुं हो लाल.
नयणे नाह निहाळतां रे, प्रगट्यो प्रेम अंकुर रे,
चतुर नर, साचे जूठ नसाडियुं हो लाल. १९

अर्थ—फिर वे दोनों स्त्रियाँ रत्नकी पालकीमें बैठकर राजाके पास आई। उन्हें देखकर राजाका मन अत्यंत हर्षित हुआ, और उन स्त्रियोंके अंतरमें भी अपने पतिको देखकर प्रेमके अंकुर प्रकट हुए। इस प्रकार सत्यने झूठको भगा दिया ॥१९॥

विद्याधर पुत्री कहे रे, सघळो तस विरतंत रे,
चतुर नर, विद्याधर मुनिवर कह्यो हो लाल;
पापी शेठे नाखियो रे, सायरमां अम कंत रे,
चतुर नर, वखते आज अमे लह्यो हो लाल. २०

अर्थ—अब विद्याधर राजाकी पुत्रीने विद्याधर (चारण) मुनि द्वारा कहा हुआ सर्व वृत्तांत राजाको कह सुनाया और विशेषमें कहा—इस पापी सेठने हमारे पतिको समुद्रमें डाल दिया था जो आज हमें पुण्योदयसे ही वापिस प्राप्त हुए है ॥२०॥

ते सुणतां जव ओलख्यो रे, तव हरख्यो मन राय रे,
चतुर नर, पुत्र सगी भगिनी तणो हो लाल;
अविचार्युं कीधुं हतुं रे, पण आव्युं सवि ठाय रे,
चतुर नर, भोजनमांहे घी ढळ्युं हो लाल. २१

अर्थ—यह बात सुनकर जब राजाने श्रीपालकुँवरको पहचाना तब उसका मन बहुत हर्षित हुआ और सोचने लगा कि यह कुँवर तो मेरी सगी बहिनका पुत्र है, इसलिये यद्यपि मैंने बिना विचारे अपनी पुत्री ब्याहनेका काम किया था, वह सब सीधा हुआ और भोजनमें घी ढुलने जैसा ही हुआ ॥२१॥

नरपति पूछे डूंबने रे, कहो ए किस्यो विचार रे,
चतुर नर, तव ते बोले कंपता हो लाल;
शेठे अम्ह विगोईया रे, लोभे थया खुवार. रे,
चतुर नर, कूडुं कपट अमे केळव्युं हो लाल. २२

अर्थ—अब राजा डूंबके नायकसे पूछने लगा—हे मातंग! बताओ कि तुमने यह सब नाटक क्या सोचकर किया? तब डूंब थरथर काँपते हुए कहने

www.jaintatvagyanshala.org

लगा—हे अन्नदाता ! इस सेठने हमें बदनाम किया है और उसके धनके लोभसे हम बरबाद हो गये और यह सब खोटा माया-प्रपंच हमने किया ॥२२॥

तव राजा रीसें चढ्यो रे, बांधी अणाव्यो शेठ रे,
चतुर नर, डूंब सहित हणवा धर्यो हो लाल;
तव कुंअर आडो वळ्यो रे, छोडाव्यो ते शेठ रे,
चतुर नर, उत्तम नर इम जाणीए हो लाल. २३

अर्थ—यह सब बात सुनकर राजा क्रुद्ध हुआ और धवलसेठको बाँधकर अपने पास लिवाया। फिर डूंब और सेठको मारनेका विचार किया, किन्तु कुँवर बीचमें पड़ा और धवलसेठ तथा डूंबको छुड़ाया। सचमुच ! सज्जन पुरुषोंकी इसी तरह परीक्षा होती है ॥२३॥

निमित्तिओ तव बोलियो रे, साचुं मुज निमित्त रे,
चतुर नर, ए बहु मातंगनो धणी हो लाल;
मातंग कहीए हाथीआ रे, तेहनो प्रभु वडचित्त रे,
चतुर नर, ए राजेसर राजियो हो लाल. २४

अर्थ—तब नैमित्तिक बोला—हे राजन् ! मेरा निमित्तशास्त्र सत्य है, क्योंकि यह कुँवर अनेक मातंगोंका स्वामी है। यहाँ मातंग अर्थात् हाथी समझना। (मातंग शब्दके दो अर्थ होते हैं—एक अर्थ मातंग अर्थात् चंडाल और दूसरा अर्थ मातंग अर्थात् हाथी। इसमेंसे यहाँ हाथी अर्थ लेना चाहिये।) तथा यह कुँवर उदार मनवाला और राजाओंका भी राजा है ॥२४॥

निमित्तियाने नृप दिये रे, दान अने बहुमान रे,
चतुर नर, विद्यानिधि जगमां वडो हो लाल,
कुंअर निज घर आविया रे, करतां नवपद ध्यान रे,
चतुर नर, मयणा त्रणे एकठी मळी हो लाल. २५

अर्थ—फिर राजाने नैमित्तिकको बहुत दान और मान दिया। सचमुच विद्याका भंडार ऐसे विद्वानको दुनियामें सबसे बड़ा जानना चाहिये। तत्पश्चात् श्रीपालकुँवर नवपदका ध्यान करते हुए अपने महलमें आये और वहाँ उनकी तीनों स्त्रियाँ इकट्ठी हुई ॥२५॥

कुंअर पूरवनी परे रे, पाळे मननी प्रीत रे,
चतुर नर, पासे राखे शेठने हो लाल,

ते मनथी छंडे नहीं रे, दुर्जननी कुल रीत रे,
चतुर नर, जे जेहवो ते तेहवो हो लाल. २६

अर्थ—अब श्रीपालकुँवर स्वयंको अनेक प्रकारसे दुःख देनेवाले ऐसे धवलसेठको भी अपने पास मित्रकी तरह रखने लगा और पहलेकी तरह ही हार्दिक स्नेह रखने लगा। परंतु उस धवलसेठने दुर्जनकी कुल-रीतिको मनसे जरा भी न छोड़ा, क्योंकि जो आत्मा जैसा होता है वह वैसा ही रहता है, बदलता नहीं है। (जैसे कुत्तेकी पूँछ टेढ़ी ही रहती है, कभी सीधी नहीं होती।) ॥२६॥

बेउ हाथ भूई पड्या रे, काज न एको सिद्ध रे,
चतुर नर, शेठ इस्युं मन चिंतवे हो लाल,
पी न शक्यो ढोळी शकुं रे, एहवो निश्चय कीध रे,
चतुर नर, एहने निज हाथे हणुं हो लाल. २७

अर्थ—अब धवलसेठ इस प्रकार सोचने लगा—मेरे दोनों हाथ पृथ्वी पर पड़े और मेरा एक भी काम सिद्ध नहीं हुआ, फिर भी यद्यपि मैं पी नहीं सका तो ढोल तो सकता हूँ, अर्थात् इस कुँवरकी लक्ष्मी आदिको मैं भोग नहीं सका, तो इस कुँवरको भी भोगने नहीं दूँगा, इसलिये इस कुँवरको मैं अपने हाथसे ही मार डालूँगा ऐसा उसने निश्चय किया ॥२७॥

कुंवर पोढ्यो छे जिहां रे, सातमी भूईए आप रे,
चतुर नर, लेई कटारी तिहां चड्यो हो लाल,
पग लपट्यो हेठो पड्यो रे, आवी पहोतुं पाप रे,
चतुर नर, मरी नरके गयो सातमी हो लाल. २८

अर्थ—फिर जहाँ सातवीं मंजिल पर श्रीपालकुँवर सोये हुए थे वहाँ सेठ स्वयं अपने हाथमें खुल्ली कटार लेकर ऊपर चढ़ने लगा। इतनेमें जीने परसे पैर फिसला और वह नीचे जमीन पर औंधा गिरा। सचमुचमें उसका पाप भी बहुत इकट्ठा हो गया था इसलिये अपने हाथमें रही हुई कटार स्वयंको लगनेसे मरकर सातवीं नरकमें पैदा हुआ ॥२८॥

सारांश—सचमुच इस पापी सेठने अपने पर अनेक बार उपकार करनेवाले ऐसे उपकारी श्रीपालको भी दुःख देनेके लिये अनेक उपाय किये, फिर भी श्रीपालकुँवरको अपने पुण्यके प्रकर्षसे दुःखके कारण भी सुखरूप हुए, और धवलसेठ दूसरेको दुःखी करते हुए खुद ही दुःखका भोगी हुआ,

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

और अपने मनकल्पित सुखके लिये क्षणके आनंदके बदले सागरोपमकी सजा भोगनी पड़ी। सचमुच! मोहांध पुरुष मजा लेते हुए भविष्यकी सजा भूल ही जाता है।

लोक प्रभाते तिहां मल्या रे, बोले धिग् धिग् वाण रे,
चतुर नर, स्वामी द्रोही ए थयो हो लाल;
जेह कुंअरने चिंतव्युं रे, आप लह्युं निरवाण रे,
चतुर नर, उग्र पाप तुरत फळे हो लाल. २९

अर्थ—सुबहमें वहाँ लोग इकट्ठे हुए और 'धिक्कार हो! धिक्कार हो!' ऐसे वचन बोलने लगे और कहने लगे—यह पापी अपने स्वामीका ही द्रोह करनेवाला हुआ और कुँवरको मारनेके लिये जो सोचा था उससे स्वयं ही मौतको प्राप्त हुआ। सचमुच! तीव्र पाप तुरत ही फलित होता है ॥२९॥

मृतकारज तेहनां करे रे, कुंअर मन धरे शोक रे,
चतुर नर, गुण तेहना संभारतो हो लाल;
सोवन घणुं तपाविये रे, अग्नितणे संयोग रे,
चतुर नर, तोही रंग न पालटे हो लाल. ३०

अर्थ—अब श्रीपालकुँवरने मनमें शोक धारण करते हुए धवलसेठके सारे मृतकार्य किये और उसके गुणोंको वारंवार याद करने लगा; क्योंकि सुवर्ण अग्निके संयोगसे अत्यंत तप्त होने पर भी अपने मूल रंगको नहीं छोड़ता, उसी तरह सज्जन पुरुष स्वयंको दुःखी करनेवाले दुर्जनके भी गुण ही देखते हैं और अपना सज्जनता रूप स्वभाव नहीं छोड़ते ॥३०॥

सारांश—धवलसेठ इतने इतने अपकार करने पर भी श्रीपालकुँवर उसके किये हुए अपकारको दुःस्वप्नकी तरह याद भी नहीं करते और छोटेसे उपकारको मंत्रकी तरह याद कर—उसके अनेक अपकारोंकी अवगणना कर—उसके प्रति सज्जनता ही प्रदर्शित करते हैं। कुँवरकी सज्जनताकी कैसी पराकाष्ठा! कि धवलसेठकी मौतसे मनमें शोक धारणकर उसका मृतकार्य किया। सचमुच! ऐसे अपकारीकी मौतके लिये शोक होना सज्जनताकी सीमा ही कही जा सकती है, नहीं तो ऐसा ही होता है कि "पापी इसी लायक था! अच्छा हुआ! इसके पापका फल इसे ही मिल गया!" ऐसी दुर्जनताकी दुर्गंध फैले बिना ऐसे प्रसंगमें शायद ही रहे। परंतु यहाँ तो कुँवर उसके दोषका तो विचार ही नहीं करता, अपितु उसके गुणोंको ही याद किया करता है। ऐसे अनंत दोषोंसे भरपूर पापी धवलसेठके भी गुणोंको ही याद करता है यह

www.jaintatvagyanshala.org

कुँवरकी कैसी अद्भुत गुणानुरागिता ! सच ही कहा है—'लक्ष्यदोषं परित्यज्य गुणम् गृह्णन्ति सज्जनाः ।' इस उक्तिको कुँवर बराबर सत्य साबित करता है ।

माल पांचसें वहाणनो रे, सवि संभाळी लीध रे,
चतुर नर, लखमीनुं लेखुं नहि हो लाल,
मित्र त्रण जे शेठना रे, ते अधिकारी कीध रे,
चतुर नर, गुणनिधि उत्तम पद लहे हो लाल. ३१

अर्थ—फिर धवलसेठके जो पाँचसौ जहाज किराना आदि मालसे भरे हुए थे उन सबको भी श्रीपालने सम्हाल लिया। उन जहाजोंमें लक्ष्मीका तो हिसाब भी नहीं है अर्थात् इतनी अधिक लक्ष्मी है। फिर सेठके जो तीन मित्र थे उन्हें उन जहाजोंका अधिकारी बनाया। सचमुच ! जो गुणवान होते हैं वे ही उत्तम पदको प्राप्त होते हैं ॥३१॥

इन्द्रतणां सुख भोगवे रे, तिहां कुंवर श्रीपाल रे,
चतुर नर, मयणा त्रणे परिवर्यो हो लाल,
त्रीजे खंडे इम कही रे, विनये चोथी ढाळ रे,
चतुर नर, सिद्धचक्र महिमा फळ्यो हो लाल. ३२

अर्थ—अब श्रीपालकुँवर तीनों स्त्रियोंके साथ इंद्रकी तरह सुखका अनुभव करने लगे। इस प्रकार तीसरे खण्डकी यह चौथी ढाल श्री विनयविजयजी महाराजने कही। इसमें श्री सिद्धचक्रजीकी महिमा श्रीपाल राजाको फलित हुई यह बताया है ॥३२॥

तृतीय खंडकी चौथी ढाल समाप्त

दोहा छंद

एक दिन रयवाडी चड्यो, रमवाने श्रीपाल,
साथ बहु तिहां उतर्यो, दीठो ऋद्धि विशाल. १

अर्थ—अब एक दिन श्रीपालकुँवर खेलनेके लिये राजवाटिकाको निकल पड़ा। वहाँ नगरके बाहर बहुत ऋद्धिके साथ एक सार्थ आया हुआ था उसे श्रीपालने देखा ॥१॥

सार्थवाह लई भेटणुं, आव्यो कुंवर पाय,
तव तेहने पूछे इश्युं, कुंवर करी सुपसाय. २

अर्थ—उस सार्थका नायक सार्थवाह योग्य भेट लेकर कुँवरके पास आया, तब कुँवरने कृपानजर रखते हुए सार्थवाहसे यों पूछा— ॥२॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कवण देशथी आविया, किहां जावा तुम्ह भाव,
सार्थवाह तव विनवे, कर जोडी सद्‌भाव. ३

अर्थ—हे सार्थपति! आप किस नगरसे आये हैं? और अब किधर जानेकी आपकी इच्छा है? यह सुनकर सार्थवाह सद्‌भावपूर्वक हाथ जोड़कर बोला—॥३॥

आव्या कांतिनयरथी, कंबुदीव उद्देश;
कुंवर कहे कोईक कहो, अचरिज दीठ विशेष. ४

अर्थ—हम कांतिनगरसे आ रहे हैं और हमारा कंबुद्वीपकी ओर जानेका इरादा है। इस प्रकार सार्थवाहका कथन सुनकर कुँवरने फिर पूछा—आपने यात्रामें कोई विशेष आश्चर्य देखा है? ॥४॥

तेह कहे अचरिज सुणो, नयर एक अभिराम,
कोश इहांथी चारसो, कुंडलपुर तस नाम. ५

अर्थ—तब सार्थवाहने कहा—हे महाराज! हमने एक आश्चर्य देखा है सो आप सुनिये। यहाँसे चारसौ कोस दूर एक कुंडलपुर नामक नगर है ॥५॥

मकरकेतु राजा तिहां, कपूरतिलका कंत,
दोय पुत्र उपर हुई, सुता तास गुणवंत. ६

अर्थ—उस नगरमें मकरकेतु नामक राजा है, उसे कपूरतिलका नामक रानी है, उन्हें दो पुत्रों पर एक गुणवान पुत्री हुई है ॥६॥

नामे ते गुणसुंदरी, रूपे रंभ समान,
जगमां जस उपमा नहि, चोसठ कला निधान. ७

अर्थ—उस पुत्रीका गुणसुंदरी ऐसा अन्वर्थ (सार्थक) नाम है। वह रूपमें अप्सरा जैसी है। इतना ही नहीं, किन्तु गुण और रूपमें उसे जगतमें किसीकी उपमा नहीं दी जा सकती अर्थात् निरुपम है। साथ ही वह चौसठ कलाओंका खजाना है ॥७॥

विस्तारार्थ—स्त्रियोंकी चौसठ कलाओंके नाम इस प्रकार है—(१) नृत्य (२) औचित्य (३) चित्रक (४) वाद (५) मंत्र (६) तंत्र (७) ज्ञान (८) विज्ञान (९) दंभ (१०) जलस्तंभ (११) गीतनाद (१२) तालमान् (१३) मेघवृष्टि (१४) फलाकृष्टि (१५) आरामारोपण (१६) आकार गोपन (१७) धर्मविचार (१८) शकुन (१९) क्रियाकल्प (२०) संस्कृतजल्प (२१) प्रासादनीति (२२) धर्मनीति (२३) वर्णिकावृद्धि (२४) सुवर्णसिद्धि (२५)

www.jaintatvagyanshala.org

सुरभितैलकरण (२६) लीला संचरण (२७) गजतुरंग परीक्षण (२८) पुरुष-लक्षण स्त्रीलक्षण सामुद्रिक (२९) सुवर्णरत्नभेद (३०) अष्टादश लिपिपरिच्छेद (३१) तत्काल बुद्धि (३२) वाससिद्धि (३३) वैद्यक (३४) कामविक्रिया (३५) घटभ्रम (३६) सारिपरिश्रम (३७) अंजन (३८) चूर्णयोग (३९) हस्तलाघव (४०) वचनपाटव (४१) भोज्यविधि (४२) वाणिज्यविधि (४३) मुखमंडन (४४) शालिखंडन (४५) कथाकथन (४६) पुष्पगूंथन (४७) वक्रोक्ति (४८) काव्यशक्ति (४९) स्फारवेश (५०) सकलभाषा विशेष (५१) अभिधान ज्ञान (५२) आभरण परिधान (५३) भृत्योपचार (५४) गृहाचार (५५) काव्यकरण (५६) परनिराकरण (५७) रंधन (५८) केशबंधन (५९) वीणानाद (६०) वितंडावाद (६१) अंकविचार (६२) लोक व्यवहार (६३) अंत्याक्षरिका (६४) प्रश्नप्रहेलिका।

इन चौसठ कलाओंके नाम अन्यत्र प्रकारान्तरसे भी मिलते हैं। इन चौसठ कलाओंको गुणसुंदरी राजकन्या जानती है।

राग रागिणी रूप स्वर, ताल तंत वितान;
वीणा तस ब्रह्मा सुणे, थिर करी आठे कान. ८

अर्थ—वह गुणसुंदरी कन्या (१) राग (२) रागिनी (३) रूप (४) स्वर (५) ताल (६) तंतुवितान इन गुणोंकी ज्ञाता है। वह वीणा बजानेमें इतनी कुशल है कि उसकी वीणाको चार मुँहवाला ब्रह्मा भी आठों कान स्थिर करके सुनता है (तो सामान्य मानवीकी तो बात ही क्या? ॥८॥

विस्तारार्थ—शास्त्रोंमें वीणा संबंधी बहुत वर्णन किया गया है, उसमेंसे राग-रागिनी आदिके भेद तथा उनका किंचित् स्वरूप इस प्रकार है—

१. छः प्रकारके राग—(१) श्री राग (२) वसंत राग (३) पंचम राग (४) भैरव राग (५) मेघ राग और (६) नटनारायण राग

२. एक-एक रागकी छः छः रागिनियाँ (स्त्रियाँ) है सो इस प्रकार—

(१) श्री रागकी—म्हारवा या मालवी, त्रिवेणी, किदारा, गौरी, मधुमाधवी, बहारी।

(२) वसंत रागकी—देशी, देवगिरि, बैराटी, बद्रिका, ललिता, हिंडोली।

(३) पंचम रागकी—बिभास, भूपाली, करनाटी, बडहंस, मालश्री अथवा वाघेश्वरी, पटमंजरी।

(४) भैरवी रागकी—भैरवी, गुर्जरी, रेवा, गुनकली, बंगाली, भली अथवा हेली।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

(५) मेघ रागकी–मल्हार, सोरठी, आशावरी अथवा सामेरी, मालकोश, गंधार, रसशृंगार अथवा हरशृंगार।

(६) नटनारायण रागकी–कामोदी, कल्याणी, आहिरी, नायकी, सारंग और हमीरनाट।

इस प्रकार छः रागकी ये ३६ रागिनियाँ हैं। फिर एक-एक रागके आठ-आठ पुत्र हैं जो सब मिलाकर अड़तालीस होते हैं, अर्थात् ६ राग, ३६ रागिनी और ४८ पुत्र मिलकर कुल ९० भेद हुए।

फिर एक-एक रागकी और रागिनीकी चाल, ये किसीकी दो, किसीकी तीन, किसीकी चार, किसीकी पाँच, किसीकी छः और किसीकी सात होती हैं। ये सब भी इसीके भेद गिने जाते हैं। फिर अनेक प्रकारसे इसके और भी कई भेद हैं, क्योंकि चक्रवर्ती खुद सर्व प्रथम मूल छः रागोंकी प्ररूपणा करता है और उसके ६४००० स्त्रियाँ हैं जो प्रत्येक स्त्री नई नई देशी (राग) से अपने पति (चक्रवर्ती) की स्तवना करती है। इस प्रकार ६४००० देशी (राग) सब अलग अलग रीतिसे गायी जानेसे सब मिलाकर रागके ६४००० भेद होते हैं।

फिर वासुदेवकी ३२००० स्त्रियाँ हैं वहाँ ३२००० देशियाँ (रागें) गायी जाती हैं। ये ३२००० देशियाँ आज भी विद्यमान हैं क्योंकि अंतिम नौवें कृष्ण वासुदेव हुए हैं, उनके समयमें ३२००० देशियाँ गायी जाती थी। उसके बाद कोई चक्रवर्ती हुआ नहीं, इसलिये ३२००० देशियाँ ही चालू रही है। इस प्रकार रागोंके अनेक भेद हैं।

३. राग-रागिनीके रूप–जिस जिस रागका जैसा जैसा आकार है, उसी तरह रागमालाका चित्रांकन किया जाता है। उन सब शास्त्रोक्त स्वरूपको गुणसुंदरी जानती है, और उनके आकार चित्रित कर दिखाती है तथा उनके पूर्वाङ्कित आकारोंको पहचानती है।

४. स्वरके सात प्रकार–(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गांधार (४) मध्यम (५) पंचम (६) धैवत (७) निषध अथवा (१) सा (२) री (३) ग (४) म (५) प (६) ध (७) नी ये सात भेद होते हैं।

५. तालके सात प्रकार–(१) धूओ (२) माठो (३) पडुमनो (४) रूपको (५) जत्ति (६) पडतालो (७) एकतालो अर्थात् एकताल, द्विताल त्रिताल इत्यादि। इस प्रकार तालके सात भेद जानें।

www.jaintatvagyanshala.org

६. तंतुवितान—तंतुको चढ़ाना, उतारना, अर्थात् इसे तंतुका आकुंचन और प्रसारण कहते हैं। तथा कोई वीणा चार तंतुवाली होती है, कोई वीणा छः तंतुवाली होती है, कोई वीणा सात तंतुवाली होती है—यह सारा ज्ञान तंतुवितान कहलाता है।

इस प्रकार वीणा संबंधी अनेक बातें हैं। इन सबका विशेष विस्तार रागसंबंधी ग्रंथोंसे जानना चाहिये।

शास्त्र सुभाषित काव्य रस, वीणा-नाद विनोद;
चतुर मळे जो चतुरने, तो उपजे परमोद. ९

अर्थ—फिर वह गुणसुंदरी कन्या समस्त शास्त्र, सुभाषित (प्रस्ताविक श्लोक), काव्य (हरिणी आदि), नौ प्रकारके रस, वीणाका नाद और सात प्रकारकी वीणाके विनोदको जाननेवाली है। (इस प्रकार कहकर सार्थवाहने फिर कहा कि) हे कुँवर! वह कन्या अत्यंत चतुर और विचक्षण है, अतः यदि वह चतुर कुँवरी किसी चतुर पुरुषको मिल जाये तो बहुत आनंदकी बात होगी ॥९॥

विस्तारार्थ—यहाँ शास्त्र आदिका किंचित् विशेष स्वरूप बताते हैं—

शास्त्र—शास्त्र अनेक प्रकारके होते हैं जो इस प्रकार है—धर्मशास्त्र, विज्ञानशास्त्र, आगमशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, निमित्तशास्त्र। शास्त्रके चार योगोंके नाम (१) धर्मकथानुयोग (२) चरणकरणानुयोग (३) गणितानुयोग (४) द्रव्यानुयोग। ये सब शास्त्र कहलाते हैं।

सुभाषित—जिसमें प्रस्तावोचित सुंदर वचन हों ऐसे प्रस्ताविक श्लोक जैसे चाणाक्यनीति इत्यादि तथा उनके भेद एवं गाथाओंके भेद, छंदकी जाति, सवैया, कवित्त, कुंडलिया, दोहा, गाहा, हेली, प्रहेली इत्यादि सर्व सुभाषित जानने चाहिये।

काव्य—हरिणी आदिसे लेकर महादंडक पर्यंत नये-नये छंदोंकी जातियाँ अनेक हैं। उसमें प्रथम ग्यारह अक्षरके पदको काव्यकी पहली जाति जानना चाहिये।

रस—रस नौ प्रकारके हैं—(१) शृंगाररस (२) हास्यरस (३) करुणरस (४) रौद्ररस (५) वीररस (६) भयानक रस (७) बीभत्स रस (८) अद्भुत रस (९) शांत रस। ये नौ रस कहलाते हैं। दूसरे प्रकारसे तीन प्रकारके रस भी कहे जाते हैं—(१) स्थायी रस (२) सात्त्विक रस और (३) संचारी रस। ये राग, अनुराग, अनुरति इन तीनसे युक्त होते हैं।

वीणानाद–वीणाका शब्द (आवाज) और उपलक्षणसे अलग अलग जातिके वाद्योंके शब्द लोकभाषामें तीन प्रकारके कहे जाते हैं–(१) घा (चोट) (२) वा (हवा) (३) घसरको (रगड़)। दूसरी अपेक्षासे इसके चार भेद हैं–(१) घन अर्थात् ताल आदि, (२) सुषिर अर्थात् वंश आदि, (३) आनद्ध अर्थात् मुरज (ढोल) आदि (४) तंत अर्थात् वीणा आदि।

अब पहलेके तीन भेदोंका अर्थ कहते हैं–(१) घा (चोट)–ढोल, पटह, मृदंग, पखावज, ताल, कंसाल, करताल आदि जानने चाहिये (२) वा (हवा)–शंख, शहनाई, भेरी, नफेरी, भुंगल, करणाट आदि जानने चाहिये। (३) घसरको (रगड़)–सारंगी आदि जाने। इत्यादि सर्व वाद्य इन तीन भेदोंमें आ जाते हैं।

वीणा–इसके सात प्रकार हैं–(१) वीणा (२) घोषवती (३) विपंची (४) कंठकूणिका (५) वल्लकी (६) तंत्री (७) परिवादिनी। इन वीणाके स्वामी भी अलग अलग होते हैं जैसे शिवकी वीणाका नाम नालंबी, सरस्वतीकी वीणाका नाम कच्छपी, नारदकी वीणाका नाम महती, सबको सम्मत वीणाका नाम प्रभावती, ब्रह्माकी वीणाका नाम बृहती, तुंबरुकी वीणाका नाम कलावती, चांडालकी वीणाका नाम कंटोली होता है। इस प्रकार वीणाके भेद जानें।

डहेरो गाय तणे गळे, खटके जेम कुकट्ठ;
मूरख सरसी गोठडी, पग पग हियडे हट्ठ. १०

अर्थ–जैसे मरखन्नी गायके गलेमें बाँधा हुआ लकड़ीका डंडा चलते चलते पैरोंमें टकरा-टकराकर दुःख देता है, वैसे ही मूर्ख मनुष्यका समागम, सहवास या मित्रता कदम-कदम पर मूर्ख हठवाद करनेसे हृदयको दुःखकारक होता है॥१०॥

जो रूठो गुणवंतने, तो देजे दुख पोठि;
दैव न देजे एक तुं, साथ गमारां गोठि. ११

अर्थ–वह चतुर राजकुँवरी कहती है कि हे दैव! यदि तू क्वचित् गुणवान पर नाराज हो जाय तो उसे बोरे भर भरकर दुःख देना, परंतु मूर्खके सहवासरूप दुःख मत देना॥११॥

रसियाशुं वासो नहीं, ते रसिया एक ताल;
झूरीने झांखर थई, जिम विछडी तरुडाळ. १२

अर्थ—रसिक व्यक्तिका रसिक व्यक्तिसे सहवास न हो तो एक हाथसे ताली देने जैसा होता है। दोनों एक सरीखे हों तभी मेल बैठता है, नहीं तो पेड़से जुदा हुई डाल जैसे सूखसूखकर झाँखर हो जाती है वैसे ही मूर्खके समागमसे चतुर मनुष्य झूरझूरकर मर जाता है ॥१२॥

उक्ति युक्ति जाणे नहीं, सूझे नहि जस सोज;
इत उत जोवे जंगली, जाणे आव्युं रोझ. १३

अर्थ—(सारांश यही कि–) मूर्ख मनुष्य उक्ति (कहावत) और युक्ति (कला) कुछ भी नहीं जानता, उसमें कुछ भी काम करनेकी चतुरता या सूझ नहीं होती और इधर-उधर जंगलीकी तरह देखा करता है, वह मानो जंगलसे पकड़कर लाई हुई नीलगाय (एक जंगली पशु) न हो वैसा गँवार होता है ॥१३॥

रोझतणुं मन रीझवी, न शके कोई सुजाण;
नदीमांहि निशदिन वसे, पलळे नहि पाषाण. १४

अर्थ—नीलगाय जैसे मूर्ख मनुष्यका मन कोई चतुर मनुष्य भी प्रसन्न नहीं कर सकता, जैसे मगसेल पत्थर रात-दिन पानीमें पड़ा रहे तो भी नहीं भीगता ॥१४॥

मरम न जाणे मांहिलो, चित्त नहीं इक ठोर;
जिहां तिहां माथुं घालतो, फिरे हरायुं ढोर. १५

अर्थ—मूर्ख मनुष्य किसी भी बातका रहस्य नहीं समझ सकता, क्योंकि उसका चित्त जहाँ-तहाँ भटकता रहता है, किसी एक जगह स्थिर नहीं होता, इसलिये हरहट पशुकी तरह जहाँ-तहाँ मुँह डालता हुआ भटकता रहता है ॥१५॥

वळी चतुरशुं बोलतां, बोली इक दो वार;
ते सहेली संसारमां, अवर अकज अवतार. १६

अर्थ—(फिर वह राजकुँवरी सहेलियोंको उद्दिष्ट कर कहने लगी कि–) हे सखियों! चतुर मनुष्यको चतुर मनुष्यके साथ एक दो बार बोलनेके बाद फिर बोलनेका मन होता है। ऐसे चतुर मनुष्यका समागम हो तो संसार आनंदमय जानना चाहिये और इससे विपरीत हो तो जन्म व्यर्थ जानना चाहिये ॥१६॥

रसियाने रसिया मिले, केळवतां गुणगोठ;
हिये न माये रीझ रस, कहेणी नावे होठ. १७

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–फिर रसिक व्यक्तिको रसिक व्यक्तिका समागम हो तो उसके साथ गुणगोष्ठी करते जो आनंदरस प्राप्त होता है वह आनंद हृदयमें नहीं समाता तथा उस आनंदरसका कथन होठों पर भी नहीं आ सकता, अर्थात् उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥१७॥

परख्या पाखे परणतां, भुच्छ मिले भरतार;
जाय जन्मारो झूरतां, किश्युं करे किरतार. १८

अर्थ–इसीलिये, यदि परीक्षा किये बिना शादी की जाय और क्वचित् बुद्धू (मूर्ख) पति मिल जाय तो सारा जन्म झूरते झूरते पूरा होगा, इसमें भगवान भी क्या करेगा? अर्थात् जान-बूझकर दीयाँ लेकर कूँएमें गिरे तो भगवानका क्या दोष? ॥१८॥

तिण कारण ते कुंवरी, करे प्रतिज्ञा सार,
वीणावादे जीतशे, जे मुज ते भरतार. १९

अर्थ–(सार्थवाह बातको समाप्त करते हुए कहता है कि–) हे कुँवर! गुणसुंदरीकी ऐसी मान्यता होनेसे उसने एक श्रेष्ठ प्रतिज्ञा की हैं कि जो मुझे वीणाके *वादमें जीतेगा वही मेरा स्वामी होगा। इस प्रकार सार्थवाहने कुँवरसे कहा। (और आगे नगरीमें क्या हालात है उसके बारेमें वर्णन करता है।)

ढाल पाँचवीं

(थाहरा महेलां उपर मेह, झरूखे वीजळी–ए देशी)

तेह प्रतिज्ञा वात, नयरमां घर घरे हो लाल, नयरमां॰
पसरी लोक अनेक, बनावे परे परे हो लाल, बनावे॰
राजकुमार असंख्य ते, शीखण सज्ज थया हो लाल, शीखण॰
लेई वीणा साज ते, गुरु पासे गया हो लाल, गुरु॰ १

अर्थ–कुँवरीकी इस प्रतिज्ञाकी बात सारे नगरमें घर घरमें फैल गयी है। इससे लोग अनेक प्रकारसे वीणावादनके हवाई किल्ले बना रहे हैं। अनेक राजकुमार वीणा सीखनेके लिये तैयार हुए हैं और वीणा संबंधी साधन लेकर गुरुके पास वीणा सीखने गये हैं ॥१॥

त्रण ग्राम स्वर सात, के एकवीश मूर्च्छना हो लाल, के॰
तान ओगणपच्चाश, घणी विध घोलना हो लाल, घणी॰

* वाद शब्दके दो अर्थ है–(१) बजाना (२) वाद-विवाद, शास्त्रार्थ। यहाँ दोनों अर्थ लागू होते हैं–वीणाको बजानेमें और वीणा संबंधी विशिष्ट ज्ञान-चर्चामें जीतेगा वही कुँवरीका स्वामी होगा।

www.jaintatvagyanshala.org

विद्याचारज एक, सधावे शीखवे हो लाल, सधावे०
करे अभ्यास जुवान, ते उद्यम नवनवे, हो लाल, ते० २

अर्थ—वहाँ एक वीणा-वादनकी विद्याका ज्ञाता विद्याचार्य वीणाकी विद्याको सिद्ध करा रहा है और सिखा रहा है कि वीणामें आदि, मध्य और अंत ये तीन ग्राम हैं। सा-री-ग-म-प-ध-नी ये सात स्वर है, और इक्कीस मूर्च्छनाएँ हैं। और उनपचास (४९) तान इस प्रकार इसमें कई विशेषताएँ रही हुई है। इस प्रकार शिक्षा देनेसे युवान पुरुष नये नये उमंगपूर्वक अभ्यास कर रहे हैं ॥२॥

शास्त्रसंगीत विचक्षण, देश विदेशना हो लाल के देश०
करे सभामांहे वाद, ते नाद विशेषना हो लाल ते०
मास मास प्रति होय, तिहां गुण पारीखां हो लाल, तिहां०
सुणतां कुमरी वीण, सवे पशु सारीखां हो लाल, सवे० ३

अर्थ—इस प्रकार संगीतशास्त्रके जानकार देश-विदेशके विचक्षण पुरुष वहाँ आकर वीणाके नाद संबंधी वाद-विवाद कर रहे हैं और हर माह उनकी वीणा संबंधी ज्ञानकी परीक्षा ली जा रही है। मगर जब कुँवरीकी वीणा सुनते है तब अन्य सब वीणा बजानेवाले एकदम पशु जैसे लगते हैं ॥३॥

चहुटामांहे वीण, बजावे वाणिया हो लाल, बजावे०
न करे कोई व्यापार, ते होंशी प्राणिया हो लाल, ते०
इणि परे वरण अढार, घरोघर आंगणे हो लाल, घरो०
सघळे मेडी माळे, के वीणा रणझणे हो लाल, के वीणा० ४

अर्थ—उस नगरमें केवल राजकुमार ही वीणा सीखते हैं ऐसा नहीं किन्तु सर्व व्यापारी लोग भी बाजारमें वीणा बजा रहे हैं और राजकुमारीसे शादी करनेकी इच्छासे उन्होंने व्यापार करना भी छोड़ दिया हैं। ऐसा होनेसे अढ़ारों वर्णके लोगोंके घरघरके आंगनमें, मंजिल पर और सर्वत्र वीणा ही झनझना रही हैं ॥४॥

गायो चारे गोवाळ, ते वीणा बजावता हो लाल, ते०
राजकुंवरी विवाह, मनोरथ भावता हो लाल, मनो०
सूनां मूकी क्षेत्र, मिले बहु करसणी हो लाल, मिले०
शीखे वीण बजावण, होंश हिये घणी हो लाल, के होंश० ५

अर्थ—जंगलमें गायोंको चरानेवाले गोवाल भी राजकुँवरीको ब्याहनेके

मनोरथ पूर्ण करनेके लिये वीणा बजा रहे हैं, तथा किसान भी हृदयमें राजकुँवरीको ब्याहनेकी अत्यंत तीव्र इच्छासे अपने खेतोंको सूना छोड़कर इकट्ठे होकर वीणा बजा रहे हैं ॥५॥

सारांश—इस परसे यह समझना है कि—जैसे राजकुँवरीको ब्याहनेकी इच्छासे व्यापारी लोग व्यापार भी छोड़ देते हैं, किसान खेतको भी भूल जाते हैं और अन्य लोग भी अपना अपना धंधा छोड़कर वीणा सीखनेमें मशगुल हो गये हैं, वैसे ही मनुष्यको किसी चीजका लोभ लगा हो या प्रेम जागृत हुआ हो तो उस वस्तुकी प्राप्तिके लिये कैसा तीव्र पुरुषार्थ होता है ? उसमें कोई प्रेरणा या किसीके उपदेशकी अपेक्षा भी नहीं रहती। इसी तरह यदि आत्माको ज्ञान-क्रियाकी वास्तविक रुचि हो जाय तो उसके पीछे आत्मा लयलीन हो जाता है! फिर ऐसी शिकायत भी नहीं रहती कि सामायिक-प्रतिक्रमणमें हमारा मन स्थिर नहीं रहता या याद नहीं रहता, तो क्या करे और क्या पढ़े ? किन्तु वास्तवमें उसकी किंमत जीवकी समझमें नहीं आई है इसलिये उसके पीछे वास्तविक पुरुषार्थ नहीं होता।

तेह नयरमांहि एहवुं, कौतुक थई रह्युं हो लाल, के कौ०
दीठे बने ते वात, न जाये पण कह्युं हो लाल, न जाये०
सुणी कुंअर ते वात, हिये रीझ्यो घणुं हो लाल, हिये०
सारथवाहने सार, के दिये वधामणुं हो लाल, के दिये० ६

अर्थ—इस प्रकार उस नगरमें जो कौतुक हो रहा है उसका सही अंदाज तो नजरसे देखनेसे ही आता है, परंतु कहनेसे उसका अंत नहीं आता। इस प्रकार सार्थवाहका कथन सुनकर कुँवर हृदयमें अत्यंत हर्षित हुआ और सार्थवाहको अच्छा उपहार दिया ॥६॥

सारांश—जैसे कौतुकप्रिय कुँवर सार्थवाहकी बात सुनकर खुश-खुशाल हो जाता है और इस आनंदके फलस्वरूप सार्थवाहको उत्तम उपहार भी देता है। इस परसे यही सार लेना है कि मनुष्यको अपनी मनपसंद और प्रिय बात सुनकर कितना और कैसा आनंद होता है ? और उसके लिये मनुष्य कितना त्याग करता है ? आज हम कहते भी हैं कि धर्म हमें बहुत ही प्रिय है, परंतु वास्तवमें सोचने जैसा है कि प्रिय लगनेवाले धर्मके पीछे हम तन-मन-धनसे कितना और कैसा त्याग करते हैं ? क्योंकि जहाँ प्रेम है वहाँ सर्वस्व देनेकी तैयारी होती है। हम वर्षोंसे धर्म कर रहे हैं, परंतु धर्मके लिये तन और धनसे कितना त्याग किया ? इस परसे, हममें धर्मप्रेम कितना परिणत हुआ है ? उसका नाप निकलता है। यह एक धर्मप्रेमनापक यंत्र है।

www.jaintatvagyanshala.org

आव्यो निज आवास, कुंवर मन चिंतवे हो लाल, कुंवर०
नयर रह्युं ते दूर, तो किम जास्युं हवे हो लाल, तो०
देत विधाता पांख, तो माणस रूअडां हो लाल, तो०
फरी फरी कौतुक जोत, जुवे जिम सूअडां हो लाल, जुवे० ७

अर्थ—तत्पश्चात् श्रीपालकुँवर अपने घर आया और सोचने लगा—वह नगर तो यहाँसे बहुत दूर है, तो वहाँ मैं कैसे जाऊँ? यदि विधाताने मनुष्यको पंख दिये होते तो मनुष्य अच्छे सुख-साधन प्राप्त कर सकता और पोपटकी तरह देश-विदेशमें घूमघूमकर कौतुक देख सकता ।।७।।

सिद्धचक्र मुज एह, मनोरथ पूरशे हो लाल मनो०
एहि ज मुज आधार, विघन सवि चूरशे हो लाल, विघन०
थिर करी मन वच काय, रह्यो इक ध्यानशुं हो लाल, रह्यो०
तन्मय तत्पर चित्त, थयुं तस ग्यानशुं हो लाल, थयुं० ८

अर्थ—परंतु मेरा यह मनोरथ तो सिद्धचक्र महाराज पूर्ण करेंगे और वही मुझे आधाररूप होनेसे मेरे सारे विघ्न दूर करेगा। यों सोचकर मन, वचन और कायाको स्थिरकर एकमात्र श्री सिद्धचक्रजीके ध्यानमें लीन हो गया और उस सिद्धचक्रजीके ज्ञानसे उसका चित्त तदाकार हो गया।

सारांश—श्रीपालकुँवर सोचता है कि सिद्धचक्रजी महाराज मेरे मनोरथ पूर्ण करेंगे। यह सुनकर कई लोगोंको ऐसा होता है कि हम तो बरसोंसे सिद्धचक्रजीकी आराधना कर रहे हैं तो श्रीपालकी तरह हमारे मनोरथ क्यों सफल नहीं होते? उसका जवाब यही है कि श्रीपालकी तरह हमारी श्रद्धा और एकाग्रता-स्थिरता टिकती ही नहीं है।

श्रीपाल महाराजाकी अद्‌भुत और अपूर्व श्रद्धाका यह रहा सर्वोत्तम उदाहरण! जब यकायक श्रीपालकुँवर समुद्रमें गिर जाते हैं तब भी 'हा! यह क्या हो गया?' आदि कुछ भी विकल्प न करते हुए गिरनेके साथ ही नवपदजी महाराजका ध्यान करने लगते हैं। ऐसी विषम विपत्तिमें भी अन्य कुछ भी याद न करके केवल नवपदजी महाराजका स्मरण करते हैं। कैसी हृदयमें बसी होगी नवपदजी महाराजकी श्रद्धा! सोचिये, उनकी श्रद्धा कितनी प्रबल और हमारी श्रद्धा कितनी निर्बल? अब हमारी इच्छाएँ फलीभूत न हो तो इसमें आश्चर्य कैसा? छोटीसे छोटी क्रियामें भी हमारी स्थिरता टिकती नहीं है तो फिर उस क्रियामें रस कहाँसे आयेगा? और उसका फल कहाँसे दिखायी देगा? जैसा चलायमान-संक्षुब्ध घँघोले हुए पानीके नीचे चाहे जितने

रत्न पड़े हो तो भी देखे नहीं जा सकते, जब वह पानी स्थिर होता है तभी वे दिखायी देते हैं; वैसे ही यह आत्मा विपुल वैभवका भंडार होने पर भी चित्तकी चंचलताके कारण स्थिर नहीं हो सकता, इसलिये देखा नहीं जा सकता। प्रथम तो स्थिरता लानेके लिये अभ्यास करना चाहिये, तभी क्रियामें रस आयेगा। जैसे दीर्घकालका मरीज चार दिन दवाई लेकर दावा करे कि इस दवाईमें रोगको दूर करनेकी कोई ताकत नहीं है, तो उसकी यह बात सच्ची है ? बिलकुल नहीं। क्योंकि रोग बहुत लंबे समयका अर्थात् पुराना है, तो दवाई भी लंबे समय तक लेनी ही पड़ेगी। उसी तरह हमारा अस्थिरताका–चित्तका यहाँ-वहाँ भटकनेका–रोग आजकलका नहीं है, अनादिकालसे है; इसलिये अपने सामान्य प्रयत्नसे क्रियाओंमें चित्त स्थिर न होगा, इसके लिये तो भगीरथ पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

ततखिण सोहमवासी, देव ते आवियो हो लाल, के देव०
विमलेसर मणिहार, मनोहर लावियो हो लाल, मनो०
थई घणो सुप्रसन्न, कुंवर कंठे ठवे हो लाल, कुंवर०
तेह तणो कर जोडी, महिमा वरणवे हो लाल, के महिमा० ९

अर्थ–उस ध्यानके प्रभावसे सौधर्म देवलोकका निवासी विमलेश्वर देव मनोहर मणियोंका हार लेकर वहाँ आया और अत्यंत प्रसन्न होकर वह हार श्रीपालकुँवरके गलेमें पहनाया। फिर हाथ जोड़कर उस हारका माहात्म्य वर्णन करने लगा–॥९॥

जेहवुं वंछे रूप, ते थाय ते ततखिणे हो लाल, ते थाय०
ततखिण वांछित ठाम, जाये गयणांगणे हो लाल, जाये०
आवे विण अभ्यास, कळा जे चित धरे हो लाल, कळा०
विषना विषम विकार, ते सघळां संहरे हो लाल, ते सघळां० १०

अर्थ–इस हारके प्रभावसे जैसा रूप करनेकी इच्छा हो वैसा रूप तत्क्षण बनाया जा सकता है और इच्छित स्थानको उसी क्षण आकाशमार्गसे जा सकते हैं। इसके अलावा, मनमें कोई कला सीखनेकी भावना हो तो बिना अभ्यासके वह कला आ जाती है। और भयंकर विषके विकार भी इस हारके स्नात्रजलसे नष्ट हो जाते हैं॥१०॥

सिद्धचक्रनो सेवक, हुं छुं देवता हो लाल, के हुं छुं०
केई उद्धरिया धीर, में एहने सेवता हो लाल, में०

सिद्धचक्रनी भक्ति, घणी मन धारजो हो लाल, घणी०
मुजने कोईक काम, पडे संभारजो हो लाल, पडे० ११

अर्थ–मैं श्री सिद्धचक्रजीका सेवक देवता हूँ। मैंने सिद्धचक्रजीके कई सेवकोंका दुःख दूर किया है। इसलिये आपसे भी कहता हूँ कि आप भी इसी सिद्धचक्रजीकी अत्यंत भक्ति मनमें धारण कीजियेगा और कोई भी काम हो तो मुझे याद कीजियेगा (जिससे मैं उपस्थित होकर आपका कार्य सिद्ध कर दूँगा) ॥११॥

एम कहीने देव, ते निज थानक गयो हो लाल, ते निज०
कुंवर पोढ्यो सेज, निचिंतो मन थयो हो लाल, निचिंतो०
जाग्यो जिसे परभात, तिसे मन चिंतवे हो लाल, तिसे०
कुंडलनयर मझार, जई बेसुं हवे हो लाल, जई० १२

अर्थ–इस प्रकार कहकर वह देव अपने स्थानको गया, और कुँवर निश्चिंत मनवाला होकर सुखशैय्यामें सो गया। जब प्रभात हुआ और जगा तब मनमें चिंतन किया कि मैं कुंडलपुर नगरमें जाकर बैठ जाऊँ ॥१२॥

नयण उघाडी जाम, विलोके आगळे हो लाल, विलोके०
देखे ऊभो आप, नयरनी भागळे हो लाल, नयर०
दीठा तिहां दरवाण, ते वीण वजावता हो लाल, ते वीण०
राजकुंवरीना रूप, कळा गुण गावता हो लाल, कळा० १३

अर्थ–यों सोचकर क्षणभरमें आँखें खोलकर देखा तो कुंडलपुर नगरके बाहर स्वयंको खड़ा देखा। और वहाँ दरबानको भी वीणा बजाते हुए और राजकुँवरीके रूप, कला और गुणकी प्रशंसा करते हुए देखा ॥१३॥

चित्तमांहि चिंती रूप, करे तिहां कूबडुं हो लाल, करे०
उभड शीश निलाड, वदन जिश्युं तूंबडुं हो लाल, वदन०
चूए चूंची आंख, दांत सवि सोखळा हो लाल, दांत०
वांका लांबा होठ, रहे ते मोकळा हो लाल, रहे० १४

अर्थ–तब कुँवरने मनमें सोचा–"मैं कुब्ज हो जाऊँ।" ऐसा सोचनेके साथ ही वैसा रूप हो गया–मस्तक और ललाट ऊपर उठे हुए, तुमड़े जैसा मुख, पानी बहती चुँधी आखें, सभी दाँत बिखरे हुए, तथा वक्र और लंबे होठ जो एक-दूसरेसे दूर रहते थे ॥१४॥

चिहुं दिशि बेठुं नाक, कान जिम ठीकरां हो लाल, कान०
पूंठ उंची अति खूंध, हिये बहु टेकरा हो लाल, हिये०
कोट केड उर पेट, मिलि गयां टूंकडां हो लाल, मिलि०
टूंकी साथळ जंघ, हाथ पग टूंकडा हो लाल, हाथ० १५

अर्थ—चारों ओरसे पिचका हुआ नाक, ठीकरे जैसे कान, ऊँची और टेढ़ी पीठ, हृदय पर बहुत टीले, गरदन, कमर, छाती और पेट तो मानो नजदीक आकर एक हो गये हो ऐसे, छोटी जाँघ और छोटे छोटे हाथ और पैर ऐसा रूप बनाया ॥१५॥

ठक ठक ठवतो पाय, नयरमांहि नीकळ्यो हो लाल, नयर०
तेह निहाळी लोक, खलक जोवा मिळ्यो हो लाल, खलक०
जिहां शीखे छे वीण-कला तिहां आवियो हो लाल, कला०
आव्या राजकुमार, मली बोलावियो हो लाल, मली० १६

अर्थ—ऐसा वामनका रूप करके ठक-ठक पैर रखता हुआ कुँवर नगरकी ओर चला। ऐसा रूप देखकर लोगोंके झुंड उसे देखनेके लिये इकट्ठे हुए। वह वामन जहाँ आचार्य वीणा-वादनकी कला सिखा रहे थे वहाँ आ पहुँचा, तो वहाँ अन्य राजकुमार जो वीणासीख रहे थे वे सब मिलकर उस वामनको हास्यपूर्वक संबोधन कर कहने लगे—॥१६॥

आवो आवो जुहार, पधारो वामणा हो लाल, पधारो०
दीसो सुंदर रूप, घणुं सोहामणा हो लाल, घणुं०
किहांथी पधार्या राज, कहो कुण कारणे हो लाल, कहो०
केहने देशो मोहत, जई घर बारणे हो लाल, जई० १७

अर्थ—हे वामनजी ! आइये, आइये, आपका स्वागत है। अरे ! आप तो बहुत सुंदर स्वरूपवान और सुशोभित दीख रहे हैं। हे राजन् ! आप कहाँसे पधारे हैं ? और किस प्रयोजनसे यहाँ पधारे हैं ? सो कहिये। और किसके द्वार पर जाकर उसका महत्त्व बढ़ायेंगे ? ॥१७॥

कुब्ज कहे अमे दूर, थकी आव्या अहीं हो लाल, थकी०
हांसु करतां वात, तुमे साची कही हो लाल, तुमे०
वीणा गुरुनी पास, अमे पण साधशुं हो लाल, अमे०
करशे जो जगदीश, तो तुमथी वाधशुं हो लाल, तो तुम० १८

अर्थ—यह सुनकर वामनने जवाब दिया—हम दूर देशसे आये हैं और

आपने हास्यपूर्वक भी जो बात कही है वह सच्ची ही है। हम भी गुरुदेवके पास वीणाकी कलाको सिद्ध करेंगे और जगदीशकी कृपा होगी तो आपसे भी आगे बढ़ जायेंगे ॥१८॥

विद्याचारज पास, जई इम वीनवे हो लाल, जई०
वीणानो अभ्यास, करावो मुज हवे हो लाल, करावो०
खडग अमूलिक एक, कर्युं तस भेटणुं हो लाल, कर्युं०
तव हरख्या गुरु महोत, दिये तस अति घणुं हो लाल, दिये० १९

अर्थ—यों कहकर वह विद्याचार्यके पास जाकर विनती करने लगा—हे गुरुदेव! मुझे वीणाकी कलाका अभ्यास कराइये। यह कहकर उसने एक अमूल्य तलवार भेट दी। उसे देखकर गुरु अत्यंत हर्षित हुए और उसे अत्यंत मानपूर्वक अपने पास बिठाया ॥१९॥

वीणा एक अनुपम, दीधी तस करे हो लाल, के दीधी०
देखाडे स्वर नाद, ठेकाणां आदरे हो लाल, ठेकाणां०
त्रट त्रट तूटे तांत, गमा जाये खसी हो लाल, गमा०
ते देखी विपरीत, सभा सघली हसी हो लाल, सभा० २०

अर्थ—फिर गुरुने एक अच्छीसे अच्छी वीणा उसके हाथमें दी, और स्वर तथा नादके उत्पत्तिस्थान प्रेमपूर्वक दिखाये। तब कुँवरने (राजकुमारोंका मनोरंजन करनेके लिये) इस तरह वीणाकी ताँत (डोरी) चढ़ाई कि ताँतें [1]तट-तट टूटने लगी और गमा (परदे) खिसक गये। ऐसा विपरीत वर्तन देखकर सभी राजकुमार और सारी सभा हँसने लगी ॥२०॥

हवे परीक्षा हेत, सभा महोटी मळी हो लाल, सभा०
चतुर संगीत विचक्षण, बेठा मन रळी हो लाल, के बेठा०
आवी राजकुमारी, कला गुण वरसती हो लाल, कला०
वीणा पुस्तक हाथ, जे परतख सरसती हो लाल, जे० २१

अर्थ—जब महीना पूरा होनेके बाद परीक्षाके लिये बड़ी सभा इकट्ठी हुई, तब वहाँ संगीत विशारद अनेक विद्वान और विचक्षण पुरुष हर्षपूर्वक बैठे थे। तब राजकुँवरी गुणसुंदरी कला और गुणकी वृष्टि करती हुई सभामें आई। उसके एक हाथमें वीणा और दूसरे हाथमें पुस्तक थी, इससे मानो साक्षात् सरस्वती ही न हो! ऐसे वह शोभित हो रही थी ॥२१॥

---

१. 'त्रट त्रट तूटे तांत' यहाँ पर वीणाके साथ श्री विनयविजयजी महाराजकी नाडियाँ भी टूट गयी और उनका स्वर्गगमन हुआ। आगेकी रचना श्री यशोविजयजीने की।

दरवाने दरबार, कुबज जव रोकियो हो लाल, कुबज०
दीधुं भूषण रत्न, पछे नवि टोकियो हो लाल, पछे०
आव्यो कुंवरी पास, इच्छारूपी वडो हो लाल, इच्छा०
कुंवरी देखे सरूप, बीजा सवि कूबडो हो लाल, बीजा० २२

अर्थ—कुब्जको (कुरूप होनेसे) उस सभामें प्रवेश करते हुए द्वारपालने रोका, तब कुब्जने द्वारपालको एक रत्नमय आभूषण दिया, इसलिये फिर उसने कुब्जको जानेसे रोका नहीं। फिर मनचाहा रूप करनेवाला वह श्रेष्ठ कुब्ज (श्रीपालकुँवर) कुँवरीके पास आया, तब राजकुँवरीको कुँवरका मूल रूप दिखायी दे रहा था जबकि अन्य लोग उसे कुब्जके रूपमें देख रहे थे ॥२२॥

सा चिंते मुज एह, प्रतिज्ञा पूरशे हो लाल, प्रतिज्ञा०
सफळ जनम तो मानशुं, केदुर्जन झूरशे हो लाल, के दुर्जन०
जो एहथी नवि भांजशे, मननुं आंतरुं हो लाल, के मननुं०
करी प्रतिज्ञा वयर, वसाव्युं तो खरुं हो लाल, वसाव्युं० २३

अर्थ—कुँवरको देखकर वह राजकुमारी सोचने लगी—यदि यह पुरुष मेरी प्रतिज्ञा पूरी करेगा तो मैं अपना जन्म सफल मानूँगी। और मेरे दुश्मन सारे मनमें झूरते ही रहेंगे। परंतु यदि इस पुरुषसे मेरे मनका अंतर नहीं टूटेगा (अर्थात् इस पुरुषसे मेरा अभेदभाव नहीं होगा—ऐक्यभाव नहीं होगा) तो यही समझूँगी कि यह प्रतिज्ञा करके सचमुच मैंने दुनियासे वैर ही मोल लिया है ॥२३॥

दाखे गुरु आदेशे, निज वीणा कळा हो लाल, के निज०
जाम कुमार कुमार, समा मद आकुळा हो लाल, समा०
ताम कुमारी दाखवे, निज गुण चातुरी हो लाल, निज०
लोके भाख्युं अंतर, ग्राम ने सुरपुरी हो लाल, ग्राम० २४

अर्थ—जब गुरुने आज्ञा दी तब कार्तिककुमार (महादेवके पुत्र) जैसे मदसे मत्त हुए राजकुमार अपनी वीणावादनकी कला बताने लगे। फिर राजकुँवरीने भी अपनी वीणाके गुणकी चतुराई बतायी। यह सुनकर सारे सभासद कहने लगे—गाँव और देवपुरी जैसा भेद कुँवरी और राजकुमारोंकी कलामें है ॥२४॥

कुंवरी कळा आगे हुई, कुंवर तणी कळा हो लाल, कुंवर०
चंद्रकळा रवि आगे, ते छाश ने बाकुळा हो लाल, ते छाश०

लोक प्रशंसा सांभळी, वामन आवियो हो लाल, के वामन०
कहे कुंडलपुरवासी, भलो जन भावियो हो लाल, भलो० २५

अर्थ–राजकुँवरीकी कलाके आगे इन राजकुमारोंकी कला सूर्यके आगे चंद्रकी तरह निस्तेज लग रही है। और छासके आगे साबूत उबाले हुए दलहन जैसी नीरस लग रही है। इस प्रकार लोगोंकी प्रशंसा सुनकर कुब्ज (वामन) वहाँ आगे आया तब लोग उसकी मश्करी करते हुए कहने लगे–यह कुब्ज कुंडलपुर निवासियोंको अच्छा पसंद आया है ॥२५॥

कुंवरी संकीतेण, वीणा दिये तसु करे हो लाल, वीणा०
कहे कुमार अशुद्ध छे, ए वीणा धुरे हो लाल, के ए वीणा०
वीणा सगर्भ ने दाधो, दंड गळे ग्रह्युं हो लाल, के दंड०
तुंबड तेणे अशुद्ध–पणुं में तस कह्युं हो लाल, पणुं० २६

अर्थ–फिर कुँवरीने मानो पहलेसे ही संकेत किया हो (पूर्व निश्चित हो) वैसे वीणा कुँवरके हाथमें दी। तब श्रीपालकुँवरने उसे हाथमें लेते ही कहा–प्रथम तो यह वीणा अशुद्ध है, क्योंकि यह वीणा गर्भसहित है (अर्थात् तुमडेमेंसे गर्भ संपूर्णतया निकला नहीं है।) फिर इसका दण्ड दग्ध (जली हुई लकड़ीमेंसे बनाया हुआ) होनेसे इसका गला पकड़ा हुआ है (इससे इसमेंसे आवाज बराबर नहीं निकलता।) इसीलिये मैंने तुमड़ेकी अशुद्धता कही है ॥२६॥

दाखी दोष समारी, वीण ते आलवे हो लाल, वीण०
हूई ग्रामनी मूर्च्छना, किंपि न को चले हो लाल, के किंपि०
सूता लोकनां लेई, मुकुट मुद्रा मणि हो लाल, मुकुट०
वस्त्राभरण लेई करी, राशि ते अति घणी हो लाल, के राशि० २७

अर्थ–इस प्रकार वीणामें दोष बताकर फिर कुँवरने उस वीणाको शुद्ध कर आलापचारी की, तब ग्रामकी मूर्च्छना (अच्छा आवाज) ऐसी हुई कि उससे सभी मूर्छित हो गये। वे किंचित् मात्र भी चलायमान नहीं होते थे अर्थात् हिलते नहीं थे। तब (मूर्छित लोगोंको देखकर) उन सोये हुए लोगोंके मुकट, मणिरत्न जड़ित मुद्रिकाएँ आदि आभरण तथा वस्त्र एकत्र कर कुँवरने एक बड़ा ढेर किया। (फिर वापिस स्वयं वीणा बजाने बैठ गया।) ॥२७॥

जाग्या लोक अछेरुं, के देखी एहवुं हो लाल के देखी०
पूर्ण प्रतिज्ञा कुमारी, चित्त हरखित थयुं हो लाल, के चित्त०
त्रिभुवनसार कुमार, गळे वरमालिका हो लाल, गळे०
हवे ठवे निज मने, धन्य ते बालिका हो लाल, के धन्य० २८

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–फिर थोड़ी देर बाद जब लोग जागृत हुए तब इस प्रकारका आश्चर्य उनके देखनेमें आया (अर्थात् अपने शरीरपरसे आभूषण आदि गायब थे) और प्रतिज्ञा पूर्ण होनेसे कुँवरीका मन अत्यंत हर्षित हुआ। तत्क्षण कुँवरीने तीन भुवनके साररूप ऐसे कुँवरके कण्ठमें वरमाला आरोपित की और स्वयंको धन्य मानने लगी ॥२८॥

वामन वरियो जाणी, नृपादिक दुःख धरे हो लाल, नृपा०
ताम कुमार स्वभावनुं, रूप ते आदरे हो लाल, के रूप०
शशीरजनी हरगौरी, हरिकमला जिस्यो हो लाल, के हरि०
योग्य मेलावो जाणी, सवि चित्त उल्लस्यो हो लाल, सवि० २९

अर्थ–राजकुँवरीने वामनको जीवनसाथी चुना है यह जानकर राजा-राणी आदि दुःखी हुए। उस समय कुँवरने अपना मूल स्वरूप धारण किया, तब चंद्र और शरद्पूर्णिमाकी रात्रि, महादेव और पार्वती तथा विष्णु और लक्ष्मी परस्पर योग्य मिलन (समागम) होनेसे शोभायमान होते हैं उसी तरह श्रीपालकुँवर और गुणसुंदरीकी योग्य जोड़ी देखकर सब लोगोंके मन आनंदित हुए ॥२९॥

निज बेटी परणावी, राजा भली परे हो लाल, के राजा०
दिये हय गय धण कंचन, पूरे तस घरे हो लाल, के पूरे०
पुण्य विशाल भुजाल, तिहां लीला करे हो लाल, तिहां०
गुणसुंदरीनी साथ, श्रीपाळ ते सुख वरे हो लाल, श्रीपाळ० ३०

अर्थ–फिर राजाने भी अपनी पुत्रीको अच्छी तरह बड़े आडंबरके साथ ब्याही तथा अश्व, हाथी, धन और सुवर्ण आदि देकर कुँवरके आवासको सारी सुख-सामग्रीसे भर दिया। अब पुण्यवान और विशाल भुजावाला श्रीपालकुँवर वहाँ आनंद करने लगा और गुणसुंदरीके साथ संसारसुख भोगने लगा ॥३०॥

त्रीजे खंडे ढाळ, रसाळ ते पांचमी हो लाल, रसाळ०
पूरिये अनुकूळ, सुजन मन संक्रमी हो लाल, सुजन०
सिद्धचक्र गुण गातां, चित्त न कुण तणो हो लाल, के चित्त०
हरखे वरसे अमिय, ते विनय सुजस घणो हो लाल, ते० ३१

अर्थ–इस प्रकार तीसरे खण्डकी यह मनोहर पाँचवीं ढाल (इस रासके कर्त्ता महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज इस ढालकी रचना करते हुए बीचमें स्वर्गवासी हुए इसलिये) महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजने पूर्ण

www.jaintatvagyanshala.org

की, जो सज्जनोंके मनको भायी है। श्री सिद्धचक्रजीके गुण गानेसे किसके चित्तमें अमृतरसकी वृष्टि न होगी? अर्थात् होगी ही, तथा विनय और उत्तम यश भी प्राप्त होगा। ('विनय सुजस' शब्दसे ग्रंथकर्त्ता श्री विनयविजयजी महाराज तथा श्री यशोविजयजी महाराजके नामका सूचन भी है ऐसा समझना चाहिये।) ॥३१॥

तृतीय खंडकी पाँचवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

पुण्यवंत जिहां पग धरे, तिहां आवे सवि ऋद्धि;
तिहां अयोध्या राम जिहां, जिहां साहस तिहां सिद्धि. १

अर्थ—जहाँ राम वहाँ अयोध्यानगरी (अर्थात् जहाँ राम जाते थे वहाँ अयोध्यानगरीके लोग रामके पीछे जाते थे, अतः रामको अयोध्यामें रहनेकी जरूरत न थी) इसी तरह जहाँ उद्यम (साहस) होता है वहाँ कार्यसिद्धि होती है। वैसे ही पुण्यशाली पुरुष जहाँ जहाँ कदम रखता है वहाँ वहाँ उसे सब प्रकारकी ऋद्धि सिद्धि संप्राप्त हो जाती है ॥१॥

पुण्यवंतने लच्छिनो, इच्छा तणो विलंब,
कोकिल चाहे कंठरव, दिये लुंब भर अंब. २

अर्थ—जैसे कोयल मीठे आवाजसे गाना चाहती है कि तुरत ही आम्रवृक्ष मंजरीसे फलित होकर भर जाता है, वैसे ही पुण्यवान प्राणीको लक्ष्मी प्राप्त करनेमें इच्छा करने जितनी ही देर लगती है (अर्थात् इच्छा करनेके साथ ही लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है) ॥२॥

पुण्ये परिणति हुये भली, पुण्ये सुगुण गरिट्ठ,
पुण्ये अलिय विघन टळे, पुण्ये मिले ते इट्ठ. ३

अर्थ—पुण्यके प्रभावसे मनके परिणाम भी अच्छे रहते हैं (अर्थात् अच्छे विचार आते हैं)। पुण्यसे अच्छे गुण और बड़प्पन प्राप्त होता है, पुण्यसे बुरे विघ्न नष्ट हो जाते हैं और पुण्यके प्रभावसे इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥३॥

ढाल छठी

(सुण सुगुण सनेही रे साहिबा—ए देशी)

एक दिन एक परदेशियो, कहे कुंवरने अद्‌भुत ठाम रे;
सुण जोयण त्रणसें उपरे, छे नयर कंचनपुर नाम रे,
जुओ जुओ अचरिज अति भलुं. १

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—एक दिन एक परदेशी पुरुष श्रीपालकुँवरके पास आकर एक अद्‌भुत स्थानकी एक आश्चर्यकारी बात कहने लगा—हे स्वामिन्! यहाँसे तीनसौ योजन दूर कंचनपुर नामक एक नगर है। वहाँ एक अत्यंत मनोहर कौतुक है जो आपके देखने योग्य है ॥१॥

तिहां वज्रसेन छे राजियो, अरिकाल सबल करवाल रे;
तस कंचनमाला छे कामिनी, मालती माला सुकुमाल रे. जुओ० २

अर्थ—उस नगरमें वज्रसेन नामक राजा है। उसके पास शत्रुओंके लिये कालरूप ऐसी शक्तिशाली तलवार है और उस राजाके मालतीके फूलकी माला जैसी सुकोमल शरीरवाली कंचनमाला नामक रानी है ॥२॥

तेहने सुत चारनी उपरे, त्रैलोक्यसुंदरी नाम रे;
पुत्री छे वेदनी उपरे, उपनिषद यथा अभिराम रे. जुओ० ३

अर्थ—उस रानीके चार पुत्रोंके ऊपर त्रैलोक्यसुंदरी नामक पुत्री है। जैसे चार वेदोंके ऊपर उपनिषद शोभित होता है वैसे ही वह पुत्री चार पुत्रोंके ऊपर शोभायमान हो रही है अर्थात् चार वेदके दोहनरूप जैसे उपनिषद हैं वैसे ही यह कुँवरी महान गुणवती है ॥३॥

रंभादिक जे रमणी करी, ते तो एह घडवा कर लेख रे;
विधिने रचना बीजी तणी, एहनो जय जस उल्लेख रे. जुओ० ४

अर्थ—फिर ब्रह्माने रंभा, अप्सरा, उर्वशी, तिलोत्तमा आदि स्त्रियोंको जो बनाया है वह इस त्रिलोकसुंदरीको बनानेके लिये हस्तलेख कला सिद्ध करनेके लिये (हाथ बिठानेके लिये, नमूनेके तौर पर) प्रथम बनायी है। तथा त्रैलोक्यसुंदरीके सिवाय अन्य जो स्त्रियाँ बनाई है वह इस त्रैलोक्यसुंदरीके रूप-गुण-कला आदिके यशकी महत्ता बढ़ानेके लिये बनाई है। (तात्पर्य यह कि इस त्रैलोक्यसुंदरीको अन्य सबकी अपेक्षा विशेष स्वरूपवान बनायी है कि जिससे कोई स्त्री उससे स्पर्धा न कर सके) ॥४॥

रोमाग्र निरखे तेहने, ब्रह्माद्वय अनुभव होय रे;
स्मर अद्वय पूरण दर्शने, तेहने तुल्य नहि कोय रे. जुओ० ५

अर्थ—उस त्रैलोक्यसुंदरीके रोमके अग्र भागको जो प्राणी देखता है वह अद्वितीय आनंदका अनुभव करता है और उसके संपूर्ण दर्शन पानेवाला तो कामसे तन्मय हो जाता है, कामसे व्याप्त हो जाता है, अर्थात् उसके समान रूपवान्, गुणवान् और कलावान् अन्य कोई स्त्री नहीं है ॥५॥

www.jaintatvagyanshala.org

नृपे तस वर सरीखो देखवा, मंडप स्वयंवर कीध रे;
मूल मंडप थंभे पूतळी, मणिकंचनमय सुप्रसिद्ध रे. जुओ० ६

अर्थ—उस त्रैलोक्यसुंदरीके योग्य पति ढूँढनेके लिये उसके पिताने स्वयंवर मंडप बनवाया है और उस मंडपके मूल स्तंभ पर एक रत्नजडित सुवर्णमय सुशोभित पूतली स्थापन की है ॥६॥

चिहुंपास विमाणावलि समी, मंचातिमंचनी श्रेणि रे;
गौरव कारण कण राशि जे, झीपीजे गिरिवर तेणि रे. जुओ० ७

अर्थ—उस मंडपमें आनेवाले राजकुँवरोंके लिये चारों ओर विमानोंकी श्रेणीकी तरह छोटे और बड़े मंच (कुर्सियाँ) की श्रेणी बनाई है। उन राजकुँवरोंकी आवभगतके लिये धान्यके बड़े बड़े ढेर शोभायमान है जो मानो ऊँचाईमें मेरुपर्वतको भी जीत लेते हैं ॥७॥

तिहां प्रथम पक्ष अषाढनी, बीजे छे वरण मुहूत्त रे;
शुभबीज बीज ते काल छे, पुण्यवंतने हेतु आयत्त रे. जुओ० ८

अर्थ—वहाँ आषाढ मासके प्रथम पक्ष (शुक्लपक्ष) की द्वितीयाके दिन उसके पाणिग्रहणका मुहूर्त्त है इसलिये हे कुलोत्तम कुमार! शुभकी बीजभूत अर्थात् कल्याणकी कारणभूत वह दूज कल है। (इसलिये आप यह कार्य सिद्ध कीजिये।) ॥८॥

एम निसुणी सोवन सांकळुं, कुंवरे तस दीधुं ताव रे;
घरे जई ते कुब्जाकृति धरी, तिहां पहोतो हार प्रभाव रे. जुओ० ९

अर्थ—इस प्रकार उस पुरुषका कथन सुनकर उस खुशखबरीके उपलक्षमें उसे सोनेका साँकडा (जंजीर) भेट दिया और उसी वक्त श्रीपाल कुँवर घर जाकर हारके प्रभावसे कूबड़का रूप बनाकर कंचनपुर जा पहुँचा।९।

मंडपे पईसंतो वारीओ, पोळियाने भूषण देई रे,
तिहां पहोतो मणिमय पूतळी, पासे बेईठो सुखसेई रे. जुओ० १०

अर्थ—वहाँ स्वयंवरमंडपमें प्रवेश करते उस कूबड़को रोका, तो द्वारपालको रत्नका आभूषण देकर वह मंडपमें जा पहुँचा और मणिरत्नोंसे जड़ित पूतलीके पास स्वस्थ होकर बैठ गया ॥१०॥

खरदंतो नाक ते नानडुं, होठ लांबा ऊंची पीठ रे;
आंख पीळी केश ते काबरा, रह्यो उभो मांडवा हेठ रे. जुओ० ११

अर्थ—(वह कूबड़ कैसा था ? उसका वर्णन करते हैं) उस कूबड़के दाँत गधे जैसे थे (अर्थात् एक-एक दांतके बीच काफी जगह छूटी हुई थी), नाक छोटा था, होठ लंबे थे, पीठका भाग ऊँचा था, आँखे पीली और कंजी थी। बाल चितकबरे थे। ऐसा वह कुब्ज स्वयंवरमंडपके नीचे जाकर खड़ा रहा ॥११॥

नृप पूछे केई सोभागिया, वळी वागिया जागिया तेजि रे;
कहो कुण कारण तुमे आविया, कहे जिण कारण तुमे हेज रे.जुओ०१२

अर्थ—उसे देखकर वहाँ रहे हुए अन्य राजकुँवर कहने लगे—हे कुब्ज ! हमारेमेंसे कई राजकुमार सौभाग्यशाली हैं, कई वाचाल हैं और कई अपने तेजसे तेजस्वी है। (इसलिये हम राजकुँवरीको ब्याहने आये हैं।) परंतु तुम यहाँ किसलिये आये हो ? तब कुब्जने कहा—आप जिस प्रयोजनसे आये हैं, उसी प्रयोजनके लिये मैं भी आया हूँ ॥१२॥

तव ते नरपति खडखड हसे, जुओ जुओ ए रूपनिधान रे;
एहने जे वरशे सुंदरी, तेहनां काज सर्या वळ्यो वान रे.जुओ०१३

अर्थ—इस प्रकार कुब्जका कथन सुनकर सब राजा कहकहा लगाकर हँसने लगे और हास्यपूर्वक बोले—देखिये, देखिये ! यह रूपका भंडार राजकुँवरीको ब्याहने आया है। (राजकुँवरी इसीसे शादी करेगी न ?) और इससे जो कन्या शादी करेगी उसके सभी कार्य सफल हो जायेंगे और उसके शरीरका वर्ण भी सफल हो जायगा ऐसा समझना चाहिये ॥१३॥

इण अवसरे नरपति कुंवरी, वर अंबर शिबिकारूढ रे;
जाणीए चमकती बीजळी, गिरि उपर जलधर गूढ रे. जुओ०१४

अर्थ—इतनेमें श्रेष्ठ वस्त्रोंसे आच्छादित शिबिकामें बैठकर राजकुँवरी भी वहाँ स्वयंवरमंडपमें आयी। वह कुँवरी ऐसी शोभित हो रही थी मानो पर्वत पर रहे हुए मेघाडंबरमें चमकती हुई गुप्त बिजली न हो ? ॥१४॥

मूत्ताहल हारे शोभती, वरमाला करमांहे लेई रे;
मूल मंडप आवी कुंअरने, सहसा शुचिरूप पलोई रे. जुओ०१५

अर्थ—मोतीकी मालासे सुशोभित वह राजकुँवरी हाथमें वरमाला लेकर मुख्यमंडपमें आयी कि उसे अकस्मात् पवित्र रूपवाला कुँवर (मूलरूपमें) दिखाई दिया ॥१५॥

www.jaintatvagyanshala.org

जे सहज स्वरूप विभावमां, देखे ते अनुभव योग रे,
इण व्यतिकरे ते हरषित हुई, कहे हुओ मुज इष्ट संयोग रे.जुओ०१६

अर्थ—जैसे अनुभव योगी पुरुष विभाव दशामें होते हुए भी स्वभाव शाके स्वरूपको देखता है, इसी दृष्टांतसे कुँवरी भी कुब्जका रूप धारण केये हुए कुँवरको मूल स्वरूपमें देखकर हर्षित हुई और कहने लगी—मुझे ष्ट स्वामीका संयोग हो गया है ॥१६॥

तस दृष्टि सराग विलोकतो, विचे निज वामन रूप रे,
दाखे ते कुंवरी सुवल्लही, परि परि परखे करी चूंप रे. जुओ० १७

अर्थ—अपनी ओर रागयुक्त दृष्टिवाली कुँवरीको देखकर, श्रीपालकुँवर स कुँवरीके प्रेमकी परीक्षा करनेके लिये बीच-बीचमें अपना वामनरूप देखाने लगा जिससे कुँवरी भी अपने चित्तको स्थिर करके बारबार उस ओर खने लगी ॥१७॥

सा चिंते नटनागर तणी, बाजी वाजी प्लुते जेम रे,
मन राजी काजी शुं करे? आजीवित एहशुं प्रेम रे. जुओ० १८

अर्थ—इस प्रकार रूप बदलते कुँवरको देखकर राजकुमारी सोचने लगी के जैसे बाजीगर लोगोंके खेल तथा दौड़ते हुए घोड़ेके प्लुत शब्दका (अर्थात् ह आवाज कहाँसे आता है उसका) पता नहीं चलता, वैसे ही इस कुँवरके रित्रका पता नहीं चलता। परंतु मेरा मन तो उसमें राजी है तो काजी क्या करेगा? (अर्थात् मेरे मनमें तो वह बस गया है तो अन्य लोग क्या करेंगे?) मुझे तो आजीवन उसके साथ ही प्रेम हो गया है ॥१८॥

हवे वरणवे जे जे नृप प्रते, प्रतिहारी करी गुणपोष रे,
ते ते हेले कुंअरी दाखवी, वय रूप ने देशना दोष रे. जुओ० १९

अर्थ—उसके बाद दासी मचान पर बैठे हुए जिन-जिन राजाओंके गुणका सविस्तर वर्णन करती थी उन उन राजाओंके वय, रूप और देशके दोषोंको दिखाती हुई राजकुँवरी उनकी अवहेलना करती थी अर्थात् निंदा करती थी ॥१९॥

वरणवतां जस मुख ऊजळुं, हेलंतां तेहनुं श्याम रे;
प्रतिहारी थाकी कुंवरने, सा निरखे रति अभिराम रे. जुओ० २०

अर्थ—जब दासी उन राजाओंका वर्णन यानि गुणगान करती थी तब उनके मुँह तेजस्वी होते थे; फिर जब कुँवरी उनकी निंदा करती थी, कमियाँ

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

दिखाती थी, तब उनके मुँह श्याम हो जाते थे अर्थात् वे लज्जासे अधोमुख हो जाते थे। इस प्रकार दासी वर्णन करते थक गई, किन्तु रति (कामदेवकी स्त्री) जैसी सुंदर कुँवरी तो कामदेव जैसे श्रीपालकुँवरकी ओर ही टकटकी लगाये खड़ी थी ॥२०॥

छे मधुर यथोचित शेलडी, दधि मधु साकर ने द्राख रे,
पण जेहनुं मन जिहां वेधियुं, ते मधुर न बीजा लाख रे.जुओ०२१

अर्थ–जैसे ईख, दही, शहद, शक्कर और द्राक्ष सभी यथायोग्य मधुर है, परंतु जिसका मन जिस वस्तुसे लगा हो, आकृष्ट हुआ हो, स्थिर हुआ हो उसे वही वस्तु प्रिय लगती है; भले अन्य लाखों चीजें चाहे कितनी भी मधुर क्यों न हो, उसे मधुर नहीं लगती। (उसी तरह कुँवरीका मन श्रीपालकुँवरके कामबाणसे घायल होनेके कारण अन्य लाखों राजकुमार सुंदर और गुणवान होने पर भी उधर आकृष्ट नहीं होता था ॥२१॥

इण अवसरे थंभनी पूतळी, मुखे अवतरी हारनो देव रे,
कहे गुणग्राहक जो चतुर छे, तो वामन वर ततखेव रे.जुओ०२२

अर्थ–इस प्रसंग पर मुख्य स्तंभकी पूतलीके मुँहमें हारका अधिष्ठायक विमलेश्वर देव संक्रमित होकर कहने लगा–हे कुँवरी! यदि तू गुण ग्रहण करनेमें चतुर है तो इस वामन वरको जल्दीसे वरण कर ॥२२॥

ते सुणी वरियो ते कुंवरीए, दाखे निज अतिही कुरूप रे,
ते देखी निर्भृत्से कुब्जने, तव रूठा राणा भूप रे. जुओ०२३

अर्थ–इस प्रकार पूतलीका कथन सुनकर उस कुँवरीने वामनको वरण किया (अर्थात् वामनके गलेमें वरमाला डाली)। उस समय श्रीपालकुँवर अपनेको अत्यंत कुरूप दिखाने लगा। उसका ऐसा रूप देखकर सभी राजा क्रोधायमान होकर उस कुब्जका तिरस्कार करते हुए कहने लगे– ॥२३॥

गुण अवगुण मुग्धा नवि लहे, वरे कुब्ज तजी वर भूप रे,
पण कन्यारत्न न कुब्जनुं, उकरडे शो वर धूप रे. जुओ०२४

अर्थ–यह बाला भोली होनेसे गुण-अवगुणको जान नहीं सकती, इसलिये अन्य श्रेष्ठ राजाओंको छोड़कर इस कुब्जको वरण किया है, किन्तु जैसे घूरेमें धूप नहीं होता, वैसे ही वह कन्यारत्न भी कुब्जको नहीं दिया जा सकता ॥२४॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तज माळ मराल अमे कहुं, तुं काग छे अतिविकराल रे,
जो न तजे तो ए ताहरुं, गलनाल लूणे करवाल रे. जुओ० २५

अर्थ—हे कूबड़ ! तू अत्यंत विकराल और काग जैसा है और हम हंस जैसे हैं। इसलिये तू वरमालाको छोड़ दे। यदि तू इस वरमालाको नहीं छोड़ेगा तो हम तेरे गलेकी नालको तलवारसे काट डालेंगे ॥२५॥

तव हसीय भणे वामन इस्युं, तुमे जो नवि वरिया एण रे,
तो दुर्भग रूसो मुज किश्युं, रूसो न विधिशुं केण रे. जुओ०२६

अर्थ—तब हँसते हुए कूबड़ इस प्रकार कहने लगा—हे दुर्भाग्यशालियों ! इस कुँवरीने आपका वरण नहीं किया, तो मुझ पर क्यों कोपायमान हो रहे हो ? अपने भाग्य पर गुस्सा क्यों नहीं करते ? ॥२६॥

परस्त्री अभिलाषाना पातकी, हवे मुज असिधारा तिथ्थ रे,
पामी तुमे शुद्ध थाओ सवे, देखो मुज कहेवा हथ्थ रे.जुओ०२७

अर्थ—(अब यह स्त्री मेरी है और आप सब इससे शादी करना चाहते हैं इसलिये) परस्त्रीकी अभिलाषा करनेसे आप अपवित्र हुए हैं, पापवाले हुए हैं, इसलिये हे दुर्जनों ! इस पापके प्रायश्चित्तके लिये इस मेरी तलवारकी धाररूपी तीर्थको आलिंगनकर पवित्र हो जाओ। और मेरे हाथ कैसे हैं उसे देखो अर्थात् उसका अनुभव करो ॥२७॥

एम कही कुब्जे विक्रम तिस्युं, दाख्युं जेणे नरपति नट्ठ रे,
चित्त चमक्या गगने देवता, तेणे संतति कुसुमनी वुट्ठ रे.जुओ०२८

अर्थ—इस प्रकार कहकर कूबड़ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि सभी राजकुमार जान लेकर भागे। कौतुक देखनेके लिये आकाशमें रहे हुए देवता भी चित्तमें विस्मित हुए और सतत पुष्पवृष्टि करने लगे ॥२८॥

हुवो वज्रसेन राजा खुशी, कहे बल परे दाखवो रूप रे,
तेणे दाख्युं रूप स्वभावनुं, परणावे पुत्री भूप रे. जुओ०२९

अर्थ—इस प्रकार घटना देखकर वज्रसेन राजा बहुत खुश हुआ और कुँवरसे कहने लगा—हे वामन ! आपने जैसे पराक्रम दिखाया वैसे ही अपना मूल स्वरूप दिखाइये, (जिससे हमें आनंद हो)। तब श्रीपालकुँवरने अपना स्वाभाविक मूल रूप बताया और राजाने आनंदपूर्वक अपनी पुत्री उसे ब्याह दी ॥२९॥

www.jaintatvagyanshala.org

दियो आवास उत्तंग ते, तिहां विलसे सुख श्रीपाल रे,
निज तिलकसुंदरी नारीशुं, जिम कमलाशुं गोपाल रे. जुओ०३०

अर्थ—फिर राजाने उन्हें रहनेके लिये एक बड़ा महल दिया उस महलमें, जैसे कृष्ण लक्ष्मीजीके साथ सुखका अनुभव करते है वैसे ही, श्रीपालकुँवर अपनी पत्नी तिलकसुंदरीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे ।।३०।।

त्रीजे खंडे पूरण थई, ए छट्ठी रसाल ढाळ रे,
जस गातां श्री सिद्धचक्रनो, होय घर घर मंगळ माळ रे. जुओ० ३१

अर्थ—यह तीसरे खण्डकी छठीं मनोहर ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि सिद्धचक्रजीके गुणगान करनेसे प्रत्येक घरमें मांगलिक माला होती है।

तृतीय खंडकी छठीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

विलसे धवल अपार सुख, सोभागी सिरदार,
पुण्यबले सवि संपजे, वंछित सुख निरधार. १

अर्थ—सौभाग्यवानोंमें शिरोमणी जैसे श्रीपालकुँवर अपार उज्ज्वल सुखोंका उपभोग करते थे क्योंकि पुण्यके बलसे सब प्रकारकी संपत्ति और वांछित सुख निश्चय ही प्राप्त होते हैं ।।१।।

सामग्री कारज तणी, प्रापक कारण पंच;
इष्ट हेतु पुण्य ज वडुं, मेले अवर प्रपंच. २

अर्थ—किसी भी कार्यकी सामग्रीको प्राप्त करनेमें पाँच समवाय कारण निमित्तभूत है (काल, स्वभाव, नियति, पुरुषार्थ और कर्म), किन्तु अन्य सब कारणोंकी प्राप्तिमें पुण्य ही एक महान कारणके रूपमें इष्ट है ।।२।।

विस्तारार्थ—किसी भी कार्यकी उत्पत्तिमें काल आदि पाँच कारण होते हैं—

१. काल—जो कार्य जिस समयमें होना हो उसी समयमें होता है। जैसे ग्रीष्म ऋतुमें आम होते हैं, सर्दीकी ऋतुमें मेथी होती है, उसी तरह प्रत्येक कार्यमें अनुकूल कालकी आवश्यकता है ही।

२. स्वभाव—कार्य उत्पन्न होनेमें काल प्राप्त हुआ हो फिर भी स्वभावका संयोग न मिले तो कार्य सिद्ध नहीं होता। जैसे किसी बीजमें उत्पन्न

होनेका स्वभाव ही नष्ट हो गया हो तो उसे अंकुरित होनेका समय आने पर भी स्वभावके दोषसे वह अंकुरित नहीं होता। इसी प्रकार दूधमें दही होनेका स्वभाव होता है अतः उसे योग्य काल मिलने पर दही हो जाता है। यों प्रत्येक कार्यमें स्वभावकी अपेक्षा रहती है।

३. नियति—काल और स्वभाव होने पर भी कार्यकी परिपक्वता न हो तो कार्य सिद्ध नहीं होता। जैसे तीसरे और चौथे आरेमें कई भव्य जीव ऐसे थे कि जिन्हें सम्यक्त्वप्राप्तिका समय मिला था और उनमें सम्यक्त्व पानेका स्वभाव भी था, फिर भी भव्यत्वकी परिपक्वता हुई न थी, जिससे वे सम्यक्त्व न पा सके। इस प्रकार नियतिके बिना भी कार्य नहीं होता।

४. उद्यम (पुरुषार्थ)—उपरोक्त तीनों कारण हों फिर भी उसके अनुकूल उद्यम न हो तो कार्य सिद्ध नहीं होता। जैसे बीजके अंकुरित होनेका समय है, बीजमें अंकुरित होनेकी योग्यता है, योग्यताकी परिपक्वता भी है, फिर भी उद्यम किये बिना वह बीज कैसे अंकुरित हो सकेगा? इसलिये कार्यसिद्धिके लिये उद्यमकी आवश्यकता रहती है।

५. कर्म—बीजको बोनेका उद्यम करने पर भी किसानका भाग्य ही न हो तो वह बीज अंकुरित नहीं होता। इसलिये कर्म भी कार्य उत्पन्न होनेमें एक कारण है।

इस प्रकार कार्यकी सिद्धिके ये पाँच कारण कहे। उसमें **पुण्य (कर्म) एक ऐसा कारण है जो अन्य कारणोंको मिला देता है।** इसलिये सभी कारणोंमें पुण्यकारणको इष्ट हेतु कहा है।

तिलकसुंदरी श्रीपालनो, पुण्ये हुओ संबंध,
हवे शृंगारसुंदरी तणो, कहिशुं लाभ प्रबंध. ३

अर्थ—इस प्रकार पुण्यसंयोगसे श्रीपालकुँवर और तिलकसुंदरीका संबंध हुआ। अब शृंगारसुंदरीका संबंध कैसे होता है? वह अधिकार कहेंगे ॥३॥

ढाल सातवीं

(साहिबा मोतीडो हमारो—ए देशी)

एक दिन राजसभाए आव्यो, चर कहे अचरिज मुज मन भाव्यो,
साहिबा रंगीला हमारा, मोहना रंगीला हमारा,
दलपत्तननो छे महाराजा, धरापाल जस पख बिहु ताजा.
साहिबा रंगीला हमारा, मोहना रंगीला हमारा. १

अर्थ—अब एक दिन राज्यसभामें एक दूत आया और श्रीपालकुँवरसे कहने लगा—हे मोहको उत्पन्न करनेवाले रंगीले साहेब! मेरे मनको जो आश्चर्य पसंद पड़ा है वह मैं कहता हूँ (तो आप कृपा करके सुनिये)। दलपत्तन नामके नगरमें धरापाल राजा राज्य कर रहा है। उस राजाके मातुल पक्ष और पिता पक्ष—ये दोनों पक्ष मजबूत अर्थात् अच्छे हैं ॥१॥

राणी चोराशी तस गुणखाणी, गुणमाला छे प्रथम वखाणी, सा०
पांच बेटा उपर गुणपेटी, शृंगारसुंदरी छे तस बेटी. सा०मो० २

अर्थ—उस राजाके गुणोंकी खान जैसी चौरासी रानियाँ है उनमें गुणमाला नामक प्रसिद्ध पटराणी है। उस गुणमालाके पाँच पुत्रोंके ऊपर गुणकी पेटीरूप शृंगारसुंदरी नामक एक पुत्री है ॥२॥

पल्लव अधर हसित सितफूल, अंग चंग कुचफल बहु मूल, सा०
जंगम ते छे मोहन वेली, चालती चाल जिसी गजगेली. सा० मो० ३

अर्थ—उस शृंगारसुंदरीके नवपल्लव जैसे लाल और सुकोमल होठ है, श्वेत पुष्प जैसी उज्ज्वल दंतपंक्ति है तथा मनोहर सुंदर अंगोपांग हैं। अत्यंत मधुर रससे भरे हुए फल जैसे दो स्तन हैं, इसलिये वह कुँवरी जंगम (चलती-फिरती) मनोहर बेल जैसी है तथा जैसे वह बेल पवनप्रसंगसे इधर-उधर हिलती है वैसे ही वह सुंदरी हथिनीकी तरह क्रीड़ा करती हुई चलती है ॥३॥

पंडिता विचक्षणा प्रगुणा नामे, निपुणा दक्षा सम परिणामे, सा०
तेहनी पांच सखी छे प्यारी, सहुनी मति जिनधर्मे सारी. सा० मो० ४

अर्थ—उस कुँवरीके पंडिता, विचक्षणा, प्रगुणा, निगुणा, दक्षा—ये पाँच सहेलियाँ हैं। ये सहेलियाँ उसे बहुत ही प्रिय है। ये पाँचों सहेलियाँ नामके अनुसार गुणवाली, समस्वभावी, और जैन धर्ममें समान रुचिवाली है ॥४॥

ते आगळ कहे कुंवरी साचुं, आपणनुं म होजो मन काचुं, सा०
सुख कारण जिनमतनो जाण, वर वरवो बीजो अप्रमाण. सा० मो० ५

अर्थ—एक बार उन पाँचों सहेलियोंके आगे राजकुँवरी सत्य वचन कहने लगी—हम सबका मन जैनधर्ममें अस्थिर (चलायमान) न होओ! और सांसारिक सुखके लिये जैनधर्मके रहस्यके ज्ञाता पुरुषसे ही हम शादी करेंगी, किन्तु जैन धर्मसे ज्ञाताके सिवाय अन्य पुरुषसे शादी करना अयोग्य है ॥५॥

जाण अजाण तणो जे जोग, केळ कंथेरनो ते संयोग, सा०
व्याधि मृत्यु दारिद्र वनवास, अधिको कुमित्र तणो सहवास. सा०मो० ६

अर्थ—जैसे कदली वृक्षको कंथारीके पेड़का संयोग दुःखदायक होता है, वैसे ही ज्ञानी और अज्ञानी (विद्वान और मूर्ख) का संयोग दुःखदायी है। इसीलिये भयंकर व्याधि, मृत्यु, दारिद्र्य और वनवास जैसे दुःख सहन करना अच्छा है, मगर अयोग्य मित्र-साथीका सहवास उनसे भी अधिक दुःखदायक है ॥६॥

हेममुद्राए अकीक न छाजे, श्यो जलधर जे फोगट गाजे, सा०
वर वरवो परखीने आप, जिम न होय कर्मे कुजोडालाप सा० मो० ७

अर्थ—जैसे सोनेकी अंगूठीमें अकीक पत्थर शोभा नहीं देता। और केवल गर्जना करनेवाला मेघ क्या कामका? (अर्थात् शरदृतुका मेघ गर्जना करता है किन्तु बरसता नहीं है तो वह कोई कामका नहीं है) इसीलिये हम भी परीक्षा करके ही शादी करेंगी, ताकि कहीं कर्मवश बेमेल जोड़ेका समागम न हो जाय ॥७॥

कहे पंडिता परनुं चित्त, भाव लखीजे सुणिय कवित्त; सा०
सीथे पाक सुभट आकारे, जिम जाणीजे शुद्ध प्रकारे. सा० मो० ८

अर्थ—तब पंडिता सखी कहने लगी—कविता सुनकर दूसरेके चित्तको जान ले अथवा कविताके एक पदको सुनकर दूसरेके चित्तके भाव लिख दे वह विचक्षण कहलाता है, जैसे कि रसोईकी शुद्ध परीक्षा एक दानेसे और सुभटकी परीक्षा आकृतिसे की जा सकती है ॥८॥

करीय समस्या पद तुमे दाखो, जे पूरे ते चित्तमांहि राखो; सा०
इम निसुणी कहे कुंवरी तेह, वरुं समस्या पूरे जेह. सा० मो० ९

अर्थ—इस प्रकार आप भी समस्याका एक पद करके दिखाइये और जो उसकी पूर्ति करे उसे चित्तमें स्थान दीजिये। इस प्रकार पंडिताकी बात सुनकर कुँवरीने कहा कि जो मेरी समस्याकी पूर्ति करेगा उसे मैं वरण करूँगी ॥९॥

तेह प्रसिद्धि सुणीने मळिया, बहु पंडित नर बुद्धे बळिया; सा०
पण मति वेग तिहां नवि चाले, वायु वेगे नवि डुंगर हाले. सा० मो० १०

अर्थ—ऐसी कुँवरीकी प्रतिज्ञाकी प्रसिद्धि हुई। उसे सुनकर बुद्धिसे बलवान ऐसे अनेक पंडित पुरुष एकत्र हुए। परंतु जैसे वायुके वेगसे पर्वत चलायमान नहीं होता, वैसे ही उनकी बुद्धिका प्रचार समस्यामें चला नहीं अर्थात् समस्याकी पूर्ति कोई नहीं कर सका ॥१०॥

पंच सखीयुत ते नृपबेटी, चित्त परखे करी समस्या मोटी; सा०
सुणिय कहे जन केम पूरीजे, पर मन द्रह किम थाह लहीजे. सा० मो० ११

अर्थ—इस प्रकार पाँच सहेलियोंके साथ राजाकी कुँवरी बड़ी समस्या करके (पहेली पूछकर) सबके चित्तकी परीक्षा करती थी, परंतु वह समस्या सुनकर पंडित पुरुष कहने लगे कि हम कैसे समस्याकी पूर्ति करेंगे? और दूसरेके मनरूपी सरोवरका थाह हम कैसे पा सकेंगे? (अर्थात् सामनेवालेके मनमें क्या है उसे कौन जान सकता है?) ॥११॥

सुणिय कुमार चमक्यो आवे, घर कहे हो मुज हार प्रभावे; सा०
दलपत्तनगर जिहां नृपकन्या, तिहां पहोतो सखियुत जिहां धन्या. सा० मो०१२

अर्थ—दूतकी यह बात सुनकर चित्तमें चमत्कृत हुआ कुमार घर आया और कहने लगा कि जहाँ दलपत्तनगरके राजाकी कन्या है वहाँ मैं हारके प्रभावसे पहुँच जाऊँ। यों चिंतवन करते ही तुरत हारके प्रभावसे जहाँ सहेलियोंके साथ राजकन्या बैठी थी वहाँ जा पहुँचा ॥१२॥

देखी कुंवर अमरसम तेह, चित्त चमकी कहे जो मुज एह; सा०
पूरे समश्या तो हुं धन्य, पूरी प्रतिज्ञा होय कयपुण्य. सा० मो० १३

अर्थ—देदीप्यमान देव जैसे कुमारको देखकर कुँवरी चित्तमें आश्चर्यचकित हुई और (स्वगत) कहने लगी—यदि यह पुरुष मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करे तो मैं धन्य होऊँगी और मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो तो मैं कृतपुण्य (पूर्वकालमें किये हुए पुण्यवाली) हूँ अर्थात् मेरे पुण्यका उदय होगा तभी मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी ॥१३॥

पूछे कुंवर समस्या कोण? कुंवरी संकेत राखी कहे गौण, सा०
शीषे कुमर दिये कर पूरे, पूत्तल तेह रहे न अधूरे. सा०मो०१४

अर्थ—फिर कुँवरने पूछा—आपकी समस्या क्या है? सो कहिये। तब कुँवरीके पूर्वसंकेतके अनुसार मुख्य सहेली पंडिता समस्या कहने लगी और कुँवरने नजदीकमें रहे हुए पूतलेके मस्तक पर हाथ रखा जिससे वह पूतला ही संपूर्णतासे समस्या पूर्ति करता था सो इस प्रकार— ॥१४॥

पंडितोवाच (पंडिताने कहा)—"मनवंछित फल होई"

पूत्तलोवाच (पूतलेने कहा)—

दोहा— अरिहंताई नवपय, निय मन धरे जु कोई,
निच्छय तस सुर नर स्तवे, मनवंछित फल होई. १

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अरिहंताइ नवपय, निय मणु धरइज्जु कोइ ।
निच्छइ तसु नरसेहरह, मणवंछिय फलु होइ ॥१६२॥

अर्थ—"अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—इन नौ पदोंको जो कोई मनुष्य अपने मनमें अवश्य धारण करता है उस नरशेखर (मनुष्योंमें शिरोमणि—मुख्य) पुरुषके मनमें धारित काम अवश्य पूर्ण होता है—मनोवांछित सफल होता है।"

इस प्रकार जैनधर्मके रहस्यको दर्शानेवाली समस्या पूर्ण होनेसे पंडिता मौन रही तब दूसरी विचक्षणा सहेली बोली—

विचक्षणोवाच (विचक्षणाने कहा)—"अवर म झंखो आळ।"

पूत्तलोवाच (पूतलेने कहा)—

दोहा— अरिहंत देव सुसाधु गुरु, धम्म ज दया विशाळ,
जपहु मंत्र नवकार तुमे, अवर म झंखो आळ. २

अरिहंत देव सुसाहु गुरु, धम्मउ दयाविसालु ।
मंत्तुत्तम नवकारु पर, अवर म झंखो आलु ॥१६३॥

अर्थ—अरिहंतरूप देव, शुद्ध साधुरूप गुरु, विशाल दयावाला केवली भाषित धर्म जानना चाहिये, तीनों तत्त्वयुक्त जो नवकार मंत्र है वही उत्तम मंत्र है उसीका जाप करना चाहिये और अन्य सब मिथ्या ढकोसलोंकी झंखना (इच्छा) न करनी चाहिये।

इस प्रकार अपनी समस्या पूर्ण होनेसे विचक्षणा मौन रही, तब तीसरी प्रगुणा सहेली बोली—

प्रगुणोवाच (प्रगुणाने कहा)—"कर सफलो अप्पाण"

पूत्तलोवाच (पूतलेने कहा)—

दोहा— आराहिज्जई देव गुरु, देहु सुपत्तहि दाण,
तव संयम उवयार करि, कर सफलो अप्पाण. ३

आराहिय धुरि देवगुरु, देहि सुपत्तिहि दाणु ।
तव संजम उवयार करि, करि सफलु अप्पाणु ॥१६४॥

अर्थ—देव और गुरुका आराधन करके सुपात्रदान देकर तथा तप, संयम और परोपकार करके हे जीव! तू अपने आत्माको सफल (सार्थक) कर।

इस प्रकार समस्या पूर्ण होनेसे प्रगुणा मौन रही, तब चौथी निपुणा सहेली बोली—

www.jaintatvagyanshala.org

निपुणोवाच (निपुणाने कहा)–"जित्तो लिख्यो निलाड।"

पूत्तलोवाच (पूतलेने कहा)–

दोहा– रे मन अप्पा खंचि करी, चिंताजाल म पाड,
फल तित्तोहि ज पामिये, जित्तो लिख्यो निलाड. ४

अरि मन अप्पउ खंचि करि, चिंताजालि म पाडी ।
फल तित्तउ परि पामीयइ, जीत्तउ लिहिउ निलाडि ॥१६५॥

अर्थ–अरे मन! तू आत्माको जबरदस्ती खींचकर चिंताकी जालमें फँसाना मत, क्योंकि फल तो जितना नसीबमें लिखा होगा उतना ही प्राप्त होगा।

इस प्रकार समस्या पूर्ण होनेसे निपुणा मौन रही, तब पाँचवीं दक्षा सहेली बोली–

दक्षोवाच (दक्षाने कहा)–"तसु तिहुअण जण दास."

पूत्तलोवाच (पूतलेने कहा)–

दोहा– अत्थि भवंतर संचियो, पुण्य समग्गल जास,
तसु बल तसु मई तसु सिरी, तसु तिहुअण जण दास. ५

अत्थि भवंतर संचिऊ, पुण्णु समग्गलु जासु ।
तसु बल तसु मइ तसु सिरि, तसु तिहुअण जण दासु ॥१६६॥

अर्थ–जिस मनुष्यने पिछले भवोंमें समग्र पुण्यका संचय किया है उस मनुष्यको बल, बुद्धि और लक्ष्मी प्राप्त होती है और स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकोंके निवासी उसके दास होकर रहते हैं।

इस प्रकार समस्या पूर्ण होने पर दक्षा मौन रही, तब शृंगारसुंदरी बोली–

शृंगारसुंदर्युवाच (शृंगारसुंदरीने कहा) - "रवि पहेलां उगंत."

पूत्तलोवाच (पूतलेने कहा)–

दोहा– जीवंता जग जश नहीं, जस विण कांई जीवंत,
जे जस लेई आथम्या, रवि पहेलां उगंत. ६

अर्थ–जीते हुए भी जिसका जगतमें यश फैला हुआ नहीं है वे जीव क्यों जीते हैं? (अर्थात् यशके बिना जीना व्यर्थ है) परंतु जो यश प्राप्तकर इस जगतमें अस्त हुए हैं वे जीव सूर्य उगनेसे पहले उदित होते हैं। तात्पर्य यह है कि जो यशके साथ मरते हैं उनका सूर्योदयसे पहले नामस्मरण होता है।

(ढाल पूर्ववत्)

पूरे कुमर समस्या सारी, आनंदित हुई नृपति कुमारी; सा०
वरे कुमार ते त्रिभुवन सार, गुण निधान जीवन आधार. सा०मो०१५

अर्थ—इस प्रकार श्रीपालकुँवरने सभी समस्याएँ पूर्ण की, जिससे राजकुँवरी अत्यंत आनंदित हुई और उसने तीन भुवनमें सारभूत, गुणके भंडार समान और जीवनके आधाररूप ऐसे श्रीपालकुँवरको वरण किया ॥१५॥

पूत्तल मुख समस्या पुरावी, राजा प्रमुख जन सवि हुओ भावी, सा०
ए अचरिज तो कहियें न दीठुं, जिम जोईये तिम लागे मीठुं. सा०मो०१६

अर्थ—इस प्रकार श्रीपालकुँवरने पूतलेके मुँहसे समस्याएँ पूर्ण करायी। यह देखकर राजा आदि सभी लोग हर्षित हुए और कहने लगे—ऐसा आश्चर्य तो पहले कभी नहीं देखा (और कभी सुना भी नहीं)। और यह प्रसंग तो ऐसा है कि ज्यों ज्यों देखते हैं त्यों त्यों अधिक अधिक मीठा लगता है ॥१६॥

राजा निज पुत्री परणावे, पंच सखी संयुत मन भावे, सा०
पाणिग्रहणमह सबलो कीधो, दान अतुल मनवंछित दीधो. सा०मो०१७

अर्थ—इस प्रकार आश्चर्यचकित होकर राजाने मनके उत्साहके साथ अपनी पुत्री शृंगारसुंदरीको पाँच सहेलियोंके साथ श्रीपालकुँवरको ब्याह दी, और पाणिग्रहणका बड़ा महोत्सव किया और इच्छानुसार याचकोंको बहुत दान दिया ॥१७॥

सातमी ढाळ ए त्रीजे खंडे, पूरण हुई गुण राग अखंडे. सा०
सिद्धचक्रना गुण गाईजे, विनय सुजस सुख तो पाईजे. सा०मो०१८

अर्थ—तीसरे खण्डमें गुण और अखंड रागसे भरपूर यह सातवीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि श्री सिद्धचक्रजीके गुण गानेसे विनय और अच्छे यशवाला सुख प्राप्त होता है ॥१८॥

तृतीय खंडकी सातवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

अंगभट्ट इण अवसरे, देखी कुमर चरित्र,
कहे सुणो एक माहरुं, वचन विचार पवित्र. १

अर्थ—उस समय श्रीपालकुँवरका अद्‌भुत चरित्र देखकर अंगभट्ट नामका एक परदेशी ब्राह्मण कहने लगा—हे कुमार! अच्छे विचारवाला एक मेरा वचन सुनिये ॥१॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कोल्लागपुरनो राजियो, अछे पुरंदर नाम,
विजयाराणी तेहनी, लवणिम लीला धाम. २

अर्थ—कोल्लागपुर नगरमें पुरंदर नामक राजा है। उसके लावण्य और लीलाके मंदिररूप विजया नामक रानी है ॥२॥

सात पुत्र उपर सुता, जयसुंदरी छे तास,
रंभा लघु ऊंची गई, जोडी न आवे जास. ३

अर्थ—उन राजा-रानीको सात पुत्रोंके ऊपर एक जयसुंदरी नामकी पुत्री है। उसके रूपके आगे स्वयंको घटिया (निकृष्ट) जानकर रंभा भी मानो ऊँचे आकाशमें (स्वर्गमें) चली गई न हो! ऐसा लगता है। अर्थात् सचमुच दुनियामें उसके समान अन्य कोई स्त्री नहीं है ॥३॥

लवणिम रूप अलंकरी, ते देखी कहे भूप,
ए सरीखो वर कुण हशे? पाठक कहो स्वरूप. ४

अर्थ—लावण्य और रूपसे सुशोभित उस कन्याको देखकर राजा (पाठकजीको बुलाकर) कहने लगा—हे पाठकजी! इस राजकुँवरीके योग्य वर कौन होगा? उसका स्वरूप कहिये ॥४॥

सो कहे इणे भणतां कळा, राधावेध स्वरूप,
पूछ्युं ते में वरणव्युं, साधनने अनुरूप. ५

अर्थ—तब पाठकजी (अध्यापक) कहने लगे—हे राजन्! यह कुँवरी मेरे पास विद्याभ्यास करती थी तब उसने राधावेधकी कलाका स्वरूप पूछा था, तब मैंने उसे साधना करने योग्य राधावेधका स्वरूप कहा था ॥५॥

आठ चक्र थंभ उपरे, फरे दक्षिण ने वाम,
अर विवरोपरि पूतली, काठनी राधा नाम. ६

अर्थ—राधावेधका स्वरूप इस प्रकार है—एक स्तंभके ऊपर आठ चक्र रखे जाते हैं, इनमेंसे चार चक्र बायी ओर सीधे और चार चक्र दाहिनी ओर उलटे फिरते हैं। उन आठ चक्रके आरेके छिद्रोंके ऊपर लकड़ीसे बनायी हुई राधापूतली रखी जाती है ॥६॥

तेल कढा प्रतिबिंब जोई, मूके अधोमुख बाण,
वेधे राधा वाम अच्छि, राधावेध सुजाण. ७

अर्थ—जो पुरुष उस स्तंभके नीचे तेलकी कड़ाहीमें प्रतिबिंब देखकर मुँह

www.jaintatvagyanshala.org

नीचे रखकर बाण मारकर घूमती हुई राधापूतलीकी दायीं आँखको बींध देता है उस पुरुषको राधावेधका सच्चा ज्ञाता समझना चाहिये ॥७॥

धनुर्वेदनी ए कळा, चार वेदथी उड्ड,
उत्तम नर साधी शके, नवि जाणे कोई मूढ. ८

अर्थ—यह कला धनुर्वेदकी है, फिर भी चारों वेदोंसे उच्च प्रकारकी है। इस कलाको उत्तम पुरुष ही साध सकते हैं, मूढ पुरुष तो उस कलाको समझ भी नहीं सकता ॥८॥

ते सुणी तुज पुत्री नृपति, करे प्रतिज्ञा एम,
वरशुं राधावेध करी, बीजो वरवा नेम. ९

अर्थ—इस प्रकार राधावेधकी बात सुनकर हे राजन्! आपकी पुत्रीने इस प्रकार प्रतिज्ञा की है कि जो मनुष्य राधावेधको साधेगा उसीसे मैं विवाह करूँगी। दूसरेसे विवाह करनेकी मेरे प्रतिज्ञा है ॥९॥

महोटो मंडप मांडिये, राधावेधनो संच,
करिये जिम वर पामिये, पाठक कहे प्रपंच. १०

अर्थ—इसलिये हे राजन्! बड़ा मण्डप तैयार कराकर उसमें राधावेधकी रचना कीजिये जिससे जयसुंदरी कुँवरीके योग्य वर प्राप्त हो सके। इस प्रकार पाठकने राधावेधका प्रबंध कहा ॥१०॥

मंडप नृपे मंडावियो, राधावेध विचार,
पण नवि को साधी शके, पण साधशो कुमार. ११

अर्थ—इस प्रकार पाठकका कथन सुनकर राजाने राधावेधके विचारसे तदनुसार बड़ा मण्डप तैयार करवाया है। परंतु उस राधावेधको कोई साध्य नहीं कर सकता। परंतु (इस अनुभवसे) मैं कहता हूँ कि हे कुमार! आप अवश्य इसे सिद्ध करेंगे ॥११॥

इम निसुणी ते भट्टने, कुंडल देई कुमार,
रयणी निज वासे वसी, चाल्यो प्रात उदार. १२

अर्थ—इस प्रकार अंगभट्टका कहना सुनकर कुँवरने उस भट्टको कानके दो कुण्डल दिये और रातको अपने घर रुककर सुबहमें उदार चित्तवाला वह कुँवर (हारके प्रभावसे) वहाँसे चल पड़ा ॥१२॥

पहोतो ते कोल्लागपुर, कुमर दृष्टि सब साखी;
साध्यो राधावेध तिहां, हार महिम गुण दाखी. १३

अर्थ—वह कुँवर कोल्लागपुर नगरमें जा पहुँचा और वहाँ सब लोगोंकी नजरके आगे हारका प्रभाव बताते हुए राधावेध सिद्ध कर दिया ॥१३॥

जयसुंदरीए ते वर्यो, करे भूप विवाह,
तास दत्त आवासमां, रहे सुजस उच्छाह. १४

अर्थ—तब जयसुंदरी कुँवरीने उसके गलेमें वरमाला डाल दी। फिर राजाने उनका विवाह किया। अब राजाके द्वारा दिये गये महलमें यशस्वी कुँवर उत्साहपूर्वक रहने लगा ॥१४॥

ढाल आठवीं

(बन्यो रे कुंवरजीनो सेहरो—ए देशी)

हवे माउल नृप पेखिया, आव्या नर आणा काज रे; विनीत,
लीलावंत कुंअर भलो,
कुंवरे पण निज सुंदरी, तेडावी अधिके हेज रे; विनीत. ली०१

अर्थ—अब ठाणापुर नगरसे मामा वसुपाल राजाने विनयवान् पुरुषोंको श्रीपालकुँवरके पास अपने नगरमें बुलानेके लिये भेजा और वे राजाकी आज्ञा पालन करनेके लिये लीलावंत कुँवरके पास कोल्लागपुर नगरमें आये। उस समय कुँवरने भी अत्यंत स्नेहपूर्वक अपनी सभी स्त्रियोंको अपने अपने स्थानसे बुला लिया ॥१॥

सैन्य मल्युं तिहां सामटुं, हय गय रथ भड चतुरंग रे, वि०
तिण संयुत कुंअर ते आवियो, ठाणाभिधपुर अति चंग रे, वि०ली०२

अर्थ—हाथी, घोड़ा, रथ और सुभट—यों चतुरंगी सेना वहाँ एकत्र हुई। फिर उस सैन्यके साथ अत्यंत मनोहर कुँवर ठाणा नगरमें आया ॥२॥

आणंदियो माउल नरपति, तस सिरि वर सुंदरी देखी रे, वि०
थापे राज्य श्रीपालने, करे विधि अभिषेक विशेष रे, वि० ली०३

अर्थ—वहाँ श्रीपालकुँवरकी लक्ष्मी और श्रेष्ठ सुंदरियोंको देखकर मामा राजा खूब खुश हुए और विशेष प्रकारसे विधि-विधानपूर्वक राज्याभिषेक कर श्रीपालको अपनी राज्यगद्दी पर बिठाया ॥३॥

सिंहासन बेठो सोहिये, वर हार किरीट विशाल रे; वि०
वर चामर छत्र शिरे धर्यां, मुख कज अनुसरत मराल रे, वि०ली०४

अर्थ—राजमुकुट और उत्तम हारसे सुशोभित और सिंहासन पर बैठा

www.jaintatvagyanshala.org

हुआ श्रीपालकुँवर अत्यंत सुहावना लग रहा था। दोनों ओर चमर ढुल रहे थे और शिर पर छत्र धारण किये हुए था। इससे उसका मुखरूपी कमल मानों हंस उसका अनुसरण कर रहे हो ऐसा लग रहा था ॥४॥

सोळे सामंते प्रणमीजतो, हय गय मणि मोतीय भेट रे, वि॰
चतुरंगी सेनाए परवर्यो, चाले जननी नमवा नेट रे. वि॰ली॰५

अर्थ—जिसे सोलह सामंत राजा नमस्कार करते थे ऐसा श्रीपालकुँवर हाथी, घोड़ा, मणि और मोतियोंकी भेट स्वीकारता हुआ चतुरंगी सेनाके साथ अब निश्चय करके माताको नमस्कार करनेके लिये रवाना हुआ ॥५॥

गाम ठामे आवंतडो, प्रणमितो भूपे सुपवित्त रे, वि॰
भेटीजंतो बहु भेटणे, सोपारय नगरे पहुत्त रे. वि॰ली॰६

अर्थ—रास्तेमें जाते-जाते प्रत्येक गाँवमें पवित्र राजाओंके द्वारा नमस्कार कराता हुआ तथा अनेक उपहारोंको स्वीकार करता हुआ श्रीपालकुँवर अनुक्रमसे सोपारक नगरमें आया ॥६॥

ते परिसर सैन्ये परिवर्यो, आवासे ते श्रीपाल रे, वि॰
कहे भगति शक्ति नवि दाखवे, शुं सोपारक नरपाल रे. वि॰ली॰७

अर्थ—सेनाके साथ श्रीपालकुँवर सोपारकनगरके बाहर अपने आवासमें ठहरे और (मंत्रीसे) कहने लगे कि सोपारक नगरका राजा भक्ति (भेट लेकर सामने आनेरूप) अथवा शक्ति (शस्त्र लेकर सामने आकर युद्ध करनेरूप) क्यों कुछ बताते नहीं है ? ॥७॥

कहे परधान नवि एहनो, अपराध अछे गुणवंत रे, वि॰
नामे महसेन छे ए भलो, ताराराणी मन कंत रे. वि॰ली॰८

अर्थ—तब मंत्री बोला—हे गुणवान राजा! इसमें राजाका किंचित् भी अपराध नहीं है। यह महसेन राजा तो बहुत भला है और तारामती रानीका मनवल्लभ स्वामी (पति) है ॥८॥

पुत्री तस कूखे उपनी, छे तिलकसुंदरी तस नाम रे, वि॰
ते तो त्रिभुवन तिलक समी बनी, हरे तिलोत्तमानुं धाम रे, वि॰ली॰९

अर्थ—उस रानीकी कुक्षिसे उत्पन्न तिलकसुंदरी नामक एक पुत्री है। वह पुत्री तीनों भुवनमें तिलक समान श्रेष्ठ है और रूपसे तिलोत्तमा आदि अप्सराओंके तेजका हरण करती है अर्थात् अप्सराओंका तेज उसने हर लिया है जिससे अप्सराएँ रूपविहीन हो गयी है ॥९॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ते तो सृष्टि छे चतुर मदनतणी, अंगे जीत्यां सवि उपमान रे, वि॰
श्रुतिजड जे ब्रह्मा तेहनी, रचना छे सकल समान रे.वि॰ली॰१०

अर्थ—वेदपाठमें जड़ बने हुए (श्रुतिजड़=पोथीपंडित, व्यवहारशून्य पंडित) ब्रह्माने जगतमें जितनी चीजें बनाई है उन सबकी जोड़ (उपमा) मिलती है, अर्थात् उसके जैसी और चीज मिलती है इसलिये जिसके अंगसे सारी उपमाएँ जीती गई है अर्थात् सभी उपमाएँ दोषयुक्त हैं। जैसे सुंदर स्त्रीके मुखको चंद्रकी उपमा देते हैं, तो चंद्रमा तो कलंक सहित है इत्यादि। इन सभी उपमाओंसे परे उसकी सुंदरता है। ऐसी यह कन्या तो चतुरशिरोमणि कामदेवके द्वारा ही बनायी गई है, ब्रह्माने नहीं बनायी है यह सिद्ध होता है ॥१०॥

विस्तारार्थ—यहाँ कविने कल्पना करते हुए ब्रह्माको श्रुतिजड़ (पोथी-पंडित) बताया है। श्रुतिजड़का अर्थ है कि वेदपाठका निरंतर निर्घोष किये जाना परंतु अर्थका विचार नहीं करना। निरंतर वेदपाठका मुँहसे केवल पाठ करनेसे ब्रह्मा जड़ जैसा बन गया है। उसके द्वारा बनायी हुई सभी चीजोंमें एक-दूसरेके समान चीजें मिल जाती है अर्थात् वह सृष्टि बनानेमें चतुर नहीं है इसलिये भी उसे जड़ कहा है। दुनियामें भी केवल पाठ बोला करे किन्तु चिंतन न करे उसे पोथी-पंडित कहा जाता है।

इसके विपरीत कामदेवको चतुर कहा है। उसका कारण यह है कि जगतमें छोटेसे छोटे परमाणु जैसे छोटे मनमें भी वह प्रविष्ट हो सकता है और चित्तका हरण कर रोमरोममें फैल जाता है। इसके अलावा कामदेव महा-पंडितोंको भी वशमें कर लेता है इसलिये भी उसे चतुर कहा गया है।

दीहपीठे दंसी सा सुता, कीधा बहुविध उपचार रे, वि॰
मणि मंत्र औषध बहु आणियां, पण न थयो गुण तेहने लगार रे, वि॰
लीलावंत कुंअर भलो. ११

अर्थ—उस कुँवरीको दीर्घपृष्ट(सर्प)ने काटा है उसके लिये अनेक प्रकारके मणि, मंत्र और औषध लाये हैं और अनेक उपचार भी किये हैं, किन्तु उससे कुँवरीको लेशमात्र भी फायदा नहीं हुआ है ॥११॥

ते माटे दुःखे ते पीडियो, महसेन नृपति तस तात रे, वि॰
नवि आव्यो इहां ए कारणे, मत गणजो बीजो घात रे. वि॰ली॰१२

अर्थ—इस कारण दुःखसे पीड़ित होता हुआ उसका पिता महसेन राजा आपके पास आया नहीं है, इसलिये उसका कोई अन्य आपसे द्वेषभावरूप अपराध न मानियेगा ॥१२॥

www.jaintatvagyanshala.org

राजा कहे किहां छे दाखवो, तो कीजे तस उपगार रे, वि०
एम कही तुरगारूढ तिणे, दीठा जाता बहु नरनार रे. वि० ली०१३

अर्थ–ऐसा मंत्रीका कथन सुनकर श्रीपालराजा कहने लगा–वह मूर्छित कुँवरी कहाँ है ? सो बताइये ताकि उस पर उपकार किया जा सके। यों कहकर श्रीपालराजा अश्व पर आरूढ़ हुए। इतनेमें कई स्त्री-पुरुष वहाँसे पसार होते हुए दिखायी दिये ॥१३॥

समशाने लेई जाती जाणी, तिहां पहोतो ते नरनाह रे, वि०
कहे दाखो मुज हुं सज करुं, मूर्च्छितने म दियो दाह रे. वि०ली०१४

अर्थ–उस कुँवरीको स्मशान ले जाती जानकर श्रीपालराजा वहाँ पहुँचे और कहने लगे–मुझे वह कुँवरी बताइये ताकि मैं उसे स्वस्थ कर दूँ। (फिर कुँवरीको देखकर बोले–) अरे ! यह तो मूर्छित हुई है, मरी नहीं है, इसे अग्निदाह क्यों दे रहे हो ? (अर्थात् मूर्छितको अग्निदाह मत दो)। ॥१४॥

महियत मूकी ते थानके, करी हार नवण अभिषेक रे, वि०
सज करी सवि लोकना चित्तशुं, थई बेठी धरीय विवेक रे. वि०ली०१५

अर्थ–इस प्रकार कुँवरका कहना सुनकर उन्होंने अरथी (ठठरी) वहीं रख दी। तब कुँवरने हारके स्नात्रजलका अभिषेक कर कुँवरीको जिंदा किया जिससे वह कुँवरी विवेक धारण करते हुए खड़ी हो गई और सब लोगोंके चित्तमें आनंद हुआ ॥१५॥

महसेन मुदित कहे राजियो, वत्स ! तुजने ए शुं होत रे, वि०
जो नावत ए वडभागियो, न करत उपगार उद्योत रे. वि० ली० १६

अर्थ–यह देखकर हर्षित होते हुए महसेन राजा कुँवरीसे कहने लगा–हे वत्स ! ये महाभाग्यशाली पुरुष यहाँ न पधारे होते और उपकाररूप प्रकाश नहीं फैलाया होता, तो तेरी क्या हालत होती ? ॥१६॥

तुज प्राण दिया छे एहने, तुं प्राण अधिक छे मुज रे, वि०
एहने तुं देवी मुज घटे, ए जाण हृदयनुं गुज रे. वि० ली० १७

अर्थ–इस कुँवरने तुझे जिंदाकर प्राणदान दिया है और तू मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है अतः तू इस प्राणदाताको देना योग्य है। मेरे हृदयके इस गुप्त भावको तू जान ॥१७॥

स्निग्ध मुग्ध दृग देखतां, इम कहेतां ते श्रीपाल रे, वि०
मन चिंते महारा प्रेमनी, गति एहशुं छे असराल रे. वि०ली०१८

अर्थ—इस प्रकार राजाका कहना सुनकर स्नेहवाली, भोली (भद्रिक परिणामवाली) और रागदृष्टिसे श्रीपालकुँवरकी ओर देखती हुई राजकुमारी मनमें सोचने लगी—इस कुँवरके साथ मेरे प्रेमकी गति अकथ्य है, कही नहीं जा सकती ॥१८॥

जो प्राण कहुं तो तेहथी, अधिको किम लखिये प्रेम रे, वि०
कहुं भिन्न तो अनुभव किम मिले, अविरुद्ध उभय गति केम रे. वि०ली०१९

अर्थ—(ऊपरोक्त बातको विशेषतासे स्पष्ट करते हैं—) यदि इस कुँवरको मेरा प्राण कहूँ तो प्राणसे प्रेमको अधिक कैसे जान सकेंगे? (क्योंकि प्राण होंगे तभी प्रेम हो सकता है, तो प्राणसे प्रेम अधिक कैसे कहा जा सकता है?) और यदि प्राणसे प्रेमको भिन्न कहूँ तो अनुभवमें उसका मेल कैसे हो सकता है? (क्योंकि दोनों भिन्न कैसे मान सकते हैं? दोनोंको अभिन्न ही मानना पड़ेगा।) यों इन दोनोंकी (प्राण और प्रेमकी) अविरुद्ध गति कौनसी है? (भिन्न है या अभिन्न है?) यह समझा नहीं जा सकता। (अर्थात् मेरा स्नेह अगम्य है।) ॥१९॥

इम स्नेहल सा निज अंगजा, श्रीपाल करे दिये भूप रे, वि०
परणी सा आठे तस मली, दयिता अति अद्भुत रूप रे. वि०ली० २०

अर्थ—इस प्रकार अपनी पुत्रीको श्रीपाल पर प्रेमवाली देखकर महसेन राजाने श्रीपालकुँवरके हाथमें दे दी (अर्थात् ब्याह दी)। इस प्रकार श्रीपाल कुँवरके अद्भुत रूपवती आठ स्त्रियाँ हुई ॥२०॥

विस्तारार्थ—श्रीपाल कुँवरने उज्ञयिनी नगरीसे निकलकर विदेशमें आठ स्त्रियोंसे शादी की। उनके नाम अनुक्रमसे इस प्रकार है—(१) मदनसेना, (२) मदनमंजूषा, (३) मदनमंजरी, (४) गुणसुंदरी, (५) त्रैलोक्यसुंदरी, (६) शृंगारसुंदरी, (७) जयसुंदरी, (८) तिलकसुंदरी।

अडदिट्ठि सहित पण विरतिने, जिम वंछे समकितवंत रे, वि०
अड प्रवचन मात सहित मुनि, समताने जिम गुणवंत रे. वि० ली० २१

अर्थ—आठ दृष्टि सहित सम्यक्दृष्टि जीव जैसे नौवीं सर्वविरतिकी इच्छा करता है तथा आठ प्रवचन माता (पाँच समिति और तीन गुप्ति) सहित गुणवान् मुनि जैसे नौवीं समताको चाहता है, (तथा) ॥२१॥

अडबुद्धि सहित पण सिद्धिने, अडसिद्धि सहित पण मुक्ति रे, वि०
प्रिया आठ सहित पण प्रथमने, नित ध्यावे ते इण युक्ति रे. वि०ली०२२

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—आठ प्रकारकी बुद्धिसे युक्त होते हुए भी मुनि जैसे सिद्धिकी इच्छा करता है तथा आठ सिद्धि सहित मुनि जैसे नौवीं मोक्षसिद्धिकी इच्छा करता है, वैसे ही श्रीपालराजा आठ प्रियाओंके साथ होते हुए भी प्रथम पत्नी मयणासुंदरीका ही नित्य ध्यान करते थे, अर्थात् उससे मिलनेकी इच्छा मनमें सदा जागृत थी ॥२२॥

विस्तारार्थ—बुद्धिके आठ प्रकार—(१) शुश्रूषा, (२) श्रवण, (३) ग्रहण, (४) धारणा, (५) उह, (६) अपोह, (७) अर्थविज्ञान, (८) तवज्ञान। सिद्धिके आठ प्रकार—(१) अणिमा, (२) महिमा, (३) गरिमा, (४) लघिमा, (५) वशिता, (६) इशिता, (७) प्राकाम्य और (८) कामावसयित्व।

उत्कंठित चित्त तेहशुं, वळी जननीने नमवा हेज रे, वि°
श्रीपाल प्रयाणे पूरियो, देवरावे ढाका तेज रे. वि° ली° २३

अर्थ—अतः मयणासुंदरीको मिलनेके लिये उत्कंठित चित्तवाले और माताको नमन करनेके लिये आतुर ऐसे श्रीपालराजाने प्रयाणकी तैयारी की और तेजस्वी डंके पिटवाये ॥२३॥

हय गय रह भड मणि कंचणे, वळी सत्थ वत्थ बहु मूल रे, वि°
पग पग भेटीजे नृपवरे, तेहनुं चक्रवर्ती सम सूल रे. वि°ली°२४

अर्थ—हाथी, घोड़ा, रथ और पदाति सैन्य, मणि, सुवर्ण, शस्त्र तथा बहुमूल्य वस्त्र आदि भेटसे कदम-कदम पर श्रेष्ठ राजाओं द्वारा स्वागत कराते हुए श्रीपालकुँवरका पराक्रम चक्रवर्तीके समान शोभित हो रहा था ॥२४॥

तस सैन्य भरे भारित मही, अहिपति फण मणिगण प्रोत रे, वि°
तेणे गिरि पण जाणुं नवि गिरिया, शशि सूर नयण विधि जोत रे. वि°
लीलावंत कुंअर भलो. २५

अर्थ—(यहाँ कवि कल्पना करता है कि)—उस श्रीपालकुँवरके सैन्यके बोझसे दबी हुई पृथ्वी शेषनागकी फनोंके मणियोंके समूहसे पिरोयी गयी हो ऐसा लगता है। इससे पर्वत भी गिर न पड़े, इसलिये मानो ब्रह्मा, चंद्र और सूर्यरूपी दो नेत्रोंसे श्रीपालकुँवरके सैन्यको देखने लगे ॥२५॥

विस्तारार्थ—यहाँ कल्पना इस प्रकार है। यद्यपि पृथ्वी शेषनागकी फन पर रही हुई नहीं है। फिर भी कवि कल्पना करता है कि पृथ्वी पर श्रीपाल राजाके सैन्यका इतना सारा बोझ आया कि जिससे पृथ्वी शेषनागकी फन पर थी, उन फनोंके मणि पृथ्वीमें धँस गये अर्थात् पृथ्वी फनके मणियोंसे पिरोयी

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

गयी, और इस कारणसे सैन्य एक ओर होते हुए भी पृथ्वी एक भी दिशामें झुकी नहीं। इसलिये पृथ्वी परके पर्वत गिरे नहीं। यदि पृथ्वी मणियोंसे पिरोयी गयी न होती तो एक दिशामें झुक जाती, तो उस परके पर्वत भी गिर जाते।

यह आश्चर्य देखकर ब्रह्माको भी लगा कि अच्छा हुआ, क्योंकि यदि पृथ्वी शेषनागके फनके मणियोंसे पिरोयी न जाती और श्रीपालके सैन्यके बोझसे यह पृथ्वी झुक गयी होती तो मेरी बनायी हुई सृष्टि (पृथ्वी) की विषमता हो जाती। इस प्रकार ब्रह्मा आश्चर्यचकित होकर श्रीपालके सैन्यको चंद्र और सूर्यरूपी नेत्रोंसे हमेशा रात-दिन देखने लगा सो आज दिन तक देखा ही करता है। संक्षेपमें सारांश यह कि श्रीपालका सैन्य बहुत ही बड़ा था।

महरठ सोरठ मेवाडना, वळी लाट भोटना भूप रे, वि०
ते आव्यो सघला साधतो, मालवदेशे रवि रूप रे. वि० ली० २६

अर्थ—महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, मेवाड़, लाट और भोट देशके सर्व राजाओंको खिराज देनेवाले राजा बनाता हुआ अर्थात् अपने आधीन करता हुआ सूर्य जैसा तेजस्वी श्रीपालकुँवर अनुक्रमसे मालवा देशमें आया ॥२६॥

आगमन सुणी परचक्रनुं, चरमुखथी मालवराय रे, वि०
भयभीत ते गढने सज करे, तेहनुं नवि तेज खमाय रे. वि०ली०२७

अर्थ—उस समय मालवदेशका राजा दूतके मुँहसे दूसरे राजाके सैन्यका आगमन सुनकर भयभीत हुआ और गढ़की सुरक्षाके लिये गढ़को सारी सामग्रीसे सज्ज करने लगा, क्योंकि उससे उसका तेज सहन नहीं होता था ॥२७॥

कप्पड चुप्पड तृण कण घणां, संग्रहे ते इंधण नीर रे; वि०
सन्नद्ध होय ते सुभट वडा, कायर कंपे नहीं धीर रे. वि०ली०२८

अर्थ—उस राजाने कपड़े, तेल, घास, अनाज, लकड़ी, पानी आदि (जीवन-निर्वाहके लिये सभी आवश्यक सामग्री) का संग्रह कर लिया। बड़े सुभट लड़ाईके लिये तैयार हो गये। कायर पुरुष युद्धकी आशंकासे काँप रहे थे, परन्तु धीर पुरुष डरते नहीं थे ॥२८॥

इम उज्जेणी हुई नगरने, लोके संकीर्ण समीप रे; वि०
वींटी श्रीपाळ सुभटे तदा, जिम जलधि अंतरद्वीप रे. वि० ली० २९

अर्थ—इस प्रकार उज्ञयिनी नगरी आसपास रहनेवाले लोगोंकी भीड़से संकीर्ण हो गयी, क्योंकि जिस प्रकार चारों ओरसे समुद्रके बीचमें रहा हुआ

www.jaintatvagyanshala.org

द्वीप वेष्टित (अवरुद्ध) हो जाता है उसी प्रकार श्रीपालराजाके सुभटोंने उस समय उज्जयिनी नगरीको घेर लिया था ॥२९॥

डेरा दीधा सवि सैन्यना, पहेलो हुओ रजनी जाम रे, वि०
जननी घर पहोतो प्रेमशुं, नृप हार प्रभावे ताम रे. वि० ली० ३०

अर्थ—वहाँ नगरीके बाहर सारे सैन्यके लिये तंबू लगवाये गये। फिर जब रात्रिका प्रथम प्रहर हुआ तब श्रीपालराजा हारके प्रभावसे प्रेमसहित माताके घर पहुँच गया ॥३०॥

ढाळ पूरी थई आठमी, पूरण हुओ त्रीजो खंड रे, वि०
होय नवपद विधि आराधतां, जिम विनय सुयश अखंड रे. वि० ली० ३१

अर्थ—महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल राजाके रासकी आठवीं ढाल संपूर्ण हुई और इसके साथ ही तीसरा खंड भी पूरा हुआ। विधि सहित श्री नवपदजीकी आराधना करनेसे और जिनेश्वर देवकी भक्ति करनेसे विनययुक्त अखंड यशकी प्राप्ति होती है। (इसमें परोक्ष रूपसे यशोविजयजीने अपने गुरु भ्राता और इस श्रीपालराजाके रासके आरंभकर्त्ता श्री विनयविजयजीका नाम भी दर्शाया है।) ॥३१॥

तृतीय खंडकी आठवीं ढाल समाप्त

चौपाई छंद

खंड खंड मीठाई घणी, श्री श्रीपाळ चरित्रे भणी,
ए वाणी सुरतरु वेलडी, किसी द्राक्ष ने किसी शेलडी. १

अर्थ—श्रीपाल चरित्रके रासके प्रत्येक खण्डमें बहुत बहुत मिठाश भरी हुई है। यह श्री जिनेश्वरदेवकी वाणी कल्पवृक्षकी बेलके समान मनोवांछित पूर्ण करनेवाली है, इसलिये इस वाणीके आगे द्राक्षकी मिठाश और गन्नेकी मिठाश क्या हिसाबमें है?

इति श्रीमन्महोपाध्याय श्री कीर्तिविजयजी गणिके शिष्य उपाध्याय श्री विनयविजयजी गणिका अधूरा रहा हुआ और महोपाध्याय श्री यशोविजयजी गणि द्वारा पूर्ण किया हुआ श्री सिद्धचक्रजीकी महिमाके अधिकारमें विमलेश्वर देव द्वारा श्रीपालको हारकी प्राप्ति, मनको इष्ट छ कन्याओंका पाणिग्रहण तथा सर्व सैन्य सहित उज्जयिनी नगरीकी ओर आगमन आदि वर्णनवाला यह तृतीय खण्ड पूर्ण हुआ।

तृतीय खंड संपूर्ण

चतुर्थ खंड

दोहा छंद

त्रीजो खंड अखंड रस, पूरण हुओ प्रमाण,
चोथो खंड हवे वर्णवुं, श्रोता सुणो सुजाण. १

अर्थ–(कवि कहते हैं कि–) इस प्रकार अखंड रसवाला तीसरा खण्ड प्रमाणसहित पूर्ण हुआ। अब मैं चौथे खंडका वर्णन करता हूँ सो हे सुज्ञ श्रोताजन ! सुनिये ।।१।।

शीश धुणावे चमकियो, रोमांचित करे देह,
विकसित नयन वदन मुदा, रस दिये श्रोता तेह. २

अर्थ–(अब श्रोताजन कैसे होने चाहिये सो कहते हैं–) जो मनुष्य (गुरुका वचन) सुनकर चमत्कृत होता हुआ मस्तक हिलावे, शरीरको रोमांचित करे, विकस्वर नेत्रवाला हो, प्रसन्न मुँहवाला हो और वक्ताको रस दे, वह श्रोता कहलाता है ।।२।।

जाणज श्रोता आगले, वक्ता कला प्रमाण,
ते आगे घन शुं करे, जे मगसेल पाषाण. ३

अर्थ–ऐसे सुज्ञ श्रोताके आगे ही वक्ताकी हुंशियारी प्रमाणभूत अर्थात् सफल है। जैसे मगसेल पथ्थरके आगे पुष्करावर्त्तका मेघ क्या करेगा ? उसी तरह (वक्ताकी कलाको न समझे ऐसे श्रोताके आगे) वक्ताकी कला भी बेकार हैं ।।३।।

दर्पण अंधा आगले, बहिरा आगल गीत,
मूरख आगे रसकथा, त्रणे एक ज रीत. ४

अर्थ–जैसे अंधेके आगे दर्पण, बहरेके आगे गीत-गान करना वैसे ही मूर्खके आगे रसमय कथा कहना–ये तीनों एक जैसे हैं अर्थात् व्यर्थ है ।।४।।

ते माटे सज थई सुणो, श्रोता दीजे कान,
बूझे तेहने रीझवुं, लक्ष न भूले ग्यान. ५

अर्थ–इसलिये हे श्रोताजन ! आप कान देकर बराबर सावधान होकर सुनिये, क्योंकि जो मेरे कथनको समझ सकेगा उसे ही मैं खुश कर सकूँगा। सचमुच ! "ज्ञानी मनुष्य अपने लक्ष्य-साध्यको नहीं भूलता।" ।।५।।

आगे आगे रस घणो, कथा सुणंता थाय,
हवे श्रीपाल चरित्रना, आगे गुण कहेवाय. ६

अर्थ—यह कथा आगे आगे सुननेमें बहुत रसप्रद है। इसलिये अब आगे श्रीपालके चरित्रके गुणोंका वर्णन शुरू करते हैं ॥६॥

ढाल पहली

(धन्य दिन वेला धन्य घडी तेह—ए देशी)

रहियो रे आवास दुवार, वयण सुणे श्रीपाल सोहामणोजी,
कमलप्रभा रे कहे एम, मयणां प्रति मुज चित्त ए दुःख घणोजी. १

अर्थ—सुहावना श्रीपालकुँवर अपने घरके द्वार पर खड़ा था और सुन रहा था। उस समय कमलप्रभा माता मयणासुंदरीसे कह रही थी—मेरे मनमें यह एक बड़ा दुःख है, क्योंकि— ॥१॥

वींटी छे ए परचक्र, नगरी सघलोई लोक हिल्लोलियोजी,
शी गति होशे इण ठाम, सुतने सुख होजो बीजी घोलियोजी. २

अर्थ—दुश्मन राजाके सैन्यने इस नगरीको घेर लिया है, जिससे नगरके सब लोग हाहाकार कर रहे हैं, तो यहाँ अपनी क्या हालत होगी? अरे! अन्य सभी चीजें भले चली जाय! किन्तु मेरे पुत्रको सुख होओ! ॥२॥

घणा रे दिवस थया तास, वालिंभ तुज जे गयो देशान्तरेजी,
हजीय न आवी कांई शुद्धि, जीवे रे माता दुःखणी किम नवि मरेजी. ३

अर्थ—हे पुत्रवधू! तेरे प्रिय पतिको परदेश गये बहुत दिन हो गये हैं परन्तु अभी तक उसके कोई समाचार आये नहीं है; फिर भी यह दुःखिया माता जिंदा है, किन्तु मरती क्यों नहीं? ॥३॥

मयणा रे बोले म करो खेद, म धरो रे भय मनमां परचक्रनोजी,
नवपद ध्याने रे पाप पलाय, दुरित न चारो छे ग्रह वक्रनोजी. ४

अर्थ—तब मयणासुंदरी कहने लगी—हे सासुजी! आप किंचित् भी खेद न करे, और शत्रुके सैन्यका भय भी मनमें धारण न करे; क्योंकि नवपदजीके ध्यानसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, और वक्र ग्रहोंकी दुष्ट चाल भी नहीं रहती ॥४॥

अरि करि सागर हरि ने व्याल, ज्वलन जलोदर बंधन भय सवेजी,
जाय रे जपतां नवपद जाप, लहे रे संपत्ति इह भव परभवेजी. ५

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—शत्रु, हाथी, समुद्र, सिंह, सर्प, दावानल, जलोदर, बंधन आदि सभी भय नवपदजीका जप करनेसे चले जाते हैं, तथा (नवपदजीका जप करनेवाला) इस भवमें और परभवमें भी संपत्तिको प्राप्त करता है ।।५।।

बीजां रे खोजे कोण प्रमाण, अनुभव जाग्यो मुज ए वातनोजी,
हुओ रे पूजानो अनुपम भाव, आज रे संध्याए जगतातनोजी. ६

अर्थ—फिर हे सासुजी ! जब शत्रुका भय उत्पन्न हुआ है तब कुंडली, भविष्यकथन आदि लौकिक प्रमाणको कौन खोजेगा ? क्योंकि मुझे तो उस बातका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। और आज संध्याके समय जगतके स्वामीकी पूजा करते वक्त, किसीसे उपमा न दी जा सके ऐसा अनुपम भाव उत्पन्न हुआ था ।।६।।

तद्‌गत चित्त समय विधान, भावनी वृद्धि भव भय अति घणोजी,
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान, लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणोजी. ७

अर्थ—इसके अलावा, जो कुछ धर्म क्रिया करते हो उसीमें एकाग्रता, शास्त्रमें कहे अनुसार करनी चाहिये; भावकी वृद्धि हो, भव(संसार)का अत्यंत भय हो तथा क्रियाके रससे चित्त विस्मयको प्राप्त हो, रोम खड़े हो जाय ऐसे रोमांचित हो, अत्यंत हर्ष उत्पन्न हो—ये अमृत क्रिया (श्रेष्ठ क्रिया) के लक्षण हैं ।।७।।

अमृतनो लेश लह्यो इक वार, बीजुं रे औषध करवुं नवि पडेजी,
अमृतक्रिया तिम लहि एक वार, बीजा रे साधन विण शिव नहि अडेजी. ८

अर्थ—जैसे रोगी मनुष्य एक बार भी अमृतका एक बिंदु भी प्राप्त कर ले तो फिर उसे अन्य कडुवे औषध लेने नहीं पडते; वैसे ही यदि एक बार भी अमृत क्रिया हो जाय तो अन्य साधन न भी करे तो भी उसे मोक्षगमनमें कोई विघ्न नहीं करता, अर्थात् कोई रोक नहीं सकता ।।८।।

एहवो रे पूजामां मुज भाव, आव्यो रे भाव्यो ध्यान सोहामणोजी,
हजिय न माये मन आणंद, खिण खिण होय पुलक निःकारणोजी. ९

अर्थ—इस प्रकारका उत्तमोत्तम भाव हे सासुजी ! मुझे आज पूजामें आया था और उस वक्त मैंने सुंदर ध्यानपूर्वक भावना भायी थीं, इस कारण मुझे प्रतिक्षण निष्कारण हर्ष उत्पन्न हो रहा है और अभी भी वह आनंद मेरे हृदयमें समाता नहीं है ।।९।।

www.jaintatvagyanshala.org

फूरके रे वाम नयन ने उरोज, आज मिले छे वालिंभ माहरोजी,
बीजुं रे अमृतक्रिया सिद्धि रूप, तुरत फले छे तिहां नहि आंतरोजी. १०

अर्थ—फिर मेरी बायी आँख और बायाँ स्तन भी फड़क रहा है, इससे मुझे आज मेरे पति मिलेंगे, क्योंकि कार्यकी तुरत सिद्धि करनेवाली अमृत क्रिया प्राप्त हुई है जो तुरत फलीभूत होती है, इसमें कोई भेद नहीं है ॥१०॥

कमलप्रभा कहे वत्स साच, ताहरी रे जीभे अमृत वसे सदाजी,
ताहरुं रे वचन होशे सुप्रमाण, त्रिविध प्रत्यय छे तें साध्यो मुदाजी. ११

अर्थ—तब कमलप्रभा माता कहने लगी कि हे वत्स! तेरी बात सच्ची है, क्योंकि तेरी जीभ पर हमेशा अमृत रहता है। फिर तेरा वचन सत्य सिद्ध होगा, क्योंकि तूने हर्षपूर्वक मन-वचन-काया इन तीनों योगोंकी साक्षीसे धर्मकी आराधना की है ॥११॥

करवा रे वचन प्रियानुं साच, कहे रे श्रीपाल ते बार उघाडियेजी,
कमलप्रभा कहे ए सुतनी वाणी, मयणा कहे जिनमत न मुधा हुयेजी. १२

अर्थ—उस समय प्रियाके वचनको सत्य साबित करनेके लिये ही श्रीपालकुँवरने कहा—दरवाजा खोलिये। यह सुनकर माता कमलप्रभा कहने लगी कि यह वाणी मेरे पुत्रकी है। तब मयणा बोली कि जिनेश्वर भगवानका मत कभी भी असत्य नहीं होता ॥१२॥

उघाडियां बार नमे श्रीपाल, जननीनां चरणसरोज सुहंकरुजी,
प्रणमी रे दयिता विनय विशेष, बोलावे तेहने प्रेम मनोहरुजी. १३

अर्थ—फिर दरवाजा खोला, तब श्रीपालकुँवरने आकर सुखदायक माताके चरणकमलमें प्रणाम किया। फिर मयणासुंदरीने विशेष विनयपूर्वक पतिको प्रणाम किया, तब श्रीपालकुँवरने उसे मनोहर स्नेह वचनसे बुलायी ॥१३॥

जननी रे आरोपी निज खंध, दयिता रे निज हाथे लेई रागशुंजी,
पहोतो रे हार प्रभावे राय, शिबिर आवासे उलसित वेगशुंजी. १४

अर्थ—फिर श्रीपालराजा अपनी माताको कंधे पर और पत्नीको स्नेहपूर्वक अपने हाथमें लेकर हारके प्रभावसे उत्साहपूर्वक शीघ्रतासे अपने शिबिरके आवासमें पहुँच गया ॥१४॥

बेसाडी रे भद्रासने नरनाथ, जननीने प्रेमे इणि परे विनवेजी,
माताजी देखो ए फल तास, जपियां में नवपद जे सुगुरु दियांजी. १५

अर्थ–फिर श्रीपालराजा अपनी माताको सिंहासन पर बिठाकर प्रेमपूर्वक इस प्रकार विनती करने लगा–हे माताजी! सुगुरु भगवंत द्वारा दिये हुए नवपदजीका जप मैंने किया उसका यह फल है सो आप देखिये ॥१५॥

वहुरो रे आठे लागी पाय, सासुने प्रथम प्रिया मयणातणेजी,
तेहनी रे शीश चढावी आशिष, मयणा रे आगे वात सकल भणेजी. १६

अर्थ–तब आठों पुत्रवधूओंने भी प्रथम सासुजीको और फिर मयणासुंदरीको प्रणाम किया और उनकी दी हुई आशिष शिरोधार्य की। फिर आठों स्त्रियोंने देशांतरकी सारी बातें मयणाके आगे बयान की ॥१६॥

पूछे रे मयणाने श्रीपाल, ताहरो रे तात अणावुं किण परेजी,
सा कहे कंठे धरिय कुहाड, आवे तो कोई आशातना नवि करेजी. १७

अर्थ–फिर श्रीपालराजाने मयणासुंदरीसे पूछा–तेरे पिताको यहाँ किस प्रकार बुलाऊँ? तब मयणासुंदरी कहने लगी–यदि मेरे पिता गले पर कुल्हाड़ी रखकर आये तो फिर कोई भी मनुष्य जैनधर्मकी आशातना नहीं करेगा, इसलिये इस प्रकार बुलाइये ॥१७॥

कहेराव्युं दूत मुखे तिण वार, श्रीपाले ते राजाने वयणडुंजी,
कोप्यो रे मालवराजा ताम, मंत्री रे कहे नवि कीजे एवडुंजी. १८

अर्थ–तत्पश्चात् श्रीपालराजाने दूतके द्वारा इस प्रकारका संदेश प्रजापाल राजाके पास भेजा। यह सुनकर मालवदेशका राजा अत्यंत कोपायमान हुआ। तब मंत्रीने कहा–आपको इतना सारा क्रोध न करना चाहिये ॥१८॥

चोथे रे खंडे पहेली ढाळ, खंडसाकरथी मीठी ए भणीजी,
गाये जे नवपद सुजस विलास, कीरति वाधे जगमां तेह तणीजी. १९

अर्थ–ग्रंथकार महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि–मिसरीके टुकड़ेसे भी अत्यंत मधुर ऐसी यह चौथे खंडकी प्रथम ढाल कही। जो प्राणी नवपदजीके सुंदर यशको विलासके साथ गाता है उस प्राणीकी जगतमें कीर्ति वर्धमान होती है ॥१९॥

चतुर्थ खंडकी प्रथम ढाल समाप्त

दोहा छंद

मंत्री कहे नवि कोपिये, प्रबल प्रतापी जेह,
नाखीने शुं कीजिये, सूरज सामी खेह. १

अर्थ—अब मंत्रीश्वर राजासे कहने लगा—हे स्वामिन्! जो बलवान और प्रतापी मनुष्य हो उसके ऊपर किसलिये क्रोध करना? क्योंकि तीक्ष्ण ताप देनेवाले सूर्यके सामने धूल डालकर क्या करेंगे? अर्थात् उसके तापको रोकनेके लिये डाली हुई धूल अपने ही ऊपर गिरती है, उसी तरह प्रतापी पुरुष पर क्रोध करनेसे अपना ही नुकसान होता है ॥१॥

उद्धत उपरे आथड्युं, पसरंतु पण धाम,
उल्हाए जिम दीपनुं, लागे पवन उद्दाम. २

अर्थ—हे राजन्! अंधकारसे टकरानेवाला और फैलता हुआ भी दीपकका तेज उत्कट पवन लगनेसे बूझ जाता है ॥२॥

विस्तारार्थ—यहाँ मंत्रीश्वर राजाको समझा रहा है कि जैसे अंधकार हो, वहाँ दीपकका प्रकाश फैलकर अंधकारको दूर करता है, परंतु वह दीपकका प्रकाश भी उत्कट पवन लगनेसे नष्ट हो जाता है; उसी प्रकार आपका तेज अन्य सामान्य राजाओंके ऊपर गिरनेसे वे सब आपके आधीन हुए हैं, आपकी शरणमें आये हैं इसलिये आप तेज समान है; परंतु यह राजा उत्कट पवन जैसा है, इसलिये उसके सामने जानेसे अर्थात् विरुद्ध होनेसे आपका तेज नष्ट हो जायेगा, अतः उसकी शरणमें जाना ही उचित है।

जे किरतारे वडा किया, तेहशुं न चले रीश,
आप अंदाजे चालिये, नामीजे तस शीश. ३

अर्थ—जिस दैव (प्रारब्ध) ने बड़ा बनाया है उसके सामने गुस्सा करनेसे कुछ नहीं होगा। इसलिये हमें अपनी शक्तिके अनुसार चलना चाहिये और उन्हें मस्तक नवाना चाहिये ॥३॥

दूत कहे ते कीजिए, अनुचित करे बलाय,
जेहनी वेला तेहनी, रक्षा एह ज न्याय. ४

अर्थ—हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि यह दूत कहता है ऐसा हम क्यों करें? अनुचित काम करे मेरी बला, अर्थात् अनुचित काम हम किसलिये करें? न्याय तो यही है कि जिसका समय अनुकूल हो उसकी रक्षा करनी चाहिये, अर्थात् जिसका प्रारब्ध बलवान हो तदनुसार हमें चलना चाहिये। समय देखकर चलना चाहिये, क्योंकि कहा भी है— "जैसा बाजे वायरा तैसी लीजे ओट" ॥४॥

एहवां मंत्री वयण सुणी, धरी कुहाडो कंठ,
मालव नरपति आवियो, शिबिरतणे उपकंठ. ५

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—इस प्रकार मंत्रीश्वरके वचन सुनकर मालवपति प्रजापाल राजा कंधे पर कुल्हाड़ी रखकर श्रीपालराजाकी छावनीके पास आया ॥५॥

ते श्रीपाल छोडावियो, पहिराव्यो अलंकार,
सभा मध्ये तेड्यो नृपति, आप्युं आसन सार. ६

अर्थ—उसे देखकर तुरत श्रीपालराजाने उनके कंधे परसे कुल्हाड़ी नीचे रखवायी और आभूषण पहनाये तथा सभामें बुलाकर उन्हें बैठनेके लिये उत्तम सिंहासन दिया ॥६॥

तव मयणा निज तातने, कहे बोल जे मुज्ज;
कर्मवशे वर तुमे दियो, तेहनुं जुओ ए गुज्ज. ७

अर्थ—तब मयणासुंदरी अपने पिता प्रजापाल राजासे कहने लगी—हे पिताजी! 'जो कर्म करता है वही होता है' ऐसे मेरे जो वचन थे और उन वचन पर आपने मुझे जो पति दिया था, उस पतिदेवका भाग्य आप देखिये ॥७॥

तव विस्मित मालव नृपति, जामाउल प्रणमंत,
कहे न स्वामि तुं ओळख्यो, गिरुओ बहु गुणवंत. ८

अर्थ—तब विस्मित हुआ मालवदेशका प्रजापाल राजा जँवाईको प्रणाम कर कहने लगा—हे स्वामिन्! अनेक गुणोंके भंड़ार और महान ऐसे आपको मैंने पहचाना नहीं ॥८॥

कहे श्रीपाल न माहरो, एहवो एह बनाव,
गुरु दर्शित नवपद तणो, ए छे प्रबल प्रभाव. ९

अर्थ—इस प्रकार सुनकर श्रीपालराजा बोला—इसमें मेरी कुछ करामात नहीं है, परंतु गुरुमहाराजने जो बताया था उस नवपदजीका यह महाप्रभाव है ॥९॥

ते अचरिज निसुणी मिल्यो, तिहां विवेक उदार,
सौभाग्यसुंदरी रूपसुंदरी, प्रमुख सयल परिवार. १०

अर्थ—ऐसी आश्चर्यकारी बातें सुनकर महा विवेकी ऐसी सौभाग्यसुंदरी और रूपसुंदरी आदि सारा परिवार वहाँ एकत्र हुआ ॥१०॥

स्वजन वर्ग सघलो मिल्यो, वरत्यो आणंद पूर,
नाटक कारण आदिशे, श्री श्रीपाल सनूर. ११

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—इस प्रकार सारा स्वजन वर्ग एकत्र होनेसे वहाँ आनंद-आनंद फैल गया। उस आनंदमें वृद्धि करनेके लिये तेजवंत (महाप्रतापी) श्रीपाल राजाने नाटक करनेके लिये नृत्यकारोंको आज्ञा दी ॥११॥

ढाल दूसरी

(होजी लुंबे झुंबे वरसेलो मेह, आज दहाडो धरणी त्रीज रे हो लाल—ए देशी)

होजी पहेलुं पेडुं ताम, नाचवा उठे आपणी हो लाल,
होजी मूल नटी पण एक, नवि उठे बहु परे भणी हो लाल. १

अर्थ—अब नाटक करनेके लिये प्रथम नाट्यमंडली नाचनेके लिये स्वेच्छासे खड़ी हुई, परंतु उसमें जो मुख्य नटी थी वह अनेक प्रकारसे कहने पर भी ऊठ नहीं रही थी ॥१॥

होजी उठाडी बहु कष्ट, पण उत्साह न सा धरे हो लाल,
होजी हा हा करी सविषाद, दुहो एक मुख उच्चरे हो लाल. २

अर्थ—तब उसे बहुत प्रयत्नपूर्वक खड़ी की फिर भी वह नटी मनमें जरा भी उत्साहित नहीं लग रही थी और दुःखके साथ "हाय! हाय!' शब्द बोलकर मुँहसे यह दोहा कहने लगी— ॥२॥

दोहा

किहां मालव किहां शंखपुर, किहां बब्बर किहां नट्ट,
सुरसुंदरी नचाविये, दैवे दळ्यो विमरट्ट. ३

अर्थ—(जब मुख्य नटी सुरसुंदरीको बड़ी जबरजस्तीसे नाटक करनेके लिये उठाया गया, तब उसने गहरा निःश्वास लेकर एक दोहेसे अपना दुःख प्रकट किया—) अहो! कहाँ मेरा मालवदेशमें जन्म? कहाँ शंखपुरके स्वामीके साथ विवाह? कहाँ बब्बरकुलमें मेरा बिका जाना? और नाटक करना सीखना? हाय! हाय! भाग्य (कर्म) ने मेरा सारा अभिमान मिट्टीमें मिला दिया और मुझे नर्तकी बनाया ॥३॥

होजी वचन सुणी तव तेह, जननी जनकादिक सवे हो लाल,
होजी चिंते विस्मित चित्त, सुरसुंदरी किम संभवे हो लाल. ४

अर्थ—इस प्रकारके उसके वचन सुनकर माता-पिता आदि सभी मनमें विस्मित चित्तवाले होते हुए सोचने लगे कि अहो! यह अपनी पुत्री सुरसुंदरी होगी क्या? (परन्तु वह ऐसी स्थितिमें कहाँसे?) ॥४॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

होजी जननी कंठ विलग्ग, पूछी जनके रोवती हो लाल,
होजी सघलो कहे वृत्तंत, जे ऋद्धि तुमे दीधी हती हो लाल. ५

अर्थ—इतनेमें सुरसुंदरी रोती-रोती आकर अपनी माताके गले लिपट गयी। तब रोती हुई अपनी पुत्रीसे राजाने दुःखी स्थितिका कारण पूछा, तब वह सुरसुंदरी सारी हकीकत कहने लगी—हे पिताजी! आपने मुझे जो सर्व संपत्तिके साथ बिदा की थी (उसके बाद क्या हुआ सो वह अब कहती है कि—) ॥५॥

होजी हुं ते ऋद्धि समेत, शंखपुरीने परिसरे हो लाल,
होजी पहोती मुहूरत हेत, नाथ सहित रही बाहिरे हो लाल. ६

अर्थ—उस सर्व ऋद्धिके साथ मैं शंखपुर नगरीके पास पहुँच गयी, किन्तु अच्छा मुहूर्त्त न होनेसे प्रवेशके शुभ मुहूर्त्तकी प्रतीक्षामें पतिके साथ नगरीके बाहर उद्यानमें रात्रिवास किया ॥६॥

होजी सुभट गया केई गेह, छोछे साथे निशा रही हो लाल,
होजी जामाता तुज नट्ठ, धाडी पडी तिहां हुं ग्रही हो लाल. ७

अर्थ—वहाँ कुछ सुभट तो अपने-अपने घर चले गये और हम कुछ सुभटोंके साथ रातको वहाँ रहे। इतनेमें वहाँ डाकूओंने डाका डाला, जिससे आपके जँवाई अपनी जान बचानेके लिये भाग गये और मैं उन डाकूओंके हाथों पकड़ी गयी ॥७॥

होजी वेची मूल्ये धाडि, सुभटे देश नेपालमां हो लाल,
होजी सारथवाहे लीध, फले लख्युं जे भालमां हो लाल. ८

अर्थ—उन डाकूओंने मुझे नेपाल देशमें धन लेकर बेच दिया। वहाँ एक सार्थवाहने मूल्य देकर मुझे खरीदा। अहो! जो ललाटमें लिखा होता है उसीके अनुसार ही होता है—लिखे लेख फलीभूत होते हैं ॥८॥

होजी तेणे बब्बर कुल, महाकाल नगरे धरी हो लाल,
होजी हाटे वेची वेश, लेई शीखावी नटी करी हो लाल. ९

अर्थ—फिर उस सार्थवाहने महाकाल राजाके बब्बरकुल नगरमें वेश्याकी दूकानमें मुझे बेचा, और वेश्याने मुझे नृत्यकला सिखाकर नटी बनाया ॥९॥

होजी नाटकप्रिय महाकाल, नृप नटपेटकशुं ग्रही हो लाल,
होजी विविध नचावी दीध, मयणसेनापतिने सही हो लाल. १०

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–बादमें नाटकके महाशौकीन महाकाल राजाने नाटकमंडलियाँ खरीदी, उनमें मैं भी खरीदी गयी। फिर उसने मेरे पास अनेक प्रकारके नृत्य कराये। फिर महाकाल राजाने अपनी पुत्री मदनसेनाके विवाहके उपलक्षमें मदनसेनाके पतिको दहेजमें मुझे (नव नाट्य मंडलियोंके साथ) दे दिया ॥१०॥

होजी नाटक करतां तास, आगे दिन केता गया हो लाल,
होजी देखी आप कुटुंब, उलस्युं दुःख तुम हुई दया हो लाल. ११

अर्थ–फिर हे पिताजी! उस मदनसेनाके पतिके समक्ष नाटक करते हुए बहुत दिन बीत गये। किन्तु आज अपना सारा कुटुंब देखकर मेरा दुःख उमड़ पड़ा। और आप सबको मुझ पर दया आई ॥११॥

होजी मयणा दुःख तव देखी, निज गुरुअत्तण मद कियो हो लाल,
होजी ते मयणापतिदास, भावे अब मुझ सलकियो हो लाल. १२

अर्थ–जब आपने मुझे ब्याहा था तब मयणाके दुःखको देखकर मैंने अपनी बड़ाईका जो गर्व किया था, वह गर्व आज मुझे मयणासुंदरीके पतिकी दासीके रूपमें प्रकट हुआ, अर्थात् उस अभिमानसे आज मुझे मयणाके पतिकी दासी होना पड़ा ॥१२॥

होजी एक ज विजयपताक, मयणा सयणामां लहे हो लाल,
होजी तेहनुं शील सलील, महिमाये मृगमद महमहे हो लाल. १३

अर्थ–(अब सुरसुंदरी मयणासुंदरीकी प्रशंसा और स्वनिंदा करती हुई कहती है कि–) सचमुच! मयणासुंदरीने स्वजनवर्गमें एक विजयपताका प्राप्त की है, क्योंकि उसके शीलव्रतकी सुगंध कस्तूरीकी तरह सारे जगतमें महक रही है ॥१३॥

होजी मयणाने जिनधर्म, फलियो बलियो सुरतरु हो लाल,
होजी मुज मने मिथ्याधर्म, फलियो विषफल विषतरु हो लाल. १४

अर्थ–मयणासुंदरीका आराधित बलवान जैन धर्म आज कल्पवृक्षकी तरह उसे फलीभूत हुआ है और मेरा मिथ्याधर्म आज मुझे विषवृक्षके विषफलकी तरह फलीभूत हुआ है ॥१४॥

होजी एक ज जलधि उप्पन्न, अमिय विषे जे आंतरो हो लाल,
होजी अम बिहुं बहेनी मांहि, तेह छे मत कोई पांतरो हो लाल. १५

अर्थ–जैसे एक ही समुद्रमेंसे उत्पन्न अमृत और विषमें जो अंतर होता है वैसे एक ही कुलमें और एक ही घरमें उत्पन्न हम दोनों बहनोंमें भी वैसा ही

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अंतर है। इस बातमें कुछ भी भेद नहीं है, अर्थात् मयणासुंदरी अमृत जैसी है और मैं विष जैसी हूँ ॥१५॥

होजी मयणा निज कुल लाज, उद्योतक मणि दीपिका हो लाल,
होजी हुं छुं कुलमल हेतु, सघन निशानी झीपिका हो लाल. १६

अर्थ–मयणासुंदरी अपने कुलकी लाजको प्रकाशित करनेमें अर्थात् प्रतिष्ठाको बढ़ानेमें मणिरत्नोंकी दीपिका जैसी है और मैं कुलको मलिन करनेमें मेघसहित अंधारी रात्रिको भी जीत लूँ वैसी (लज्जास्पद) हूँ; अर्थात् मयणासुंदरी कुलको उजालनेमें मणिमय दीपक जैसी है और मैं कुलको लजानेमें घनघोर रात्रि जैसी हूँ ॥१६॥

होजी मयणा दीठे होय, समकित शुद्धि सोहामणी हो लाल,
होजी मुज दीठे मिथ्यात, धिठाई होये अति घणी हो लाल. १७

अर्थ–मयणासुंदरीको देखनेसे सुंदर सम्यक्त्वकी शुद्धि होती है और मुझे देखनेसे मिथ्यात्वकी अत्यंत धृष्टता होती है, अर्थात् मिथ्यात्व गाढ़ होता है ॥१७॥

होजी एहवा बोली बोल, सुरसुंदरीए उपाईओ हो लाल;
होजी जे आनंद न तेह, नाटिक शतके पण कियो हो लाल. १८

अर्थ–इस प्रकार सुरसुंदरीने अपने दोष और मयणासुंदरीके गुणगानके साथ जैनधर्मकी प्रशंसा करके कर्मरूपी नाटकसे आपबीती कहकर जो आनंद उत्पन्न किया वह सैंकड़ों सुंदर नाटक करनेसे भी पूर्वकालमें कभी नहीं मिला था। अर्थात् सुरसुंदरीका जीवन इतिहास एक सत्य नाटक था जो सैंकडों कल्पित नाटकोंकी अपेक्षा कई गुना प्रेरक और बोधदायक था, अतः यह सत्य वृत्तांत सुनकर सभीको बहुत आनंद हुआ ॥१८॥

होजी श्रीपाले वडवेग, हवे अरिदमण अणावियो हो लाल,
होजी सुरसुंदरी तसु दीध, बहु ऋद्धे वोळावियो हो लाल. १९

अर्थ–फिर श्रीपालराजाने शीघ्र ही अरिदमन राजाको अपने सैन्यमेंसे बुलाया और उसे सुरसुंदरी देकर बहुत ऋद्धिके साथ अपने देशको बिदा किया ॥१९॥

होजी ते दंपती श्रीपाल, मयणाने सुपसाउले हो लाल,
होजी पामे समकित शुद्धि, अध्यवसाये अति भले हो लाल. २०

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—फिर वे पति-पत्नी श्रीपालराजा और मयणासुंदरीकी कृपासे अत्यंत सुंदर अध्यवसायसे शुद्ध समकितको प्राप्त हुए ।।१२०।।

होजी कुष्ठी पुरुष शतसात, मयणा वयणे लही दया हो लाल,
होजी आराधी जिन धर्म, नीरोगी सघला थया हो लाल. २१

अर्थ—मयणासुंदरीके वचनोंसे दयाको प्राप्तकर जैनधर्मकी आराधनाकर जो सात सौ कोढ़ी रोगरहित हुए थे, वे सब वहाँ आ पहुँचे ।।२१।।

होजी ते पण नृप श्रीपाल, प्रणमे बहुले प्रेमशुं हो लाल,
होजी राणिम दिये नृप तास, वदन कमल नित उल्लस्युं हो लाल. २२

अर्थ—वे कुष्ठी लोग भी आकर श्रीपालकुँवरको अत्यंत स्नेहपूर्वक प्रणाम करने लगे, तब श्रीपाल राजाने उन्हें राणाकी पदवी दी। इससे श्रीपालकुँवरका मुखरूपी कमल हमेशा उल्लसित रहने लगा।

विस्तारार्थ—कहनेका तात्पर्य यह कि इन सात सौ कोढ़ियोंने श्रीपालकी रक्षा की तथा उसका मयणाके साथ विवाह करवाया था इस उपकारका बदला उन्हें राणाकी पदवी (सभामें अमीरकी पदवी) देकर चुकाया। जो अपकारी धवलसेठ पर भी हमेशा उपकार करता रहा वह उपकारीको कैसे भूलेगा ? ।।२२।।

होजी आवी नमे नृप पाय, मतिसागर पण मंत्रवी हो लाल,
होजी पूरव परे नरनाह, तेह अमात्य कियो कवि हो लाल. २३

अर्थ—इतनेमें मतिसागर मंत्री भी आकर श्रीपालराजाके चरणोंमें प्रणाम करने लगा, उसे भी श्रीपालराजाने पहलेकी तरह मुख्यमंत्रीका पद दिया ।।२३।।

होजी ससरा साला भूप, माउल बीजा पण घणा हो लाल,
होजी तेहने दिये बहुमान, नृप आदरनी नहीं मणा हो लाल. २४

अर्थ—फिर ससुर तथा साला पक्षके राजा तथा मामा पक्षके राजा आदि अनेक राजा भी वहाँ आये, उन सबका श्रीपालराजाने अत्यंत सन्मान किया। इस प्रकार श्रीपालराजाने सभीका आदर-सत्कार करनेमें कुछ भी कमी न रखी ।।२४।।

होजी भाल मिलित करपद्म, सवि सेवे श्रीपालने हो लाल,
होजी इक दिन विनवे मंत्री, मतिसागर भूपालने हो लाल. २५

अर्थ—वे सब राजा सिरपर हाथ जोड़कर श्रीपालराजाकी सेवा करने

लगे। इस प्रकार आनंदपूर्वक समय पसार हो रहा था। अब एक दिन मतिसागर मंत्री श्रीपालराजासे इस प्रकार विनती करने लगा ॥२५॥

होजी चोथे खंडे ढाळ, बीजी हुई सोहामणी हो लाल,
होजी गुण गातां सिद्धचक्र, जस कीर्ति वाधे घणी हो लाल. २६

अर्थ—इस प्रकार चौथे खंडकी शोभायमान दूसरी ढाल पूरी हुई। इस प्रकार सिद्धचक्रजीके गुणगान करनेसे जगतमें यश-कीर्ति बहुत बढ़ती है। ('जस' शब्दसे ग्रंथकार यशोविजयजीने अपने नामका निर्देश भी किया है।) ॥२६॥

चतुर्थ खंडकी दूसरी ढाल समाप्त

दोहा छंद

मतिसागर कहे पितृपदे, ठव्यो बाळपण जेण,
उठावियो तो तुज अरि, ते सही दित्त मएण. १

अर्थ—अब मतिसागर मंत्री श्रीपालराजासे कहने लगा—हे राजन्! बचपनमें आपको पिताकी राजगद्दी पर बिठाया था वहाँसे जिसने आपको हटाया था वह आपका दुश्मन अत्यंत मदोन्मत्त हो गया है ॥१॥

अरिकरगत जे नवि लिये, शक्ति छते पितृरज्ज,
लोक हसे बल फोक तस, जिम शारद घन गज्ज. २

अर्थ—जो मनुष्य शत्रुके हाथमें गये हुए पिताके राज्यको शक्ति होते हुए भी स्वाधीन नहीं करता, उसकी दुनियामें व्यर्थ गर्जना करनेवाले शरदऋतुके मेघकी तरह हँसी होती है और उसका बल भी निकम्मा ही गिना जाता है ॥२॥

ए बल ए ऋद्धि ए सकल, सैन्य तणो विस्तार,
शुं फलशे जो लेशो नहीं, ते निज राज उदार. ३

अर्थ—यदि आप अपना विशाल राज्य नहीं जीतेंगे तो आपका यह बल, यह सर्व ऋद्धि और बड़े सैन्य परिवारका क्या प्रयोजन? अर्थात् स्वराज्य लिये बिना आपकी सर्व समृद्धि तथा शक्ति व्यर्थ है ॥३॥

नृप कहे साचुं तें कह्युं, पण छे चार उपाय,
सामे होय तो दंड श्यो, साकरे पण पित्त जाय. ४

अर्थ—तब राजाने कहा—हे मंत्री! आपने सच ही कहा है, परंतु राज्य-

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

प्राप्तिके चार उपाय हैं; उसमें यदि साम अर्थात् मीठे वचनसे कार्य सिद्ध होता हो तो दंडका उपयोग क्यों किया जाय? क्योंकि यदि शक्कर खानेसे पित्तशमन हो जाता हो तो कड़ुवी दवा क्यों ली जाय? ॥४॥

विस्तारार्थ–राजनीतिके चार भेद हैं–(१) साम, (२) दाम, (३) भेद (४) दंड। इसमें अनुक्रमसे एक-एक उपायका प्रयोग किया जाता है। सबसे पहले साम अर्थात् मीठे वचनसे अर्थात् समझा-बुझाकर काम लेना चाहिये। इससे न माने तो दाम अर्थात् पैसे देकर कार्य सिद्ध करना चाहिये। इससे भी काम न हो तो भेद अर्थात् आपसमें झगड़ा करवाकर, फूट डलवाकर अपना मनोवांछित कर लेना चाहिये। इससे भी कार्य सिद्ध न हो तो दंड अर्थात् बलप्रयोगसे दुश्मनको मारकर कार्य सिद्ध करना चाहिये। कोई भी कार्य करनेमें ये चार उपाय अनुक्रमसे प्रयोगमें लेने चाहिये। कहा है–

सामः प्रेमपरं वाक्यं, दानं चार्थविसर्जनम् ।
भेदः परजनाकृष्टि,–र्निग्रहः परपीडनम् ॥

अहो बुद्धि मंत्री भणे, दूत चतुरमुख नाम,
भूप शीखावी मोकल्यो, पहोतो चंपा ठाम. ५

अर्थ–राजाका इस प्रकारका कथन सुनकर मंत्री बोला–अहो! आपकी बुद्धि महान और गंभीर है। फिर राजाने चतुर्मुख नामक दूतको अच्छी तरहसे समझाकर शिक्षा देकर चंपानगरीकी ओर रवाना किया। वह दूत अनुक्रमसे चंपानगरीमें आ पहुँचा ॥५॥

ढाल तीसरी

(किसके चेले किसके पूत, आतमराम एकिला अवधूत, मन मान ले–ए देशी)

अजितसेन छे तिहां भूपाल,
ते आगल कहे दूत रसाल, साहिब सेवीए,
कला शीखवा जाणी बाल,
जे तें मोकलियो श्रीपाल. साहिब सेवीए.१

अर्थ–वहाँ चंपानगरीमें अजितसेन नामक राजा राज्य कर रहा था, उसके आगे जाकर दूत मनोहर अर्थात् पहले मीठे, फिर खट्टे और अन्तमें कड़ुवे इस प्रकार भोजन करनेकी रीतिके अनुसार तीन प्रकारसे वचन कहने लगा–हे राजन्! आप जिनेश्वर भगवानकी सेवा कीजिये या मेरे स्वामीकी सेवा कीजिये। भूतकालमें आपने श्रीपालकुँवरको बालक समझकर कला सीखनेके लिये बाहर भेजा था–॥१॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

सकल कला तेणे शीखी सार, सेना लई चतुरंग उदार; सा०
आव्यो छे तुज खंधनो भार, उतारे छे ए निरधार. सा० २

अर्थ—उस श्रीपालने अब सारी कलायें अच्छी तरहसे सीख ली है और अब वे चतुरंगी बड़ी सेना लेकर आपके कंधों परसे अवश्य बोझ दूर करनेके लिये आ रहे हैं क्योंकि आप बुजुर्ग है इसलिये आपका बोझ हलका करना उनका फर्ज है ॥२॥

जीरण थंभ तणो जे भार, नवो ठवीजे ते निरधार, सा०
लोके पण जुगतुं छे एह, राज देई दाखो तुमे नेह. सा० ३

अर्थ—जैसे कोई स्तंभ जीर्ण हो गया हो तो उसका बोझ उठानेके लिये उस स्थान पर नया स्तंभ रखा जाता है, और ऐसा करना दुनियामें भी उचित गिना जाता है; वैसे ही आप पुराने स्तंभकी तरह बूढ़े हो गये हैं, अतः नये स्तंभ जैसे श्रीपालकुँवरको राज्य देकर आप दोनोंके बीच जो प्रेम है उसे प्रकट कीजिये ॥३॥

बीजुं पयपंकज तस भूप, सेवे बहु भत्ति अनुरूप, सा०
तुमे नवि आव्या उपायो विरोध, नवि असमर्थ छे तेहशुं शोध. सा० ४

अर्थ—(अब अन्य खट्टे वचन कहता है—) दूसरी बात, सभी राजा उनके चरणकमलोंकी अनुकूल भक्तिपूर्वक सेवा करते हैं, किन्तु आप उनकी सेवा करने न आयें इससे आपने विरोध उत्पन्न किया है, और उस विरोधको शुद्ध करनेके लिये अर्थात् दूर करनेके लिये क्या श्रीपालराजा समर्थ नहीं है ? ॥४॥

किहां सरसव किहां मेरु गिरींद, किहां तारा किहां शारदचंद, सा०
किहां खद्योत किहां दिनानाथ, किहां सायर किहां छिल्लरपाथ. सा० ५

अर्थ—कहाँ सरसोंका एक दाना और कहाँ पर्वतशिरोमणि मेरुगिरि ? कहाँ टिमटिमाते तारे और कहाँ जगमगाता शरदऋतुका चंद्र ? कहाँ जुगनूका प्रकाश और कहाँ सूर्यका प्रकाश ? कहाँ समुद्रका अगाध जल और कहाँ एक छिछले गड्ढेका पानी ? ॥५॥

किहां पंचायण किहां मृगबाल, किहां ठीकर किहां सोवनथाल, सा०
किहां कोद्रव किहां कूर कपूर, किहां कुकश ने किहां घृतपूर. सा० ६

अर्थ—बलमें कहाँ सिंह और कहाँ हिरनका बच्चा ? शोभामें कहाँ एक

www.jaintatvagyanshala.org

ठीकरा और कहाँ सुवर्णका थाल ? उज्ज्वलतामें कहाँ कोदरा और कहाँ कपूर मिश्रित भात ? भोजनमें कहाँ भूसी और कहाँ घेबर ? ॥६॥

किहां शून्य वाडी किहां आराम, किहां अन्यायी किहां नृप राम, सा०
किहां वाघ ने किहां वळी छाग, किहां दया धरम किहां वळी याग. सा० ७

अर्थ—कहाँ पेड़-पत्तों रहित शून्य जंगल और कहाँ फलद्रुप बाग ? कहाँ अन्यायी राजा और कहाँ न्यायी राजा रामचंद्रजी ? कहाँ बाघ और कहाँ बोकड़ा ? कहाँ दयामय धर्म और कहाँ हिंसायुक्त यज्ञ ? ॥७॥

किहां जूठ ने किहां वळी साच, किहां रतन किहां खंडित काच, सा०
चढते ओठे छे श्रीपाल, पडते तुम सरिखा भूपाल. सा० ८

अर्थ—कहाँ झूठ और कहाँ सच ? कहाँ रत्न और कहाँ काचका टुकड़ा ? हे राजन् ! इन सब दृष्टातोंमें उच्च अर्थात् श्रेष्ठ दृष्टांत जैसे श्रीपालराजा है और नीच दृष्टांतोंमें तेरे जैसे अन्य राजा जान ॥८॥

जो तुं नवि निज जीवित रूठ, तो प्रणमी करे तेह ज तुठ, सा०
जो गर्वित छे देखी रज्ज, तो रण करवा थाये सज्ज. सा० ९

अर्थ—(अब दूत कड़वे वचन कहता है—) हे राजन् ! यदि तू अपनी जिंदगीसे तंग न आ गया हो तो उस श्रीपालराजाको प्रणाम करके उन्हें संतुष्ट कर, खुश कर; और यदि तू अपना राज्य देखकर गर्विष्ठ हो गया हो तो युद्ध करनेके लिये तैयार हो जा ॥९॥

तस सेना सागरमांहि जाण, तुंज दल साथु चूर्ण प्रमाण, सा०
मोटाशुं नवि कीजे जूझ, सवि कहे एहवुं बूझ अबूझ. सा० १०

अर्थ—उस श्रीपालके सैन्यरूपी समुद्रमें तेरा सैन्य सत्तूके चूर्ण जैसा समझ ले। अतः बड़ोंके साथ युद्ध न करना चाहिये ऐसा समझदार और असमझदार सभी लोग कहते हैं ॥१०॥

बोली एम रह्यो जव दूत, अजितसेन बोल्यो थई भूत, राजा नहि मले,
कहेजे तुं तुज नृपने एम, दूतपणानो जो छे प्रेम, राजा नहि मले.
चंपानगरीनो राय, राजा नहि मले. ११

अर्थ—इस प्रकार कह कर दूत जब चुप हो गया तब तुरत ही अजितसेन राजा भूताविष्टकी तरह क्रुद्ध होकर बोलने लगा—हे दूत ! यदि तुझे दूतकार्यसे सचमुच प्रेम है अर्थात् यदि तू सच्चा दूत है तो मेरा यह संदेश

तेरे राजाको दे देना कि (भले दूसरे राजा आकर झुक गये, किन्तु) यह चंपानगरीका राजा अजितसेन कभी भी प्रणाम करने नहीं आयेगा ॥११॥

आदि मध्य अंते छे जाण, मधुर आम्ल कटु जेह प्रमाण, रा०
भोजन वचने सम परिणाम, तिणे चतुरमुख ताहरुं नाम. रा० १२

अर्थ–हे दूत! तेरे वचन प्रारंभमें मीठे, बीचमें खट्टे और अन्तमें कड़वे हैं, अर्थात् भोजनके जैसे परिणामवाले हैं। जैसे भोजनमें प्रथम मीठाशवाली चीज खायी जाती है, फिर खारे स्वादवाली पापड़ आदि चीजें खायी जाती है, ऐसे तेरे वचन हैं, इसलिये तेरा चतुर्मुख नाम यथार्थ है ॥१२॥

निज नहि तेह अमारो कोउ, शत्रुभाव वहिये छे दोउ, रा०
जीवतो मूक्यो जाणी रे बाल, तेणे अमे निर्बल सबल श्रीपाल. रा० १३

अर्थ–(अब दूतके वचनोंका प्रत्युत्तर देते हुए अजितसेन राजा कहते हैं कि–) हे दूत! वह श्रीपाल हमारा कोई सगा नहीं है, क्योंकि हम दोनों परस्पर शत्रुभावसे जीते हैं। हाँ, हमने उसे बालक समझकर पहले जिंदा छोड़ दिया था, तो क्या इससे हम निर्बल और श्रीपाल बलवान हो गया? ॥१३॥

निज जीवितने हुं नहि रूठ, रूठ्यो तस जमराय अपूठ, रा०
जेणे जगाड्यो सूतो सिंह, मुज कोपे तस न रहे लीह. रा० १४

अर्थ–दूसरी बात, मैं मेरे जीवन पर रुष्टमान नहीं हुआ है, बल्कि इसके विपरीत यमराज़ा उस पर रुष्टमान हुआ है, क्योंकि उसने सोये हुए सिंहको बिना कारण जगाया है। इसलिये अब मैं क्रोधायमान होनेसे उसकी रेखा अर्थात् नामनिशान भी नहीं रहेगा ॥१४॥

जस बल सायर साथु प्राय, जेह निर्बल ते बीजा राय, रा०
तेहमां हुं वडवानल जाण, सवि ते शोषुं न करुं काण. रा० १५

अर्थ–तूने उस श्रीपालराजाके सैन्यरूपी समुद्रके आगे जिसका सैन्य सत्तूके चूर्ण जैसा निर्बल कहा है वे अन्य राजा समझना। मैं तो उसके सैन्यरूपी समुद्रमें वडवानल अग्नि जैसा हूँ, अतः सारे सैन्यका शोषण कर डालूँगा, उसमें किंचित् भी कमी नहीं रखूँगा, ऐसा तू मुझे समझ लेना ॥१५॥

कहेजे दूत तुं वेगो जाई, आवुं छुं तुज पूठे धाई, रा०
बल परखीजे रणमेदान, खड्गनी पृथिवी ने विद्यानुं दान. रा० १६

अर्थ–इसलिये हे दूत! तू शीघ्र जाकर अपने राजासे कहना कि मैं

युद्धके लिये तेरे पीछे-पीछे ही दौड़ा आ रहा हूँ, क्योंकि बलकी परीक्षा तो रणभूमिमें ही होती है। पृथ्वी खड्गधारीकी होती है और दान विद्याका होता है, अर्थात् पृथ्वीका स्वामी खड्ग धारणकर रणसंग्राम करनेवाला शूरवीर ही होता है और दानमें श्रेष्ठ दान विद्यादान ही है ॥१६॥

विस्तारार्थ—जिसकी तलवार तेज होती है वो ही पृथ्वीका स्वामी होता है और जिसकी विद्या तेज है वो ही दान-दक्षिणा प्राप्त कर सकता है। दूसरी तरहसे यह अर्थ भी किया जा सकता है कि तलवारसे सिर कटानेसे ही पृथ्वी मिलेगी, न कि वाक्य-चातुरीरूप विद्यादानसे। अथवा युद्ध करके पृथ्वी जीतना श्रेष्ठ है जैसे दानमें विद्यादान श्रेष्ठ है।

चोथे खंडे त्रीजी ढाळ, पूरण हुई ए राग बंगाल, सा०
सिद्धचक्र गुण गावे जेह, विनय सुजस सुख पावे तेह. रा० १७

अर्थ—इस प्रकार चौथे खण्डकी तीसरी ढाल बंगाली रागमें पूर्ण हुई। जो मनुष्य सिद्धचक्रजीके गुणोंका स्तवन करता है वह मनुष्य विनय, सुयश और सुखको प्राप्त करता है ॥१७॥

चतुर्थ खंडकी तीसरी ढाल समाप्त

दोहा छंद

वचन कहे वैरी तणां, दूत जई अति वेग,
कडुआं काने ते सुणी, हुओ श्रीपाल सतेग. १

अर्थ—चतुर्मुख दूतने बहुत ही शीघ्र मालवदेशमें जाकर वैरी अजितसेन राजाके वचन अपने राजा श्रीपालसे कहे। ये कड़वे वचन कानसे सुनते ही श्रीपालराजा युद्धके लिये तलवार लेकर तैयार हो गया ॥१॥

उच्चभूमि तटिनी तटे, सेना करी चतुरंग,
चंपा दिशि जई तिणे दिया, पट आवास उत्तंग. २

अर्थ—चतुरंगी सेनाको तैयार कर चंपानगरीकी ओर प्रयाण किया और वहाँ पहुँचकर नदी किनारे कगार पर कपड़ोंके तंबू ताने ॥२॥

सामो आव्यो सबल तव, अजितसेन नरनाह,
माहोमांहि दल बिहुं मल्यां, सगरव अधिक उत्साह. ३

अर्थ—उस समय बिविध प्रकारके सैन्यके साथ अजितसेन राजा सामने आया, तब गर्वसहित अत्यंत उत्साहवाले दोनों सैन्य परस्पर मिले ॥३॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ढाल चौथी

देशी कडखानी

चंग रण रंग मंगल हुआं अति घणां,
भूरी रणतूर अविदूर वाजे,
कौतुकी लाख देखण मल्या देवता,
नाद दुंदुभि तणे गयण गाजे. चंग० १

अर्थ—अब मनोहर रणसंग्रामके लिये अनेक मांगलिक होने लगे, तथा आसपासमें रणसंग्रामके अनेक वाद्य भी बजने लगे। उस युद्धको देखनेके लिये कौतुकप्रिय लाखों देव आकाशमें एकत्र हुए और उनके द्वारा बजायी जा रही दुंदुभिके नादसे आकाश भी गरजने लगा ॥१॥

उग्रता करण रणभूमि तिहां शोधिये,
रोधिये अवधि करी शस्त्रपूजा,
बोधिये सुभट कुलवंश शंसा करी,
योधिये कवण विण तुज्ज दूजा. चंग० २

अर्थ—अब युद्धकी गरिमाके लिये रणभूमिको काँटे, कंकड़ आदि दूरकर शुद्ध किया, फिर युद्धभूमिकी अपने अपने लिये मर्यादा निश्चित की। फिर लड़ाईके शस्त्रोंकी पूजा की। तत्पश्चात् भाटचारण रणोत्सुक सुभटोंके कुल और वंशकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—अहो सुभटों! तुम्हें धन्य है! आज जो तुम्हारे स्वामीका कार्य है उसके लिये तुम्हारे बिना और कौन युद्ध करेगा? (अर्थात् स्वामीका कार्य करनेका आज मौका मिला है) ॥२॥

चरचिये चारु चंदन रसे सुभट तनु,
अरचिये चंपके मुकुट सीसे,
सोहिये हत्थ वरवीर वलये तथा,
कल्पतरु परि बन्या सुभट दीसे. चंग० ३

अर्थ—सैन्यके सुभट युद्धमें केसरिया करनेके लिये सुंदर चंदनरससे अपने शरीरको रंगकर केसरिया बना रहे थे और सिर पर पहननेके मुकुटको चंपकवृक्षके पुष्पोंसे सजा रहे थे। अपने हाथोंको श्रेष्ठ वीरतारूप कंगन पहनकर शोभित कर रहे थे। यों सभी सुभट चारों ओर से कल्पवृक्ष जैसे हो गये हो ऐसा लगता था ॥३॥

कोई जननी कहे जनक मत लाजवे,
कोई कहे माहरुं बिरुद राखे,

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

जनक पति पुत्र तिहुं वीर जस उजला,
सोहि धन जगतमां अणिय आखे. चंग० ४

अर्थ—अब युद्धके लिये प्रयाण करते समय कोई माता अपने पुत्रसे कह रही थी—हे पुत्र! तू युद्धमें तेरे पिताकी वीरताको लजाना मत; अर्थात् जैसे तेरे पिता युद्धमें शूरवीर थे वैसे ही तू भी शूरवीरता दिखाना। तो कोई माता कह रही थी—हे पुत्र! तू मेरा वीर पुत्री और वीर पत्नीकी तरह वीरमाताका तीसरा बिरुद सँभालना; अर्थात् जैसे मैं वीर पिताकी पुत्री हूँ, वीर पतिकी पत्नी हूँ, वैसे ही मैं वीर पुत्रकी माता बनूँ ऐसा मेरा बिरुद तू सार्थक करना, क्योंकि जिसके पिता, पति और पुत्र ये तीनों वीरतासे उज्वल है उसी स्त्रीको धन्य है! तात्पर्य यह कि जिसके पिता, पति और पुत्र वीर होकर अणीशुद्ध जीवन व्यतीत करते हैं अर्थात् वीरताको कहीं पर कलंक नहीं लगने देते, उसीका उज्वल यश संसारमें फैलता है और वही धन्यवादके पात्र है। अर्थात् ये तीनों बिरुद धारण करनेवाली स्त्रीकी ही संपूर्ण उज्वलता कहलाती है ॥४॥

कोई रमणी कहे हसिय तुं सहिश किम,
समर करवाल शर कुंत धारा,
नयण बाणे हण्यो तुज्ज में वश कियो,
तिहां न धीरज रही कर विचारा. चंग० ५

अर्थ—कोई स्त्री युद्धमें जानेके लिये तत्पर अपने पतिसे हँसती हुई कह रही थी—हे स्वामीनाथ! यहाँ तो आप मेरे नेत्ररूपी बाणोंको सहन नहीं कर सकते और मेरे वशमें हो जाते हो, और उस समय आपकी धीरज नहीं टिकती; तो फिर युद्धमें तलवार, बाण और भाले आदिकी तीक्ष्ण धारोंको कैसे सहन करोगे? उसका विचार तो करो! इस प्रकार व्यंग वचनोंसे शूरवीरताकी प्रेरणा दे रही थी ॥५॥

कोई कहे माहरो मोह तुं मत करे,
मरण जीवन तुज न पीठ छांडुं,
अधररस अमृतरस दोय तुज सुलभ छे,
जगत जय हेतु हो अचल खांडुं. चंग० ६

अर्थ—कोई स्त्री अपने वीर पतिसे कह रही थी—हे स्वामिन्! आप मेरा मोह मत रखियेगा; क्योंकि आपके जीवन या मरणमें मैं आपकी पीठ नहीं छोडूँगी, अर्थात् आपके पीछे-पीछे ही चलूँगी। यदि आप युद्धमें मर जायेंगे तो मैं आपके पीछे सती हो जाऊँगी और यदि आप विजय प्राप्तकर जिंदा आयेंगे

www.jaintatvagyanshala.org

तो मैं आपके गले लग जाऊँगी। इस प्रकार दोनों अवस्थामें मैं आपकी ही हूँ, अर्थात् अधररस और अमृतरस दोनों आपको सुलभ है। यदि जियोगे तो मेरे होठोंके चुंबनरूपी अधररसको प्राप्त करोगे और मर जाओगे तो देवभवमें मैं देवी बनकर आपको अमृतरस पिलाऊँगी। इस प्रकार जगतमें आपके यशका कारण अचल और अखण्ड होओ अर्थात् आप शूरवीरतासे लड़कर अचल और अखण्ड यशको प्राप्त करो ॥६॥

इम अधिक कौतुके वीर रस जागते,
लागते वचन हुआ सुभट ताता,
सूर पण क्रूर हुई तिमिर दल खंडवा,
पूर्व दिशि दाखवे किरण राता. चंग० ७

अर्थ– इस प्रकार अन्य भी कई प्रकारके कौतुकपूर्ण वचनोंसे सुभटोंमें वीररस जागृत हुआ और वे लाल-पीले होकर युद्धके लिये तैयार हुए। (यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करता हैं कि) अंधकारके समूहका नाश करनेके लिये सूर्य भी क्रोधायमान होकर पूर्व दिशामें रक्त (लाल) किरणोंको फैलाने लगा अर्थात् प्रभात हुआ ॥७॥

विस्तारार्थ–ऊपर लिखे अनुसार माता, स्त्री, बंदीवान तथा भाट-चारण आदिके कौतुकपूर्ण वचन सुननेसे सुभटोंमें रही हुई शूरवीरता विशेष जागृत हुई और वे युद्धके लिये सज्ज हुए। कौतुकपूर्ण वचन अर्थात् आवेगवाले उत्तेजक हँसीमजाकवाले वचन। उस समय मानो अंधकारके सैन्यको अर्थात् अंधकारके समूहको नष्ट करनेके लिये सूर्य क्रुद्ध हुआ हो वैसे अपने लाल किरणोंको पूर्वदिशामें प्रकट करने लगा। अर्थात् सूर्योदय हुआ।

रोपी रणथंभ संरंभ करी अति घणो,
दोई दल सुभट तव सबल जूझे,
भूमिने भोग्यता जोई निज योग्यता,
अमल आरोगता रण न मूंझे. चंग० ८

अर्थ–अब शुद्ध की हुई युद्धभूमिमें रणस्तंभको स्थापित कर दोनों सैन्योंके सुभट अत्यंत क्रोधपूर्वक अपने-अपने बलके साथ युद्ध करने लगे। युद्ध करते समय वे अपने-अपने पगार-अधिकार, कुलीनता, और भूमि वगेरेकी भोग्यताके प्रमाणका विचार करके तथा अपनी योग्यताका विचार करके, सोमल, अफीम आदि नशा करते हुए घबराते न थे ॥८॥

विस्तारार्थ–अब जो युद्धभूमि थी वहाँ रणस्तंभ खड़ा किया। फिर

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

दोनों सैन्योंके सुभट युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये अत्यंत क्रुद्ध होकर अपनी अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करने लगे। उसमें युद्ध करते समय वे सुभट सोच रहे थे कि मुझे स्वामीने इतनी सारी जमीन जायदाद आदि वस्तुएँ उपभोगके लिये दी है उसका बदला आज मुझे चुकाना है तथा वे अपनी पदवी आदिकी योग्यताका भी विचार कर रहे थे कि मैं सेनापति, हाकेम, या सैनिक हूँ तो उस पदकी महत्ताके अनुसार मुझे होशियारी दिखानी है तथा वे अपनी कुलीनता, विश्वसनीयता आदि योग्यताका भी विचार करते हुए अफीम आदि पीकर भी जोशके साथ लड़ाई कर रहे थे, किन्तु रणसंग्राममें घबराते नहीं थे और स्वामीद्रोह करते न थे।

नीर जिम तीर वरसे तदा योध घन,
संचरे बग परे धवल नेजा,
गाज दलसाज ऋतु आई पाउस तणी,
वीज जिम कुंत चमके सतेजा. चंग० ९

अर्थ—वहाँ युद्धभूमिमें मेघ जैसे काले कपड़े पहने हुए योद्धा पानीकी तरह बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। फिर वर्षाऋतुमें बगलोंकी तरह वहाँ श्वेत ध्वजाएँ लहरा रही थी और सैन्यके समूहके आवाजसे मानो गर्जना करती हुई वर्षाऋतु न आ गयी हो? ऐसा लग रहा था और वर्षाऋतुमें बिजलीकी तरह वहाँ तीक्ष्ण धारवाले भाले चमक रहे थे। इस प्रकार वह युद्ध भूमि वर्षाऋतु जैसी दीख रही थी॥९॥

भंड ब्रह्मांड शतखंड जे करी शके,
उच्छले तेहवा नालगोळा,
वरसता अगनि रणमगन रोषे भर्या,
मानुं ए यमतणा नयण डोळां. चंग० १०

अर्थ—(अब तोपमेंसे छूटते हुए गोले कैसे प्रलयकारी थे? उस विषयमें कवि उत्प्रेक्षा करता है कि—) उन तोपोंमेंसे छूटते हुए तोपगोले मानों ब्रह्मांडरूपी बर्तनके सैंकड़ों टुकड़े कर डालते हो ऐसे उछलते थे और अग्नि बरसाते थे; और रणसंग्राममें तत्पर होनेसे गुस्सेसे लाल हो गये हो ऐसे वे गोले मानो शत्रुको मारनेके लिये गुस्सा हुए यमराजके नेत्रोंके डेले न हो ऐसे लग रहे थे॥१०॥

केई छेदे शरे अरितणां शिर सुभट,
आवतां केई अरिबाण झाले,

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

केई असि छिन्न करि कुंभ मुक्ताफले,
ब्रह्म रथ विहग मुख ग्रास घाले. चंग० ११

अर्थ—उस युद्धमें कई सुभट शत्रुके मस्तकोंको बाणसे बींध देते थे तो कई सुभट सामनेसे आते हुए शत्रुओंके बाणोंको बीचमें ही पकड़ लेते थे। फिर कई सुभट तलवारसे भेदे हुए हाथीके कुंभस्थलमेंसे गिरते हुए मोतियोंको ग्रहण करके ब्रह्माके रथमें जोते हुए हंसपक्षीके मुखमें चुगाते थे, अर्थात् हाथियोंके मस्तकको तलवारसे छेदकर उसमेंसे मोतियोंको लेनेमें समर्थ थे ॥११॥

मद्यरस सद्य अनवद्य कवि पद्यभर,
बंदिजन बिरुदथी अधिक रसिया,
खोज अरि फोजनी मोज धरि नवि करे,
चमकभर धमक दई मांहि धसिया. चंग० १२

अर्थ—फिर ताजी बनायी हुई मदिराके रससे, कवियों द्वारा रचित निर्दोष कविताके समूहसे और बंदीवानोंकी बिरुदावली (प्रशस्ति) से अत्यंत उत्साहित हुए सुभट युद्धके आनंदसे मस्त होकर दुश्मनके सैन्यकी तपास किये बिना ही क्रोधवश एकदम शीघ्रतासे शत्रुके सैन्यके बीचमें युद्ध करनेके लिये घुस जाते थे ॥१२॥

विस्तारार्थ—ताजी बनाई हुई मदिरामें उन्मत्तता ज्यादा होती है, इसलिये ऐसी मदिराके रसका पान करनेसे मत्त हुए तथा कवियों द्वारा बनायी हुई निर्दोष कविता सुननेसे तथा बंदीवानोंकी प्रशस्ति सुननेसे अत्यंत उत्साहित हुए सुभट बहुत खुश नजर आ रहे थे, इसलिये "शत्रुकी सेना बड़ी है, बलवान है, हमें मार डालेगी" ऐसी किसी भी प्रकारकी परवाह किये बिना ही, क्रोधके आवेशसे एकदम तेजीसे शत्रुके सैन्यमें लड़नेके लिये घुस जाते थे।

वाल विकराल करवाल हत सुभट शिर,
वेग उच्छलित रवि राहु माने,
धूलि धोरणि मिलित गगन गंगाकमल,
कोटि अंतरित रथ रहत छाने. चंग० १३

अर्थ—फिर तलवारसे कटा हुआ बालोंसे विकराल दीखनेवाला और अचानक आकाशमें उछलते हुए सुभटके मस्तकको देखकर, सूर्य यों सोचकर कि यह मुझे ग्रहण करनेवाला राहु है, धूलके समूहसे मिश्रित आकाशगंगाके

www.jaintatvagyanshala.org

करोड़ों कमलोंके भीतर अपने रथसहित मानो छिप न गया हो? इस तरह दीखता बंद हो गया। तात्पर्य यह कि युद्धभूमिकी उड़ती हुई धूलसे सूर्य अदृश्य हो गया ॥१३॥

केई भट भार परि सीस परिहार करि,
रण रसिक अधिक जूझे कबंधे,
पूर्ण संकेत हित हेत जयजय रवे,
नृत्य मनु करत संगीतबध्धे. चंग०१४

अर्थ–(अब युद्ध करते हुए मस्तक कट जानेसे जब धड़ अकेला लड़ रहा है तब कवि उत्प्रेक्षा करता है कि–) कितने ही सुभट भाररूप मानकर अपने मस्तकको छोड़कर युद्धमें अत्यंत रसिक होकर केवल धड़से ही युद्ध करते थे। उस समय मानो धड़ अपनी विजयप्राप्तिका संकेत पूर्ण हो गया हो यों मानकर जयजय शब्दसे संगीतबद्ध नृत्य कर रहा हो ऐसा लगता है ऐसा मैं मानता हूँ ॥१४॥

भूरि रणतूर पूरे गयण गडगडे,
रथ सबल शूर चकचूर भांजे,
वीर हक्काय गय हय पुले चिहुं दिशे,
जे हुवे शूर तस कोण गांजे. चंग० १५

अर्थ–फिर वहाँ युद्धभूमिमें रणसंग्रामके अनेक वाद्योंके आवाजके समूहसे आकाश भी गर्जना करने लगा और बलवान योद्धा शत्रुओंके रथको तोड़कर उसका चूर्ण करने लगे। तथा हे वीर! यहाँ आ, तुझे मजा चखाता हूँ इत्यादि जोर-शोरसे वीरोंकी एक-दूसरेको बुलानेकी आवाजसे हाथी-घोड़े चारों दिशाओंमें दौड़ने लगे। मगर ऐसे शूरवीरोंको कौन भगा सके? ॥१५॥

तेह खिणमां हुई रणमही घोरतर,
रुधिर कर्दम भरी अंतपुरी,
प्रीति हुई पूर्ण व्यंतरतणा देवने,
सुभटने होंश नवि रही अधूरी. चंग० १६

अर्थ–इस प्रकार सुभटोंकी परस्पर मारकाटसे क्षणमात्रमें वह रणभूमि अत्यंत भयंकर और लहूके कीचड़से भरपूर होनेसे यमराजाकी पुरी जैसी हो गयी। (अंत:पुरी=यमराजाकी नगरी, यमपुरी) युद्ध देखने आये हुए व्यंतर देवोंको मृत सुभटोंको देखकर पूर्ण प्रीति हुई अर्थात् कुतूहली व्यंतर देव लाशोंका ढग देखकर अट्टहास्य करने लगे; और योद्धाओंकी युद्धकी होस भी

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अधूरी न रही, अर्थात् सुभटोंकी भी अपने स्वामीके लिये संग्राम करनेका कार्य आ पड़नेसे उमंगपूर्वक लड़नेकी इच्छा अधूरी न रही ॥१६॥

देखी श्रीपालभट भांजियुं सैन्य निज,
उठवे तव अजितसेन राजा,
नाम मुज राखवो, जोर फरी दाखवो,
हो सुभट विमलकुल तेज ताजा. चंग० १७

अर्थ—इस प्रकार युद्ध करते हुए श्रीपालराजाके सुभटोंसे अपना सैन्य भागने लगा—यह देखकर अजितसेन राजा स्वयं युद्ध करनेके लिये खड़ा हुआ और अपने सुभटोंसे कहने लगा—हे निर्मल कुलके तेजसे तेजस्वी सुभटों! फिर एक बार अपनी शक्ति दिखाओ और मेरा नाम रखो; अर्थात् यों निर्बल न हो जाओ किन्तु अपनी शक्ति दिखाकर मेरा जो अजितसेन नाम है उसके अनुसार शत्रुको जीतकर मेरे नामको सार्थक करो ॥१७॥

तेह इम बूझतो सैन्य सजि जूझतो,
वींटियो जत्ति सयसात राणे,
ते वदे नृपति अभिमान त्यजी हजिय तुं,
प्रणमी श्रीपाल हित एह जाणे. चंग० १८

अर्थ—वह अजितसेन राजा इस प्रकार अपने सुभटोंको पानी चढ़ा रहा था और सैन्यको तैयार कर युद्ध कर रहा था। इतनेमें सातसौ राणाओंने आकर उसे चारों ओरसे शीघ्र घेर लिया और कहने लगे—हे राजन्! तू मानका त्याग कर अब भी श्रीपालराजाको प्रणाम कर, क्योंकि ये श्रीपाल राजा हितके जानकार हैं, भले हैं, अतः प्रणाम करनेसे तेरे सभी अपराध माफ कर देंगे ॥१८॥

मान धन जास माने न ते हित वचन,
तेहशुं जूझतो नविय थाके,
बांधियो पाडि करि तेह सतसय भटे,
हुओ श्रीपाल जश प्रगट वाके. चंग० १९

अर्थ—इस प्रकार राणाओंके वचन सुनकर भी, जिसके पास अभिमान रूपी धन था ऐसे अजितसेन राजाने उनके हितकारी वचनोंको नहीं माना, और उनके साथ युद्ध करते हुए भी नहीं थका, तब उन सात सौ सुभटोंने उसे नीचे गिराकर बाँध दिया। उस समय श्रीपालराजाका यश शब्दोंमें प्रकट हुआ अर्थात् श्रीपाल राजा जीत गया ॥१९॥

www.jaintatvagyanshala.org

पाय श्रीपालने आणियो तेह नृप,
तेणे छोडावियो उचित जाणी;
भूमि सुख भोगवो तात मत खेद करो,
वदत श्रीपाल इम मधुर वाणी. चंग० २०

अर्थ—फिर वे सुभट राजाको बाँधकर श्रीपालराजाके चरणोंमें लाये, तब श्रीपालराजाने 'चाचाको बाँधना उचित नहीं है' यों सोचकर उनके बंधन छुड़ाये और मधुर वाणीसे कहने लगे—हे तात! आप जरा भी खेद न कीजिये और सुखपूर्वक अपनी भूमिके सुखका उपभोग करिये ॥२०॥

खंड चोथे हुई ढाळ चोथी भली,
पूर्ण कडखातणी एह देशी,
जेह गावे सुजस एम नवपद तणो,
ते लहे ऋद्धि सवि शुद्ध लेशी. चंग० २१

अर्थ—इस प्रकार चौथे खंडकी यह चौथी सुंदर ढाल पूर्ण हुई जो संपूर्ण कडखाकी रागवाली है। इस प्रकार जो नवपदजीके अच्छे यशका गुणगान करता है वह प्राणी शुद्ध लेश्यावान होकर सर्व ऋद्धिको प्राप्त होता है ॥२१॥

चतुर्थ खंडकी चौथी ढाल समाप्त

दोहा छंद

अजितसेन चिंते कर्युं, अविमास्युं में काज,
वचन न मान्युं दूतनुं, तो न रही निज लाज. १

अर्थ—अब अजितसेन राजा इस प्रकार सोचने लगा—मैंने विचार किये बिना कार्य किया! तथा दूतका वचन भी मैंने न माना, जिससे मेरी बेइज्ज़ती हुई ॥१॥

आप शक्ति जाणे नहीं, करे सबलशुं जूझ,
सुहितवचन माने नहीं, आपे पडे अबूझ. २

अर्थ—फिर जो मनुष्य अपनी शक्तिका विचार नहीं करता और बलवानके साथ युद्ध करता है तथा अच्छे हितवचन भी नहीं मानता, उस अज्ञानी मनुष्यको अपने आप पीठ दिखानी पड़ती है अर्थात् वह विजय प्राप्त नहीं कर सकता ॥२॥

किहां वृद्ध पण हुं सदा, परद्रोह करवा पाव,
किहां बाल पण ए सदा, पर उपकार स्वभाव. ३

अर्थ—(अब अजितसेन राजा पश्चात्तापपूर्वक आत्मगर्हा करते हुए सोचता है कि—) वृद्ध होते हुए भी दूसरोंका द्रोह करनेवाला मैं पापी कहाँ? और बालक होते हुए भी परोपकार करनेके स्वभाववाला श्रीपाल कहाँ? (इसलिये मेरे बुढ़ापेको धिक्कार है और उसके बचपनको धन्य है कि जो अब भी मुझे कहता है कि भूमि- सुखका उपभोग करो और खेद न करो। सचमुच यह उत्तमताका अद्‌भुत नमूना है।) ॥३॥

गोत्रद्रोह कीरति नहीं, राजद्रोह नवि नीति,
बालद्रोह सद्‌गति नहीं, एह त्रणे मुज भीति. ४

अर्थ—फिर अपने गोत्रमें उत्पन्न हुए गोत्रीयका द्रोह करनेवालेकी जगतमें कीर्ति नहीं होती, राज्यद्रोह करनेवाला नीतिका उल्लंघन करनेसे नीतिभ्रष्ट होता है अतः वह शिक्षापात्र होता है और बालकका द्रोह करनेवालेकी अच्छी मति और अच्छी स्थिति नहीं होती, इसलिये मुझे ये तीनों प्रकारके भय है।

विस्तारार्थ—अजितसेन राजाने श्रीपालकुँवरसे तीनों प्रकारका द्रोह किया है— अपने भाईका पुत्र होनेसे श्रीपाल गोत्रीय था, राज्यसिंहासन पर स्थापित होनेसे श्रीपाल राजा था और बहुत ही छोटी उम्र होनेसे श्रीपाल बालक था। उसे मारनेका षड्‌यंत्र रचनेसे अजितसेन राजाने गोत्रद्रोह, राज्यद्रोह और बालद्रोह ये तीनों पाप किये हैं।

को न करे ते में कर्युं, पातिक निठुर निजाण,
नहि बीजुं बहु पापने, नरक विना मुज ठाण. ५

अर्थ—कोई (नीच) मनुष्य भी न करे ऐसा निर्दय भयंकर पाप मुझ अज्ञानीने किया है। इसलिये बहुत पाप करनेवाले मुझ पापीको नरकके बिना कोई ठौर नहीं है ॥५॥

एवा पण सहु पापने, उद्धरवा दिये हथ्थ,
प्रव्रज्या जिनराजनी, छे इक शुद्ध समत्थ. ६

अर्थ—फिर भी इन सभी पापोंसे उद्धार कर हाथ पकड़नेके लिये एक जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररूपित शुद्ध प्रव्रज्या (दीक्षा) ही समर्थ है अर्थात् एकमात्र भागवती दीक्षा ही मेरा हाथ पकड़कर इन सभी पापोंसे मुझे बचा सकती है ॥६॥

ते दुखवल्ली वन दहन, ते शिवसुख तरु कंद,
ते कुलघर गुणगणतणुं, ते टाले सवि दंद. ७

अर्थ—यह दीक्षा ही दुःखरूपी लताओंके बनको जलानेवाली है, यह दीक्षा ही मोक्षसुखरूप वृक्षके मूल समान है, यह दीक्षा ही गुणसमूहके रहनेके लिये मुख्य घर है और यह दीक्षा ही सारे दुःखोंकी नाशक है ॥७॥

ते आकर्षण सिद्धिनुं, भवनिःकर्षण तेह,
ते कषायगिरि भेद पवि, नोकषाय दव मेह. ८

अर्थ—यह चारित्र ही सिद्धगतिको आकृष्टकर खींच लानेवाला है, संसारका नाश करनेवाला है, कषायोंरूपी पर्वतको तोड़नेके लिये वज्र समान है और नोकषायरूपी दावानलको बुझानेके लिये मेघ समान है ॥८॥

प्रव्रज्जा गुण इम ग्रहे, देखे भवजल दोष,
मोह महामद मिट गयो, हुओ भावनो पोष. ९

अर्थ—इस प्रकार अजितसेन राजाने चारित्रके गुणोंको ग्रहण किया और संसारसमुद्रके दोषोंको देखा, इससे उसका मोहरूपी महान अभिमान (देहाभिमानरूप मिथ्यात्व=दर्शनमोहनीय) नष्ट हुआ और (समकितको उत्पन्न करनेवाले) भावोंकी पुष्टि हुई ॥९॥

भेदाणी बहु पाप थिति, कर्मे विवरज दीध,
पूरव भव तस सांभर्यो, रंगे चारित्र लीध. १०

अर्थ—इस प्रकार चिंतवन करते हुए अजितसेन राजाके पाप कर्मोंकी स्थिति बहुत टूट गयी, जिससे कर्मोंने बीचमें मार्ग (अंतःकरण) दिया अर्थात् उन्हें समक्त्वकी प्राप्ति हुई। इससे उन्होंने अपना पूर्वभव देखा, जिससे वैराग्य गाढ़ होनेसे उन्होंने शुभ भावपूर्वक चारित्र ग्रहण किया ॥१०॥

ढाल पाँचवीं

(थारे माथे पचरंगी पाग, सोनारो छोगलो थारुजी—ए देशी)

हुओ चारित्र जुत्तो, समिति ने गुत्तो, विश्वनो तारुजी,
श्रीपाल ते देखी, सुगुण गवेषी मोहियो, वारुजी,
प्रणमे परिवारे, भक्ति उदारे, विश्वनो तारुजी,
कहे तुज गुण थुणिये, पातक हणिये आपणां, वारुजी. १

अर्थ—पाँच समिति और तीन गुप्तिसे सहित और चारित्रयुक्त तथा विश्वके तारक ऐसे **अजितसेन** मुनिको देखकर सद्‌गुणोंकी गवेषणा करनेवाले (गुणानुरागी) श्रीपालराजा उन पर मोहित हुए और महा भक्तिके साथ सपरिवार उन्हें प्रणाम करने लगे और उनकी स्तुति (प्रशंसा) करते हुए कहने

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

लगे–हे भगवन्! हम आपके गुणोंकी स्तवना करके हमारे पापोंको नष्ट करेंगे ॥१॥

उपशम असिधारे, क्रोधने मारे, विश्वनो तारुजी,
तुं मद्दव वज्जे, मदगिरि भज्जे मोटकां, वारुजी,
माया विषवेली, मूल उखेडी, विश्वनो तारुजी,
तें अज्जव कीले, सहज सलीले सामटी वारुजी. २

अर्थ–हे मुनिराज! आप उपशमरूपी तलवारकी धारसे क्रोधको कत्ल करते हैं, (अर्थात् क्रोधसे रहित है), निरभिमानरूपी वज्रसे बड़े अभिमानरूपी पर्वतको तोड़ते हैं, (अर्थात् मानसे रहित है), तथा सरलतारूपी कीलसे सहजतासे लीलामात्रमें एक साथ मायारूपी लताको उखेड़ देते हैं (अर्थात् मायारहित है) ॥२॥

मूर्च्छाजल भरियो गहन गुहरियो, विश्वनो तारुजी,
तें तरियो दरियो, मुत्ति तरीशुं लोभनो वारुजी,
ए चार कषाया भव तरु पाया, विश्वनो तारुजी,
बहु भेदे खेदे सहित निकंदी तुं जयो वारुजी. ३

अर्थ–हे मुनिवर! आपने मूर्छारूपी जलसे भरे हुए, अत्यंत गहन और अपार लोभरूपी समुद्रको निर्लोभतारूपी नावसे पार किया है। इस प्रकार आपने संसाररूपी वृक्षके मूल समान अनेक भेदवाले और अत्यंत दुःख देनेवाले इन चार कषायोंको नष्ट किया है जिससे आपकी जयजयकार हो रही है ॥३॥

कंदर्पे दर्पे सवि सुर जीत्या, विश्वनो तारुजी,
ते तें इक धक्के, विक्रम पक्के मोडियो वारुजी,
हरिनादे भाजे गज नवि गाजे विश्वनो तारुजी,
अष्टापद आगल ते पण छागल सारिखो वारुजी. ४

अर्थ–हे स्वामिन्! कामदेवने अभिमानसे सब देवोंको जीत लिया है उस कामदेवके गर्वको भी पराक्रमकी परिपक्वतासे अर्थात् पंडित वीर्यसे (स्वरूपमें रमणतासे) एक धक्केसे ही आपने नष्ट कर दिया है। जिस प्रकार सिंहके आवाजसे हाथी भाग जाते हैं, गर्जना नहीं करते; किंतु वह सिंह भी अष्टापद प्राणीके आगे बोकरे जैसा दयनीय हो जाता है ॥४॥

रति अरति निवारी, भय पण भारी विश्वनो तारुजी,
तें मन नवि धरिया, तेहज डरिया तुज्जथी वारुजी,

www.jaintatvagyanshala.org

तें तजिय दुगंछा, शी तुज वंछा, विश्वनो तारुजी,
तें पुग्गल अप्पा, बिहुं पखवे थप्पा लक्षणे वारुजी. ५

अर्थ—हे स्वामिन्! आपने सत्कार आदिके प्रसंगमें आनंद (रति) और उपसर्गादि प्रसंगमें दुःख (अरति) को दूर किया है, तथा सात महाभयोंको भी छोड़ दिया है। इन कषाय और नोकषायोंको आपने मनमें स्थान नहीं दिया जिससे वे आपसे डर गये हैं। फिर आपने दुगंछाका भी त्याग किया है तो अब आपको किसकी इच्छा होगी? सचमुच! आपने आत्मा और पुद्गलको अपने-अपने लक्षणोंसे भिन्नकर दोनों पक्षोंमें अलग अलग स्थान दिया है। अर्थात् जड़-चेतनका भेदज्ञान कर लिया है॥५॥

परिसहनी फोजे, तुं निज मोजे विश्वनो तारुजी,
नवि भागो लागो, रण जिम नागो एकलो, वारुजी.
उपसर्गने वर्गे, तुं अपवर्गे, विश्वनो तारुजी,
चालंतां नडियो, तुं नवि पडियो पाशमां वारुजी. ६

अर्थ—फिर हे प्रभो! परिषहोंकी सेना सामने आने पर भी आप अपनी मस्तीसे आगे बढ़ रहे हैं; किन्तु जैसे रणभूमिमें अकेला हाथी पीछेहट नहीं करता, वैसे ही आप भी भयसे भाग नहीं गये, और मोक्षमार्गमें आगे बढ़ते हुए उपसर्गोंका समूह बाधा करने पर भी आप उसके पाशमें पड़े नहीं॥६॥

दोय चोर उठंता, विषम व्रजंता, विश्वनो तारुजी,
धीरज पविदंडे, तेज प्रचंडे, ताडियो वारुजी,
नई धारण तरतां, पार उतरतां, विश्वनो तारुजी,
नवि मारग लेखा, विगत विशेषा, देखिये वारुजी. ७

अर्थ—तथा हे स्वामिन्! राग और द्वेषरूपी दो चोर खड़े होकर आपको संसारके भयंकर मार्गमें ले जाने लगे तो आपने उन्हें धीरजरूपी वज्र दंडसे प्रचंड प्रहार करके मार दिया। इस संसार समुद्रसे पार पानेके लिये विशेषतासे रहित ऐसे मार्गोंका कोई हिसाब नहीं है। (अर्थात् संसारसमुद्रको तिरनेके अमुक अमुक ही मार्ग है ऐसा न मानना चाहिये। उनकी कोई गिनती नहीं है अर्थात् अनेक मार्ग हैं।)॥७॥

तिहां जोगनालिका, समता नामे, विश्वनो तारुजी,
ते जोवा मांडी, उत्पथ छांडी उद्यमे वारुजी,

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तिहां दीठी दूरे, आनंद पूरे, विश्वनो तारुजी,
उदासीनता शेरी, नहि भव फेरी, वक्र छे वारुजी. ८

अर्थ–हे स्वामिन्! उसके बाद वहाँ मोक्षमार्गमें आगे बढ़ते हुए आप उन्मार्गका त्याग करके मन-वचन-काया इन तीनों योगोंकी एकाग्रतासे समता नामक योगनालिकाको प्रयत्नपूर्वक देखने लगे। तो आपको दूर हर्षके आवेगपूर्वक योगनालिका दिखायी दी तथा संसारके भावोंसे विरक्तिरूप उदासीनता सेरी (गली) भी दृष्टिगोचर हुई कि जिससे इस संसारभ्रमणकी वक्रता रहती नहीं है ॥८॥

विशेषार्थ–मोक्षके अनेक मार्ग है, तो अब कौनसा मार्ग अपनानेसे मोक्षमें जा सके? इसका आपने अध्यवसायकी स्थिरतासे विचार लिया और तीनों योगोंकी चंचलताको दूरकर एकाग्रतापूर्वक समताका अध्यवसाय किया जिससे आपको त्रियोगमें समतारूप योगनालिका दूरसे नजर आई, इसलिये आपने अन्य सब रास्तोंको उन्मार्ग जानकर उस ओर ध्यान न देते हुए उस समतारूप योगनालिकाको एकलक्ष्यपूर्वक खोजनेका उद्यम करते करते दूरसे ही आपने समतारूप योगनालिकाको पूर्ण हर्षके साथ देख लिया। किन्तु इस योगनालिका तक पहुँचना कैसे? इसका सरल मार्ग सोचने लगे। सोचते-सोचते आपको उदासीनता (नौ प्रकारके परिग्रहसे उबकर उसके त्यागरूप परिणाम) रूप सेरी मिल गई। जिसे यह सेरी (गली) हाथ लग जाती है उसे वापिस संसारमें वक्रता नहीं होती अर्थात् संसारमें इधर-उधर टेढ़ा-मेढ़ा घूमना नहीं पड़ता, जन्ममरणका चक्र बंद हो जाता है, क्योंकि यह सेरी सिद्धगतिको ही पहुँचाती है।

ते तुं नवि मूके, जोग न चूके, विश्वनो तारुजी,
बाहिर ने अंतर, तुज निरंतर, सत्य छे वारुजी,
नय छे बहु रंगा, तिहां न एकंगा, विश्वनो तारुजी,
तुमे नय पक्षकारी, छो अधिकारी, मुक्तिना वारुजी. ९

अर्थ–हे स्वामिन्! अब आप उस उदासीनताको छोड़ते नहीं है और योगकी एकाग्रतासे चूकते नहीं है, इसलिये आप बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकारसे सत्यमार्गको पा चुके हैं। नय अनेक हैं और उसके भेद भी अनेक हैं किन्तु आपने उन सबको छोड़कर एक निश्चयनयका पक्ष लिया है अर्थात् उसे ग्रहण किया है इसलिये आप अब मोक्षके ही अधिकारी है ॥९॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तुमे अनुभव जोगी, निजगुण भोगी, विश्वनो तारुजी,
तुमे धर्म +संन्यासी, शुद्ध प्रकाशी, तत्त्वना वारुजी,
तुमे आतमदरसी, उपशम वरसी, विश्वनो तारुजी,
सींचो गुणवाडी, थाय ते जाडी, पुण्यशुं वारुजी. १०

अर्थ—हे स्वामिन्! आप आत्मस्वभावका अनुभव करनेवाले योगी हैं जिससे अपने ज्ञानादि गुणोंको भोगनेवाले हैं, स्वधर्मको अच्छी तरहसे +स्थापन करनेवाले हैं अर्थात् स्वधर्मके शुद्ध प्ररूपक हैं, शुद्धतत्त्वको बतानेवाले हैं, आत्माकी गवेषणा करनेवाले हैं, उपशमरसको बरसानेवाले हैं, और आत्मगुणोंके उद्यानको समतारूपी रससे सींचते हो जिससे वह पुण्यसे पुष्ट होता है ॥१०॥

अप्रमत्त प्रमत्त न द्विविध कहीजे, विश्वनो तारुजी,
जाणंग गुणठाणंग एक ज भावे तें ग्रह्यो वारुजी,
तुमे अगम अगोचर, निश्चय संवर विश्वनो तारुजी,
फरस्युं नवि तरस्युं, चित्त तुम केरुं स्वप्नमां वारुजी. ११

अर्थ—हे स्वामिन्! आपको प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये दो गुणस्थानक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि आपने स्व-उपयोगमें रहकर एक ही गुणस्थानकको ग्रहण किया है। तथा आप, स्वरूपसे न जाने जा सके ऐसे अगम्य, अध्यवसायसे न देखे जा सके ऐसे अगोचर, और निश्चय संवर भावयुक्त है (इसलिये आप नवीन कर्मोंका बंध नहीं करते) तथा तृष्णा स्वप्नमें भी आपके चित्तको स्पर्श नहीं करती ॥११॥

विशेषार्थ—यद्यपि संयमी आत्मा (सर्वविरति सम्यग्दृष्टि) प्रमत्त और अप्रमत्त इन दो गुणस्थानकोंमें हिंदोलान्यायसे झूलते रहते हैं परन्तु उन गुणस्थानकोंमें अंतर्मुहूर्त्तसे ज्यादा नहीं रहते। फिर भी कई प्रमत्तमें उत्कृष्ट काल तक रहते हैं और अप्रमत्तमें जघन्य काल तक रहते हैं, जबकि कुछ अप्रमत्तमें बहुत समय तक रहते हैं और प्रमत्तमें जघन्यकाल तक रहते हैं। कई साधु दोनों गुणस्थानकमें मध्यमकाल तक रहते हैं। ये अजितसेन मुनि प्रमत्तमें अल्प समय मात्र रहते होनेसे, मानो एक अप्रमत्त गुणस्थानकमें ही रहते हैं ऐसा कहा है ॥११॥

+ मूल शब्द संन्यासी है जिसमें न्यासका अर्थ स्थापना करना (न्यासी=ट्रस्टी) भी होता है और त्याग करना भी होता है।

www.jaintatvagyanshala.org

तुज मुद्रा सुंदर, सुगुण पुरंदर, विश्वनो तारुजी,
सूचे अति अनुपम, उपशम लीला चित्तनी वारुजी,
जो दहन गहन होय, अंतरचारी, विश्वनो तारुजी,
तो किम नव पल्लव तरुअर दीसे, सोहतो वारुजी.१२

अर्थ–हे स्वामिन्! आपकी मुखमुद्रा सुंदर और अच्छे गुणोंवाले इन्द्रके समान है, इसलिये आपकी मुद्रा चित्तकी अनुपम उपशमरसकी अतिशय लीलाको दर्शाती है; क्योंकि यदि भीतरमें गहन अग्नि सुलग रही हो तो वृक्ष नवपल्लवित और सुशोभित कैसे दिखाई देगा? ॥१२॥

वैरागी त्यागी, तुं सोभागी विश्वनो तारुजी,
तुज शुभ मति जागी, भावठ भागी मूलथी वारुजी,
जग पूज्य तुं मारो, पूज्य छे प्यारो, विश्वनो तारुजी,
पहेलां पण नमियो, हवे उपशमियो, आदर्यो वारुजी. १३

अर्थ–हे स्वामिन्! आप रागरहित है, सर्व संयोगोंका त्याग करनेवाले हैं तथा सद्भागी हैं। आपको अब सद्मति प्राप्त हुई है इसलिये संसारकी परंपराका मूलसे ही नाश हो गया है। फिर आप सारे जगतमें पूजनीय है और मेरे लिये तो विशेष पूजनीय है, क्योंकि पहले संसारावस्थामें मेरे चाचा होनेसे प्रणाम करने योग्य थे और अब तो आपने उपशमरसको अंगीकृत किया है इसलिये विशेषरूपसे नमन योग्य हैं॥१३॥

विशेषार्थ–त्याग और वैराग्य ये दो मोक्षमार्गके आवश्यक गुण है। वैराग्यके बिना त्याग (बाह्य त्याग) नहीं टिक सकता और वैराग्यका फल बाह्य त्याग आना जरूरी है। वैराग्य अर्थात् अनासक्त भाव, अन्तर्त्याग। पहले मनसे बाह्य पदार्थोंका राग दूर होता है, फिर उसका त्याग किया जाता है। आपमें त्याग और वैराग्य दोनों होनेसे आप सद्भागी है, बड़े भाग्यशाली है।

एम चोथे खंडे, राग अखंडे, संथुण्यो विश्वनो तारुजी,
जे मुनि श्रीपाळे, पंचमी ढाळे ते कह्यो, वारुजी,
जे नवपदमहिमा महिमाये मुनि गावशे, विश्वनो तारुजी,
ते विनय सुजस गुण, कमला विमला पामशे, वारुजी. १४

अर्थ–इस प्रकार श्रीपालराजाने अजितसेन मुनिकी अखंड रागसे स्तुति की। इस प्रसंगका चौथे खंडकी इस पाँचवीं ढालमें कथन किया। जो मुनि नवपदजीकी महिमाको विशेषतासे गायेंगे वे विनय और सुयशरूपी निर्मल

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

लक्ष्मीको प्राप्त करेंगे ('विनय' और 'सुजस' शब्दसे कर्त्ताने अपने और ग्रंथ प्रारंभकर्त्ताके नामका निर्देश भी किया है।) ॥१४॥

चतुर्थ खंडकी पाँचवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

अजितसेन मुनि इम थुणी, तेहने पाट विशाल,
तस अंगज गजगति सुमति, थापे नृप श्रीपाल. १

अर्थ—इस प्रकार अजितसेन मुनिकी स्तुति कर उनका राज्यगद्दी पर उनके सद्बुद्धिवान पुत्र गजगतिको श्रीपालराजाने बिठाया ॥१॥

कारज कीधां आपणां, आरजने सुख दीध,
श्रीपाले बल पुण्यने, जे बोल्युं ते कीध. २

अर्थ—इस प्रकार श्रीपालराजाने अपने सभी कार्य सिद्ध किये और सज्जन पुरुषोंको सुखी किया। यों पुण्यके प्रभावसे जैसा कहा था वैसे किया अर्थात् अपने पितृकुलका राज्य भी जीत लिया ॥२॥

ढाल छठ्ठी

(बलद भला छे सोरठी रे लाल—ए देशी)

विजय करी श्रीपालजी रे लाल, चंपानगरीए करे प्रवेश रे, सोभागी,
टाल्या लोकना सकल कलेश रे, सो॰ चंपानगरी ते बनी सुविशेष रे, सो॰
शणगार्यां हाट अशेष रे, सो॰ पटकुले छाया प्रदेश रे. सो॰
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १

अर्थ—अब श्रीपालराजाने युद्धमें विजय प्राप्तकर चंपानगरीमें प्रवेश किया तब सब लोगोंके दुःख दूर किये तथा चंपानगरी विशिष्ट शोभायुक्त हुई। सभी दूकानें रेशमी वस्त्रोंसे चारों ओरसे ढँककर सुंदर प्रकारसे सजायी गयी तथा नगरके सभी स्त्रीपुरुष श्रीपालराजाकी जयजयकार करने लगे ॥१॥

फरके ध्वजा तिहां चिहुं दिशे रे लाल, पग पग नाटारंभ रे, सो॰
मांड्यां ते सोवन थंभ रे, सो॰ गावे गोरी अदंभ रे, सो॰
जेणे रूपे जीती छे रंभ रे, सो॰ बंभने पण होई अचंभ रे, सो॰
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. २

अर्थ—(चंपानगरीकी शोभाका कवि वर्णन करते हैं—) पूरी चंपानगरीमें चारों ओर बड़ी बड़ी ध्वजाएँ लहरा रही थी, कदम कदम पर नृत्य हो रहे थे,

www.jaintatvagyanshala.org

जगह जगह पर सुवर्णके स्तंभ खड़े किये गये थे, उन स्तंभों पर मंच बनाये गये थे उन पर बैठकर रूपसे रंभाको भी जीतनेवाली स्त्रियाँ निर्दंभतासे मांगलिक गीत गा रही थी। उन रूपसी स्त्रियोंको देखकर ब्रह्माको भी आश्चर्य होता था कि ऐसी स्त्रियाँ मैंने कब बनायी थी? ॥२॥

सुरपुरी झंपा जे करी रे लाल, चंपा हुई तिणवार रे, सो०
मद मोद समुद्रमां सार रे सो० फलियो साहस मानुं उदार रे, सो०
तिहां आव्यो हरि अवतार रे सो० श्रीपाल ते कुल उद्धार रे, सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ३

अर्थ–(यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करते हैं–) स्वर्गपुरीने अच्छा स्थान प्राप्त करनेके लिये अहंकारके हर्षको धारण करके समुद्रमें झंपापात किया था सो मैं मानता हूँ कि स्वर्गपुरीका बड़ा साहस अर्थात् धैर्य फलीभूत हुआ और वह चंपापुरीके रूप अवतरित हुई और उस चंपानगरीमें अपने कुलका उद्धार करनेवाले श्रीपालराजा इंद्रके अवतारके रूपमें पैदा हुए। अर्थात् चंपापुरी स्वर्गपुरीसे भी उत्तम है और श्रीपालराजा इंद्रके अवतार तुल्य है ॥३॥

मोतीय थाल भरी करी रे लाल, वधावे वर नार रे, सो०
करकंकणना रणकार रे सो० पग झांझरना झमकार रे, सो०
कटि मेखलना खलकार रे सो० वाजे मादलना धौंकार रे, सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ४

अर्थ–श्रीपालराजाके नगरप्रवेशके समय श्रेष्ठ स्त्रियाँ मोतियोंके थालसे पूजनकर स्वागत कर रही थी, उस समय उनके हाथोंमें पहने हुए सुवर्ण कंगनोंका रणकारका आवाज हो रहा था, पैरोंमें पहने हुए नुपूरका झनकारका आवाज हो रहा था, कटिप्रदेशमें पहनी हुई करधनीका खलकारका आवाज हो रहा था। इस प्रकार वे स्त्रियाँ श्रीपालका स्वागत कर रही थी। साथमें मृदंग आदि वाद्योंका धौंकारका आवाज हो रहा था ॥४॥

सकल नरेसर तिहां मळी रे लाल, अभिषेक करे फरी तास रे, सो०
पितृपट्टे थापे उल्लास रे सो० मयणा अभिषेक विशेष रे, सो०
लघुपट्टे आठ जे शेष रे सो० सीधो जे कीधो उद्देश रे, सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ५

अर्थ–प्रवेश होनेके बाद सब राजाओंने मिलकर श्रीपालराजाका फिरसे (पहले बचपनमें एक बार राज्याभिषेक हो चुका था इसलिये) दूसरी बार राज्याभिषेक किया और पिताके पद पर उल्लासपूर्वक उन्हें स्थापित किया।

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

फिर मयणासुंदरीका मुख्य पट्टरानीके रूपमें विशेष अभिषेक किया और शेष आठ स्त्रियोंको लघु रानीके पद पर स्थापित किया। इस प्रकार श्रीपालराजाने अपनी भुजाके बलसे, पिताका राज्य स्वाधीन करनेका जो ध्येय (निश्चय) किया था उसे सिद्ध किया ॥५॥

एक मंत्री मतिसागरु रे लाल, तीन धवलतणा जे मित्त रे, सो°
ए चारे मंत्री पवित्त रे सो° श्रीपाल करे शुभचित्त रे, सो°
ए तो तेजे हुओ आदित्त रे सो° खरचे बहुलुं निज वित्त रे, सो°
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ६

अर्थ–फिर श्रीपालराजाने उदार मनसे मतिसागरको एक मुख्यमंत्री बनाया और धवलसेठके जो तीन सन्मति देनेवाले मित्र थे उन्हें भी मंत्री बनाया। ये चारों मंत्री पवित्र मनवाले थे। अब श्रीपालराजा तेजसे सूर्य जैसे प्रतापी हुए और अपने बहुतसे धनको सत्कार्योंमें खर्चकर उत्तम नाम कमाने लगे ॥६॥

कोसंबी नयरी थकी रे लाल, तेडाव्यो धवलनो पुत्त रे सो°
तेनुं नाम विमल छे युत्त रे सो° तेह शेठ कर्यो सुमुहुत्त रे सो°
सोवन पटबंध संयुत्त रे सो° कीधा कोष ते अखय सुगुत्त रे सो°
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ७

अर्थ–फिर श्रीपालराजाने कौशांबीनगरीसे धवलसेठके पुत्रको बुलाया जिसका 'यथा नाम तथा गुणाः' ऐसा विमलसेठ नाम था। उसे सुवर्णके वस्त्राभूषण भेट देकर शुभ मुहूर्त्तमें नगरसेठकी पदवी दी, तथा कभी क्षय न हो ऐसे अक्षय और अतिगुप्त भंडार इकट्ठे किये ॥७॥

उत्सव चैत्य अट्ठाईयां रे लाल, विरचावे विधि सार रे सो°
सिद्धचक्रनी पूजा उदार रे सो° करे जाणी तस उपगार रे सो°
तेनो धर्मी सहु परिवार रे सो° धर्मे उल्लसे तस दार रे सो°
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ८

अर्थ–तत्पश्चात् उन्होंने उत्तम विधिपूर्वक जिनचैत्यमें अष्टाह्निका महोत्सव करवाया और श्री सिद्धचक्रजीका महान उपकार है यों समझकर उनकी बड़ी पूजाएँ भणायी। फिर उनका सारा परिवार भी धर्ममें रुचिवाला हुआ और उनकी सभी स्त्रियाँ धर्ममें अत्यंत उल्लसित परिणाम रखनेवाली हुई ॥८॥

www.jaintatvagyanshala.org

चैत्य करावे तेहवां रे लाल, जेह स्वर्गशुं मांडे वाद रे सो०
विधुमंडल अमृत आस्वाद रे सो० ध्वज जीहे लिये अविवाद रे सो०
तेणे गाजे ते गुहिरे नाद रे सो० मोडे कुमतिना उन्माद रे सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ९

अर्थ–फिर मानो स्वर्गके साथ वाद (स्पर्धा) करते हों ऐसे ऊँचे और शोभायुक्त जिनचैत्य कराये। वे चैत्य (मंदिर) इतने उत्तुंग थे कि मानो अपनी ध्वजारूपी जीभसे सुखपूर्वक चंद्रमंडलके अमृतका आस्वाद ले रहे हो। इससे वे ध्वजाएँ गंभीर आवाजसे गरज रही थी और जिनमंदिर और जिनमूर्तिको नहीं माननेवाले कुमतियोंके उन्मादका नाश कर रही थी। यहाँ कविने ऐसी कल्पना की है कि ध्वजाएँ गंभीर आवाज करके मूर्तिको न माननेवाले कुलिंगीओंको बता रही थी कि जगतमें हमारा यश गरज रहा है अर्थात् सर्वत्र हमारी जयजयकार हो रही है इसलिये तुम अपने अभिमानको छोड़ दो ॥९॥

पडह अमारी वजाविया रे लाल, दीधां दान अनेक रे सो०
साचविया सकल विवेक रे सो० समकितनी राखी टेक रे सो०
न्याये राम कहायो ते छेक रे सो० ते राजहंस बीजा भेक रे सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १०

अर्थ–फिर श्रीपालराजाने अपने समग्र राज्यमें अमारी (अ+मारी=किसी जीवको न मारना) पटह बजवा कर सब जीवोंको अभयदान दिया और अन्य अनेक प्रकारके दान दिये, उसमें सर्व प्रकारके विवेकका ध्यान रखा अर्थात् विवेकपूर्वक सुपात्रदान, औषधदान, ज्ञानदान, अनुकंपादान आदि प्रकारके दान दिये और सम्यक्त्वकी निश्चलता अखंड रखी। न्यायनीतिमें श्रीपालराजा राम जैसे कहलाये, जिससे उस समय वे राजहंस जैसे लग रहे थे जबकि अन्य राजा मेंढ़क जैसे लग रहे थे ॥१०॥

अचरिज एक तेणे कर्युं रे लाल, मन गुप्तगृहे हुता जेह रे सो०
कर्णादिक नृप ससनेह रे सो० छोडाविया सघला तेह रे सो०
निज अद्भुत चरित अछेह रे सो० देखावी निज गुणगेह रे सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. ११

अर्थ–फिर श्रीपालकुँवरने एक बड़ा आश्चर्यकारी काम किया, वह यह कि लोगोंके चित्तरूपी कारागृहमें स्नेहपूर्वक रहे हुए कर्ण आदि राजाओंको अपना अद्भुत, गुणधामरूप और अपार चरित्र दिखाकर मुक्ति दिलायी ॥११॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

विस्तारार्थ—आज तक लोग मनमें शूरवीरता, त्याग आदि सद्गुणोंसे कर्ण आदि राजाओंको हमेशा याद करते थे अर्थात् कर्ण आदि राजा लोगोंके मनरूपी कारागृहमें बंद थे। उसके बदले श्रीपालराजाके ऐसे सर्वगुणसंपन्न आश्चर्यकारी जीवनचरित्रको देखकर लोग कर्ण आदि राजाओंको भूल गये अर्थात् उन्हें मनमेंसे निकाल दिया—मनरूपी कारागृहसे मुक्त किया और श्रीपालकुँवरको ही वारंवार याद करने लगे।

श्रीपाल प्रतापथी तापियो रे लाल, विधि शयन करे अरविंद रे सो°
करे जलधिवास मुकुंद रे सो° हर गंग धरे निस्पंद रे सो°
फरे नाठा सूरज चंद रे सो° अरि सकल करे आक्रंद रे सो°
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १२

अर्थ—श्रीपालराजाके प्रतापरूप तापसे तप्त हुए ब्रह्माने शीतलता प्राप्त करनेके लिये कमलमें शयन किया, विष्णुने समुद्रमें निवास किया, महादेव (शंकर)ने मस्तक पर जलके प्रवाहवाली गंगा धारण की, सूर्य-चंद्र भागते फिरने लगे और सर्व शत्रु आक्रंद करने लगे ॥१२॥

तस जस छे गंगा सारिखो रे लाल, तिहां अरि अपजश सेवाल रे सो°
जिम कपूरमांहे अंगार रे, सो° अरविंदमांहे अलिबाल रे सो°
अन्योन्य संयोग निहाल रे सो° दिये कवि उपमा ततकाल रे सो°
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १३

अर्थ—उस श्रीपालराजाका यश गंगा जैसा उज्ज्वल (पवित्र) है और श्रीपालकी यशरूप गंगानदीमें शत्रुओंका अपयश काईके समान है तथा कपूर जैसे उज्ज्वल श्रीपाल राजाके यशमें शत्रुओंका अपयश कोयले जैसा श्याम है और श्रीपालके कमल जैसे यशमें शत्रुओंका अपयश भौरे जैसा काला है। इस प्रकार परस्पर संयोगसे विचार करे। यों कवि दोनोंको ऐसी उपमाएँ दे रहा है ॥१३॥

सुरतरु स्वर्गथी उतरी रे लाल, गया अगम अगोचर ठाम रे सो°
जिहां कोई न जाणे नाम रे सो° तिहां तपस्या करे अभिराम रे सो°
जब पाम्युं अद्भुत ठाम रे सो° तस कर अंगुली हुआ ताम रे सो°
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १४

अर्थ—(अब श्रीपालकी दानवीरताके लिये कवि उत्प्रेक्षा करता है कि—) श्रीपाल इतने दानवीर थे कि कोई कल्पवृक्षका अर्थी न रहा अर्थात् कोई कल्पवृक्षको याद नहीं करता था इसलिये मानो वे कल्पवृक्ष भी स्वर्गसे

www.jaintatvagyanshala.org

उतरकर किसी अनजान और एकांत स्थान पर चले गये और वहाँ गुप्तरूपसे सुंदर तपश्चर्या करने लगे; और जब तपके प्रभावसे अद्भुत स्थान प्राप्त हुआ तब वे श्रीपालके हाथकी अंगुलियोंके रूपमें पैदा हुए। अर्थात् श्रीपालराजा दान देकर कल्पवृक्षकी तरह लोगोंके मनोवांछित पूर्ण करते थे ॥१४॥

जस प्रताप गुण आगलो रे लाल, गिरुओ ने गुणवंत रे सो०
पाले राज महंत रे सो० वयरीनो करे अंत रे सो०
मुखपद्म सदा विकसंत रे सो० लीला लहेर धरंत रे सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १५

अर्थ—इस प्रकार श्रीपालराजा प्रताप और यशमें सबसे आगे थे तथा महान और गुणवान थे, विशाल राज्यका अच्छी तरहसे पालन करते थे, शत्रुओंका नाश करते थे और लीला लहर करते थे अर्थात् आनंदपूर्वक मस्तीसे जीवन व्यतीत करते थे, जिससे उनका मुखकमल हमेशा विकस्वर (प्रसन्न व प्रमुदित) रहता था ॥१५॥

मेरु मवे जे अंगुले रे लाल, कुश अग्रे जलनिधि नीर रे सो०
फरसे आकाश समीर रे सो० तारागण गणित गंभीर रे सो०
श्रीपाळ सुगुणनो तीर रे सो० ते पण नवि पामे धीर रे सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १६

अर्थ—कोई मनुष्य क्वचित् अंगुलियोंसे मेरुपर्वतको नाप ले, दर्भ जातिकी घासके अग्रभागसे समुद्रके पानीको निकाल ले, पवनसे आकाशको छू ले और तारोंके समूहकी गिनती कर ले, किन्तु ऐसा गंभीर धीर मनुष्य भी श्रीपालराजाके गुणरूपी समुद्रके किनारेको नहीं पा सकता, अर्थात् श्रीपालके गुणोंका अंत नहीं पा सकता ॥१६॥

चोथे खंडे पूरी थई रे लाल, ए छठ्ठी ढाळ अभंग रे सो०
इहां उक्ति ने युक्ति सुचंग रे सो० नवपद महिमानो रंग रे सो०
एहथी लहिये ज्ञान तरंगरे सो० वळी विनय सुयश सुखसंग रे सो०
जय जय भणे नर नारीओ रे लाल. १७

अर्थ—इस प्रकार चौथे खण्डकी छठीं ढाल अभंगरूपसे पूरी हुई। इसमें कविने अत्यंत मनोहर कहावतें और [1]युक्तियोंका प्रयोग किया है और यह सब नवपदकी महिमाका प्रभाव है। नवपदके प्रभावसे ज्ञानकी तरंगे, विनय, सुयश

१. युक्ति=साहित्यमें एक अलंकार जिसमें अपने मर्मको छिपानेके लिये दूसरोंको किसी क्रिया या युक्ति द्वारा वंचित करनेका वर्णन हो। तर्क, उपमाएँ।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

और सुखके संयोग प्राप्त हो ऐसी कवि कामना करता है। ('विनय' और 'सुयश' शब्दसे श्री यशोविजयजीने अपने और ग्रंथके आद्यकर्त्ता श्री विनयविजयजीका नामनिर्देश भी किया है।) ॥१७॥

चतुर्थ खंडकी छठीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

एहवे राजऋषि भलो, अजितसेन जस नाम,
ओहिनाण तस ऊपन्युं, शुद्ध चरण परिणाम. १

अर्थ—इतनेमें शुभ परिणामवाले अजितसेन नामक राजर्षिको शुद्ध चारित्रके अध्यवसायसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ ॥१॥

तिण नगरी ते आवियो, सुणी आगमन उदंत,
रोमांचित श्रीपाल नृप, हर्षित हुओ अत्यंत. २

अर्थ—फिर वे अजितसेन मुनि विहार करते हुए चंपानगरीमें आये। उनके आगमनके समाचार सुनकर रोमांचित हुए श्रीपालराजा अत्यंत हर्षित हुए ॥२॥

वंदन निमित्ते आवियो, जननी भज्ज समेत,
मुनि नमि करीय प्रदक्षिणा, बेठो धर्म संकेत. ३

अर्थ—फिर माता और पत्नी सहित श्रीपालराजा मुनिकी वंदनाके लिये आये और नमस्कारकर प्रदक्षिणा देकर धर्म सुननेके लिये यथास्थान बैठे ॥३॥

सुणवा वंछे धर्म ते, गुरु सन्मुख सुविनीत,
गुरु पण तेहने देशना, दे नय समय अधीत. ४

अर्थ—अब श्रीपालराजा गुरुमहाराजके सन्मुख विनयपूर्वक धर्म सुननेके इच्छुक थे, इसलिये नय और सिद्धांतके ज्ञाता ऐसे गुरु महाराज उन्हें धर्मदेशना देने लगे ॥४॥

ढाल सातवीं

(हस्तिनापुर वर भलो—ए देशी)

प्राणी वाणी जिनतणी, तुम्हे धारो चित्त मझार रे,
मोहे मूंझ्या मत फिरो, मोह मूक्ये सुख निरधार रे,
मोह मूक्ये सुख निरधार, संवेग गुण पाळीए पुण्यवंत रे,
पुण्यवंत अनंत विज्ञान वदे इम केवली भगवंत रे. १

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—हे भव्य प्राणियों! तुम जिनेश्वर भगवानकी वाणीको चित्तमें धारण करो, परंतु मोहमायामें फँसकर संसारमें न भटको। वास्तवमें मोह दशाका त्याग करनेसे ही निश्चयसे सुखका प्रादुर्भाव होता है, अतः संसारसे उद्विग्न होकर संवेगको धारण करो। हे पुण्यवंत प्राणी! अनंतज्ञान निधान केवली भगवानने इस प्रकार कहा है ॥१॥

दश दृष्टांते दोहिलो, मानवभव ते पण लब्ध रे,
आरज क्षेत्रे जन्म जे, ते दुर्लभ सुकृत संबंध रे.
ते दुर्लभ सुकृत संबंध, संवेग गुण पाळीए पुण्यवंत रे. २

अर्थ—हे भव्य प्राणियों! चूल्लक आदि दश दृष्टांतोंसे दुर्लभ ऐसा यह मनुष्यभव तुमने प्राप्त किया है। उसमें भी पूर्वके सत्कृत्योंसे ही प्राप्त हो ऐसा अतिशय दुर्लभ आर्यक्षेत्र भी तुम्हें प्राप्त हुआ है ॥२॥

आर्यक्षेत्रे जनम हुओ, पण उत्तमकुल ते दुर्लभ रे,
व्याधादिक कुळे ऊपनो, शुं आरज क्षेत्र अचंभ रे. शुं० सं० ३

अर्थ—क्वचित् पुण्ययोगसे आर्यक्षेत्रमें जन्म हो जाय फिर भी उसमें धन धान्यादिसे पूर्ण और विशुद्ध उत्तम कुलकी प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है, क्योंकि हिंसक कुलमें जन्म हो ऐसा आर्यक्षेत्र मिल भी जाये तो उसमें क्या आश्चर्य! (अर्थात् वैसा आर्यक्षेत्र भी व्यर्थ है।) ॥३॥

कुळ पावे तो पण दुल्लहो, रूप आरोग आउ समाज रे,
रोगी रूपरहित घणा, हीण आउ दिसे छे आज रे. ही०सं० ४

अर्थ—कदाचित् पुण्ययोगसे उत्तम कुल भी प्राप्त हो गया तो भी सुंदर रूप, दीर्घ आयुष्य और आरोग्यता इन सबका संयोग होना भी दुर्लभ है, क्योंकि उत्तम कुलमें भी कई प्राणी रोगी, कुरूप और कई अल्प आयुष्यवाले दिखायी देते है ॥४॥

ते सवि पामे पण सही, दुलहो छे सुगुरु संयोग रे,
सघले क्षेत्रे नहि सदा, मुनि पामीजे शुभ योग रे. मु० सं० ५

अर्थ—और क्वचित् ऊपर कहे अनुसार नीरोगिता आदि सर्व प्राप्त हो जाय तो भी सद्‌गुरुका संयोग होना अति दुर्लभ है, क्योंकि सभी क्षेत्रोंमें पंचमहाव्रतधारी साधु भगवंतका समागम नहीं होता ॥५॥

महोटे पुण्ये पामिये, जो सद्‌गुरु संग सुरंग रे,
तेर काठीया तो करे, गुरुदर्शन उत्सव भंग रे. गु० सं०६

अर्थ–फिर महान पुण्यके उदयसे अच्छे उत्साहके साथ सद्गुरुका सत्समागम हो भी जाये, तो तेरह काठी (धूर्त्त) गुरुदर्शनके उत्साहको तोड़ डालते है ॥६॥

विस्तारार्थ–इन तेरह काठीका स्वरूप इस प्रकार है–

(१) आलस्य : गुरुके पास जानेमें आलस्य होना।

(२) मोह : पुत्रादि ऊपर मोह होनेसे उनकी खटपटमें लगा रहे किन्तु गुरुके पास जानेका मन न हो।

(३) अविनय : गुरु कुछ खाना-पीना नहीं देंगे, व्यापार करेंगे तो पेट भरेगा यों सोचकर गुरुके पास न जाय।

(४) अभिमान : मानके कारण गुरु आदिको नमस्कार करनेका मन न होना।

(५) क्रोध : गुरु हमारा स्वागत नहीं करते, हमें बुलाते नहीं, धर्मलाभ आदि भी नहीं देते–यों सोचकर मनमें क्रोध लाना।

(६) प्रमाद : प्रमादके कारण गुरुके पास न जाना।

(७) कृपणता : गुरु महाराजके पास जानेसे धर्ममें कुछ पैसे खर्च करने पड़ेंगे यों मनमें कृपणताके भावसे गुरुके पास न जाना। आश्चर्यकी बात है कि कृपणके लिये ऐसे अभयस्थान भी भयके स्थान हो जाते हैं।

(८) भय : गुरु आदिसे भयभीत रहा करे।

(९) शोक : इष्ट वस्तुके वियोग आदिके कारण शोक रखा करे।

(१०) अज्ञान : अनजान होनेसे गुरुके पास न जाना।

(११) विकथा : दूसरे लोगोंकी निंदा आदि चार प्रकारकी विकथामें लगे रहनेसे गुरुके पास जानेका समय न मिलना।

(१२) कौतुक : गुरुमहाराजके पास जाते हुए बीचमें कौतुक देखने खड़े रह जाना।

(१३) विषय : पाँच इंद्रियोंके विषयोंमें रचा-पचा रहनेसे सत्समागमकी रुचि न होना।

दर्शन पामे गुरु तणुं, धूर्ते व्युद्ग्राहित चित्त रे,
सेवा करी जन नवि शके, होय खोटो भाव अमित्त रे. हो० सं० ७

अर्थ–कदाचित् पुण्यके उदयसे सद्गुरुका दर्शन भी हो जाय और उनका उपदेश सुननेको मिले, तो भी पूर्व सेवित धूर्त्त गुरुकी संगतिसे चित्त

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

कदाग्रही हुआ होता है, इससे सद्‌गुरुके प्रति किंचित् भी सद्भाव नहीं होता, संपूर्ण मिथ्याभाव ही रहता है और इस कारणसे सद्‌गुरुकी सेवा-भक्ति नहीं कर सकता ।।७।।

विस्तारार्थ—अगली गाथामें कहा है तदनुसार सद्‌गुरुका समागम हो और तेरह काठी (धूर्त्तो) को रोककर भी क्वचित् सद्‌गुरुके दर्शनको प्राप्त हो तो भी पूर्वकालमें कुगुरुओंकी अर्थ और कामके लिये अत्यंत उपासना की हो, उन्होंने अपने वचन अत्यंत दृढ़तासे उसमें जमा दिये हो; इसलिये फिर सद्‌गुरुका समागम हो, उनके दर्शन हो और उनका उपदेश सुने तो भी उसमें श्रद्धा नहीं होती। पूर्वकालके कुगुरुओंके संस्कार ऐसे जम गये होते हैं कि वे दूर नहीं होते। इससे वे सद्‌गुरुके प्रति श्रद्धा ही नहीं होने देते, तो उनके वचन पर तो श्रद्धा कहाँसे हो? जब पुरुष प्रतीति ही नहीं होती तो वचन प्रतीतिका तो प्रश्न ही नहीं है। इस विषय पर एक दृष्टांत जानने योग्य है—

एक बार एक योगी और शिष्य घूमते घूमते एक नगरमें आये। शिष्य नगरमें भिक्षा लेनेके लिये गया। घूमते-घामते एक सेठकी हवेलीमें पहुँचा। वहाँ सबके हाथोंमें सोनेके कड़े पहने हुए देखे। इससे उसकी भी सोनेके कड़े पहननेकी इच्छा हुई। वहाँसे भिक्षा लेकर गुरुके पास आकर गुरुसे कहने लगा कि आप मुझे सोनेके कड़े लाकर पहनाइये, तो मैं आपकी सेवा करूँगा। तब गुरुने कहा—संन्यासीको तो एक पाई भी पासमें न रखनी चाहिये, तो सोनेके कड़े कैसे पहन सकता है? इसलिये यदि तुझे सोनेके कड़े पहनने हो तो मेरी तेरे साथ नहीं पटेगी। यों कहकर शिष्यको वहीं छोड़कर गुरु वहाँसे चलते बने।

अब शिष्य पैसे इकट्ठे करने लगा। कुछ समयमें काफी पैसे इकट्ठे हुए तब उस नगरके एक सोनीके साथ उसने मैत्री की। वह सोनी धूर्त्त, विश्वासघाती और दुष्ट था परंतु उस शिष्यको इसका पता न था।

अब काफी समय बीतनेके बाद कुछ ज्यादा पैसे इकट्ठे हुए तब शिष्यने सोनीसे कहा—हे मित्र! मेरे पास कुछ पैसे इकट्ठे हुए हैं उससे तू मुझे सोनेके कड़े बना दे। तब सोनीने कहा—भाई! मैं तेरे गहने नहीं बनाऊँगा। मेरी सराफ और सुनारोंसे पटती नहीं है जिससे उन्होंने मेरी साह बिगाड़ दी है। इसलिये तू दूसरे सोनीके पास बनवा ले। कल उठकर मेरे द्वेषी लोग तेरे कान भरकर तुझे वहममें डाल देंगे कि ये गहने तो पीत्तलके है, बहुत सोना खाया है, तूझे ठग लिया है आदि कुछकी कुछ बातोंके भ्रमजालमें तुझे डाल देंगे, इससे अपने प्रेमको ठोकर लगनेका मौका आ जाय, अत दूसरे सोनीके

www.jaintatvagyanshala.org

पाससे लेनेमें हम दोनोंको फायदा है। इस प्रकार विश्वास बिठानेवाले वचन सुनकर शिष्यको ज्यादा विश्वास बैठा इसलिये उस शिष्यने कहा—मैं तुझे छोड़कर दूसरे सोनीका विश्वास ही नहीं करता, अतः तू जो कर देगा वह मुझे मंजूर है। लोग कुछ भी कहे, किन्तु मानना न मानना मेरी मरजी है। इसलिये तू ही मेरे गहन बना। शिष्यने ऐसा कहा, फिर भी ज्यादा विश्वास बिठानेके लिये सोनीने गहने बनानेसे इन्कार कर दिया। ज्यों-ज्यों वह मना करता गया, त्यों-त्यों उस शिष्यको सोनी पर ज्यादा विश्वास आता गया और उसकी प्रामाणिकता उसके मनमें बस गयी।

इस बिचारे भोले शिष्यको पता न था कि ऐसे ठग मित्र ज्यादा प्रपंची होते हैं। और अति प्रामाणिकताका दिखावा करनेवाले बहुत अप्रामाणिक होते हैं। इसलिये उस शिष्यने इस सोनीको ही गहने बनानेका काम सौंपा। सोनीने भी शुद्ध सोनेके गहने बनाकर तौलकर किंमत लिखकर चिट्ठी बना दी और वे गहने शिष्यको देकर, ज्यादा विश्वास बिठानेके लिये और धोखाधड़ीमें विजय प्राप्त करनेके लिये, कहा—"ये गहने लेकर सराफ, सोनी या जौहरीके पास जा। मेरा नाम दिये बिना उनसे इसकी किंमत करा। यदि इस चिट्ठीमें लिखे अनुसार तौल और किंमत ठहरे तो मुझे सच्चा मित्र मानना।" यों कहकर सोनीने शिष्यको बाजारमें भेजा। जब जौहरी बाजारमें गहनोंके तौल और किंमतकी जाँच करवाई तो सोनीकी चिट्ठीके अनुसार ही किंमत ठहरी, इससे शिष्यको सोनी पर पूरा विश्वास बैठ गया। फिर उन गहनोंको पालिश करनेके लिये शिष्यने सोनीको दिये, इसलिये उसने पालिश करके दूसरे दिन वापिस देना निश्चित किया।

इधर सोनी तो, ये गहने बनाने शुरू किये उसके साथ ही उस गहनेके बराबर तौल और नापके और उसी आकारके पीत्तलके गहने तैयार करने लगा था, इसलिये उसने वे सोनेके गहने घरमें रख दिये और पीत्तलके गहनों पर मुलम्मा चढ़ाकर दूसरे दिन वे शिष्यको दे दिये और कहा—आज फिरसे ये गहने किंमत करानेके लिये बाजारमें ले जा और मेरा नाम देकर किंमत करा। मेरा नाम आते ही सब लोग एक ही आवाजसे कहेंगे कि ये पीत्तलके हैं। इसलिये मजा देख ले और चौकसाई करा आ।

शिष्यने वैसा ही किया तो सभी जौहरी लोग उस सोनीका नाम सुनते ही और गहने देखते ही बोल उठे—ये गहने तो पीत्तलके है! तब शिष्यने कहा—आप सब झूठे हैं। आप ही तो इन गहनोंको सोनेके कहते थे और आज पीत्तलके कैसे हो गये !!

जौहरी बोले—भाई! वे गहने दूसरे थे और ये गहने दूसरे हैं। तू विश्वाससे ठगा जा रहा है। इसलिये जरा सोच, नहीं तो फिर पस्तानेका समय आयेगा। वह सोनी लुच्चाओंका और ठगोंका पीर है। इस प्रकार सच्ची सलाह सुनते हुए भी उस धूर्त्त सोनीने अपने ही वचन पर विश्वास बिठाया होनेसे शिष्य जौहरियोंके सत्य वचनको असत्य मानकर किसीकी बात न सुनते हुए सोनी मित्रके वचनोंको ही चिपका रहा और पीत्तलके गहनोंको उसने सोनेके ही मान लिया।

इस दृष्टांतके अनुसार कुगुरुके कुबोधमें लीन होनेसे, सद्गुरुका बोध प्राप्त हो तो भी उसे स्वीकारनेमें श्रद्धा नहीं बैठती।

गुरु सेवा पुण्ये लही, पासे पण बेठा नित्त रे,
धर्मश्रवण तोहि दोहिलुं, निद्रादिक जो दिये भित्त रे. नि॰ सं॰ ८

अर्थ—फिर कदाचित् पूर्वपुण्यके योगसे सद्गुरुकी सेवा प्राप्त हुई और हमेशा गुरुके पास जाकर बैठे, तो भी धर्मोपदेशका श्रवण अत्यंत दुर्लभ है, क्योंकि जब गुरु धर्मोपदेश देते हो तब अंतरायके उदयसे निद्रा आ जाय अथवा विकथा या प्रमाद हो जाय, जिससे एकाग्रतासे धर्मोपदेश सुना न जा सके और निद्रा बीचमें दीवार बनकर विघ्न करे ॥८॥

पामी श्रुत पण दुल्लही, तत्त्वबुद्धि ते नरने न होय रे,
शृंगारादि कथा रसे, श्रोता पण निज गुण खोय रे. श्रो॰ सं॰ ९

अर्थ—फिर क्वचित् श्रुतका श्रवण प्राप्त हो, तो भी तत्त्वबुद्धि प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है, क्योंकि जीवको सदा ही शृंगाररस प्रधान कथाएँ सुननेमें ही रुचि होती है इसलिये धर्मकथाको भी प्रायः शृंगारादि रससे सुनता है। जिससे श्रोता (शांतरसको ग्रहण नहीं कर सकता किन्तु) आत्माके गुण खो देता है। (इसलिये तत्त्वबुद्धि दुर्लभ है।) ॥९॥

सारांश—आत्माको जिसका ज्यादा अभ्यास होता है उसमें रुचि-रमणता तुरत होती है। जैसे बालकको खेलनेकी रुचि सहज होती है और पढ़नेकी रुचि विकसित करनी पड़ती है। जहाँ रस है वहाँ रुचि, तन्मयता, तद्रूपता होनेमें देर नहीं लगती। इसीलिये यहाँ कहा है कि रात-दिन शृंगाररस, हास्यरस और कामशास्त्रकी कथाएँ सुननेमें, पढनेमें मन अभ्यस्त होनेसे धर्मकथा सुनने पर भी हास्यरससे ही आनंदका अनुभव करता है परंतु तत्त्वबुद्धि प्राप्त नहीं होती। जैसे पानीको नीचे-नीचे ले जानेमें प्रयत्न करना नहीं पड़ता परंतु इसी पानीको ऊपर चढ़ाना हो तो प्रयत्न करना पड़ता है;

वैसे ही संसारके ढालकी ओर नीचे-नीचे जाते मनको मोक्षकी ओर मोड़ना मुशकिल जैसा है, इसमें प्रबल पुरुषार्थ अपेक्षित है।

सचमुच! आत्मामें तत्त्वबुद्धि जागृत न हो तब तक तत्त्वका व्याख्यान, तत्त्वका अभ्यास या तत्त्वका चिंतवन अच्छा नहीं लगता। कथाएँ, कहानियाँ या कुतूहल ही प्रिय लगते हैं, और उनमेंसे भी तत्त्वको पा नहीं सकता। इसलिये तत्त्वबुद्धि प्राप्त करनी चाहिये। यदि बुद्धि तत्त्वानुसारी हो तो कथाओंमेंसे भी बहुत कुछ तत्त्वज्ञान प्राप्त किया जा सकता है; परंतु तत्त्वज्ञानकी ओर दृष्टि ही न की, वहाँ क्या होगा?

तत्त्व कहे पण दुल्लही, सद्दहणा जाणो संत रे,
कोई निज मति आगळ करे, कोई डामाडोल फिरंत रे. को०सं०१०

अर्थ—कदापि तत्त्वबुद्धि प्राप्त हो और धर्मतत्त्वको ग्रहण करे, तो भी हे सज्जनों! उसमें श्रद्धा होना अत्यंत दुर्लभ है। क्योंकि कई श्रोता तो गुरु द्वारा कहे हुएं तत्त्वमें श्रद्धा न करते हुए अपनी बुद्धिको आगे कर होशियारी दिखाते हैं कि गुरुने ऐसा कहा है, मगर वैसा होता है, और मैंने जो बात ग्रहण की हुई है वही सच्ची है, यों मानता है। अर्थात् मैं मानता हूँ वही सत्य है यों मानता है। फिर कुछ लोग तो डावाडोल चित्तवाले होकर अभिमानमें आकर गुरुके वचनों पर विश्वास न रखते हुए 'ऐसा होगा? या वैसा होगा?' यों भ्रममें ही रहते हैं। अर्थात् श्रद्धा होना बहुत ही दुर्लभ है ॥१०॥

आप विचारे पामिये, कहो तत्त्व तणो किम अंत रे,
आलसुआ गुरु शिष्यनो, इहां भावजो मन वृत्तन्त रे. इ० सं०११

अर्थ—इसलिये हे श्रोताओं! तुम ही कहो कि गुरुके पाससे तत्त्व जाने बिना स्वबुद्धिसे तत्त्व कैसे प्राप्त किया जा सकता है? यहाँ आलसी गुरु और शिष्यका दृष्टांत है उसे विचारो ॥११॥

सारांश—ऊपर कहे अनुसार यदि गुरुके पास जाकर उनके पाससे तत्त्वकी बात सुननेमें आये, उस पर विश्वास किया जाये, और जिनवचन पर श्रद्धा रखकर प्रश्न और उत्तरके द्वारा तत्त्वज्ञानको दृढ़ किया जाये तो ही तत्त्व प्राप्त किया जा सकता है। परंतु अपनी मतिकल्पनासे चले, अपनी मान्यताको ही सत्य माननेका कदाग्रह रखकर गुरु आदिके पास न जाये और उनके वचनकी श्रद्धा न हो तो तत्त्व कैसे प्राप्त हो सकता है?

यहाँ अन्यलिंगी आलसी गुरु-शिष्यके दृष्टांतका निर्देश है। वो दृष्टांत इस प्रकार है—एक गुरुको एक शिष्यका संयोग मिला जो दोनों आलसी थे।

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

वे दोनों गाँवके बाहर झौंपड़ी बनाकर रहते थे। वे वस्त्ररहित थे और भिक्षा माँगकर उदरपूर्ति करते थे। पौष महीना आनेसे हिमपात होनेसे दोनों ठण्ड़ीसे ठिठुरने लगे, परंतु दोनों आलसी होनेसे ठण्डके कारण भिक्षा लेनेके लिये भी बराबर घूमे नहीं। जिससे आधे भूखे-तरसे आकर आलस्यके कारण झौंपड़ीमें भी न गये और पुराना वस्त्र ओढ़कर मुँह ढँककर बाहर ही सो गये। ढँके हुए मुँहसे आलसी गुरु शिष्यसे पूछने लगा–हे शिष्य! आज सर्दी बहुत लग रही है, तो हम झौंपड़ीमें हैं या बाहर? आलसी शिष्यने देखे बिना कहा–हम झौंपड़ीके भीतर ही हैं। इतनेमें कोई कुत्ता ठण्डके कारण पासमें आकर सो गया, उसके ऊपर गुरुका हाथ लगनेसे गुरु शिष्यसे पूछने लगा–हे शिष्य! यह मेरे पूँछ निकली है क्या? तब शिष्य बोला–यह तो आपकी काछनीका पल्ला है इसलिये अब बोले बिना चुपचाप पड़े रहो। इस प्रकार दोनों उद्यम रहित होनेके कारण वहीं सारी रात ठिठुरते पड़े रहे और अपनी झौंपड़ीके भीतर न गये, जिससे सुबहमें हिमपातसे दोनों सर्दी लगनेसे मर गये। इसी प्रकार आलसी लोग स्वयं उद्यम नहीं करते और मतिकल्पनासे किसीसे पूछते भी नहीं, उद्यम भी नहीं करते और तत्त्वगवेषणा भी नहीं करते, तो वे तत्त्व कहाँसे प्राप्त कर सकेंगे?

बठर छात्र गज आवतां, जिम प्राप्त अप्राप्त विचार रे,
करे न तेहथी ऊगरे, तेह आपमति निरधार रे.ते० सं० १२

अर्थ–यहाँ एक आपमतिका दृष्टांत है सो इस प्रकार–मूर्ख शिष्य अपने सामने हाथीको आते देखकर सोचने लगा कि यह प्राप्तको मारेगा या अप्राप्तको? (यों सोचते-सोचते) उसने बचनेके लिये कोई उद्यम नहीं किया। (इतनेमें हाथीने आकर उसे मार दिया।) इस प्रकार जो आपमतिवाले जीव होते हैं, वे आपमतिसे दुःखी होकर मरकर नरकनिगोद आदिके दुःखके भोक्ता बनते हैं ॥१२॥

विस्तारार्थ– इस गाथामें दिया हुआ मतिकल्पित दृष्टांत विस्तारसे इस प्रकार है–कोई एक मूर्ख शिष्य पोथीपंडित जैसा वेदशास्त्रका पाठी रास्तेमें चला जा रहा था, इतनेमें राजाका पागल हाथी हस्तीशालामेंसे भागकर आ रहा था इसलिये महावतने कहा–'भाई! सब रास्तेमेंसे हट जाओ, दूर चले जाओ, नहीं तो यह मदोन्मत्त हाथी कहीं मार डालेगा, नुकसान कर देगा।' ऐसा सुनकर सब लोग तो रास्तेमेंसे दूर हो गये, किन्तु वह पोथीपंडित, जो शास्त्र तो पढा था परन्तु उसके अर्थ-विवेचन आदिसे अनभिज्ञ था, वहाँसे दूर न हटा और मनकल्पनाके सागरमें डूबने लगा–यह हाथी मनुष्योंको मारता है

www.jaintatvagyanshala.org

तो प्राप्तको मारता है या अप्राप्तको? यदि प्राप्तको मारता है तो महावत उसके ऊपर ही बैठा हुआ है उसे क्यों नहीं मारता? और यदि अप्राप्तको मारता हैं तो सभी मनुष्य उसे अप्राप्त हैं, उन्हें क्यों नहीं मारता? ऐसा विचार करता हुआ वहीं खड़ा रहा, जिससे हाथीने सूँढ़से पकड़कर उसे चीरकर मार दिया। इस मूर्ख शिष्यकी तरह आपमतिवाले प्राणी दुःखको प्राप्त होते हैं।

आगम ने अनुमानथी, वळी ध्यान रसे गुणगेह रे,
करे जे तत्त्व गवेषणा, ते पामे नहि संदेह रे. ते० सं० १३

अर्थ—फिर जिनेश्वर भगवानके कहे हुए आगमसे, अनुमानसे और शुभ ध्यानके रससे अर्थात् अनुभवसे गुणोंके घररूप (गुणस्थानकरूप) तत्त्वकी जो गवेषणा करता है, वह तत्त्वको पा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥१३॥

सारांश—सचमुच! तत्त्वके विषयमें कोई गवेषणा ही नहीं करता। उसका कारण उसमें रस ही नहीं है। जहाँ रस है वहाँ गवेषणा चालू रहती है। ज्ञानियोंने कहा है कि 'संसारमें सुखकी गवेषणा करना मूर्खता है।' फिर भी जीव सुखकी गवेषणामें पीछेहट नहीं करता और अंधी दौड़में तत्त्वज्ञानकी तो मात्र विचारणा करनेके लिये भी खड़ा नहीं रहता। इस बात परसे तत्त्वज्ञानके रसका नाप नहीं निकलता? सचमुच! खेदकी बात है कि आज तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा अदृश्य जैसी होती जा रही है।

तत्त्वबोध ते स्पर्श छे, संवेदन अन्य स्वरूप रे,
संवेदन वंध्ये हुई, जे स्पर्श ते प्राप्तिरूप रे. जे० सं० १४

अर्थ—तत्त्वबोध दो प्रकारका हैं—एक स्पर्शतत्त्वबोध और दूसरा संवेदन-तत्त्वबोध। उसमें संवेदनतत्त्वबोध तो वंध्या स्त्रीकी तरह निष्फल है और स्पर्शतत्त्वबोध आत्मतत्त्वकी प्राप्तिस्वरूप है ॥१४॥

विस्तारार्थ—दो प्रकारके तत्त्वबोधका स्वरूप इस प्रकार है—

१. स्पर्शतत्त्वबोध :— जिनेश्वर भगवानके आगमोंको सुनकर जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन नौ तत्त्वोंका बोध हो और उससे निर्मल अध्यवसायसे, आत्मपरिणतिके परिपाकपूर्वक, मनवचनकायाकी एकाग्रताकी स्थिरतासे, भावकी शुद्धिसे, सद्गुरुके उपदेशरूप सद्बोधसे, श्रद्धासहित वस्तुधर्मको ग्रहण करनेरूप चित्तकी जो वृत्ति हो ऐसा जो तत्त्वबोध वह स्पर्शतत्त्वबोध कहलाता है।

२. संवेदनतत्त्वबोध :— श्रद्धारहिततासे सम्यक्प्रकारसे वस्तुके स्वरूपको जानना, जीव आदि नौ तत्त्वोंका ज्ञान होना—इसे संवेदनतत्त्वबोध कहते हैं।

ज्ञानके तीन प्रकार :– ये समझने योग्य होनेसे इनका किंचित् विशेष विवेचन लिखते हैं। विषयप्रतिभास, आत्मपरिणतिमत् और तत्त्वसंवेदन ये ज्ञानके तीन प्रकार हैं। ये विशेष प्रकारसे समझने योग्य है इसलिये यहाँ इसका विवेचन करेंगे–

१. विषयप्रतिभास ज्ञान–जिसमें इंद्रियगोचर विषयोंका प्रतिभास हो, किन्तु उसके हेय या उपादेय अंशोंका ख्याल न हो, विवेक न हो, वह विषयप्रतिभास ज्ञान कहलाता है।

श्री हारिभद्रीय ज्ञानाष्टकमें कहा है–विष, कंटक और रत्न आदिमें बालक आदिके ज्ञानकी तरह हेयत्वादि अर्थात् हेय, उपादेय और उपेक्षणीयका निश्चय नहीं करानेवाला ज्ञान विषयप्रतिभास ज्ञान है।

बालक यह जानता है कि यह विष–जहर कहलाता है, यह कंटक–काँटा कहलाता है और यह रत्न कहलाता है; परन्तु विष क्यों पीना चाहिये ? काँटा क्यों दूर फेंक देना चाहिये ? और रत्नको क्यों रख लेना चाहिये ? इसका कारण वह नहीं जानता। संभव है कि वह विष पी ले, काँटेको रख ले और रत्नको पत्थर समझकर फेंक दे। विषयप्रतिभास ज्ञानमें इसी प्रकार समझना चाहिये।

जब तक जीवको हेय और उपादेयका विवेक नहीं होता तब तक अनेक प्रकारकी भूलें होना संभव है, इसीलिये विषयप्रतिभास ज्ञानको अनेक प्रकारके अपायोंका–दुःखोंका कारण माना जाता है।

२. आत्मपरिणतिमत् ज्ञान–जिसमें वस्तुके हेय-उपादेयताका विवेक हो परन्तु तदनुसार निवृत्ति-प्रवृत्ति न हो, उसे आत्मपरिणतिमत् ज्ञान कहते हैं।

आत्मपरिणतिमत् ज्ञानवाला यह जानता है कि पाप, आस्रव और बंध ये तीनों तत्त्व हेय हैं और संवर तथा निर्जरा ये उपादेय है। परंतु चारित्रमोहनीय कर्मके आवरणोंका ह्रास हुआ न होनेसे उसके अनुकूल त्याग या अंगीकार करनेके लिये उसमें वीर्योल्लास जागृत नहीं होता।

यहाँ इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि आत्मपरिणतिमत् ज्ञानवाला जीव पाप, आस्रव और बंधके हेतुभूत विषयकषाय आदिका त्याग कर नहीं सकता और संवर आदिमें प्रवृत्त नहीं हो सकता, किन्तु उसके लिये उसके मनमें अपरंपार उद्वेग–पश्चात्ताप होता है। यह पश्चात्ताप ही अंतमें जीवको यथार्थ ज्ञान तक ले जाता है, इसीलिये उपाध्याय भगवान श्री यशोविजयजी महाराजने ज्ञानसारमें इस ज्ञानकी प्रशंसा करते हुए बताया है कि–

www.jaintatvagyanshala.org

अस्ति चेद् ग्रन्थिभिद्ज्ञानं, किं चित्रैस्तन्त्रयन्त्रणैः ।
प्रदीपाः क्वोपयुज्यन्ते ? तमोघ्नी दृष्टिरेव चेत् ॥

यहाँ दृष्टांत दिया है कि जहाँ दृष्टि अंधकारको नाश करनेवाली है, वहाँ दीपकोंका उपयोग कहाँ होता है ? यह ज्ञान अत्यंत दुर्भेद्य ऐसी रागद्वेष और मिथ्यात्व-रूप ग्रंथिका भेद होनेके बाद ही प्राप्त होता है, अर्थात् वह सम्यग्दृष्टिको ही होता है ।

३. **तत्त्वसंवेदनज्ञान**–जिसमें तत्त्वके स्पष्ट ज्ञानपूर्वक हेय और उपादेयका विवेक हो और तदनुकूल निवृत्ति या प्रवृत्ति हो वह तत्त्वसंवेदन नामक तीसरा ज्ञान है । इस बारेमें श्री हारिभद्रीय ज्ञानाष्टकमें कहा है कि–

स्वस्थवृत्तेः प्रशांतस्य, तद्धेयत्वादिनिश्चयम् ।
तत्त्वसंवेदनं सम्यग्,–यथाशक्तिफलप्रदम् ॥

स्वस्थवृत्तिवाले और प्रशांत पुरुषका वस्तुके हेयत्वादिके निश्चयवाला जो ज्ञान है वह तत्त्वसंवेदन ज्ञान कहलाता है, वह यथाशक्ति फल देनेवाला है ।

जिसका आत्मा तत्त्वज्योतिरूप ज्ञानज्योतिसे प्रकाशमान हुआ है ऐसे महात्मा घोर उपसर्ग या परिषहोंमें मेरुपर्वतकी तरह निष्प्रकम्प होते हैं । जैसे एक निष्णात खिलाड़ी खेलमेंसे आनंद प्राप्त करता है, वैसे ही तत्त्वसंवेदन-ज्ञानवान् आत्मा मोहराजाकी सभी बाजियोंको निष्फल बनाता हुआ संसाररूप खेलमेंसे आनंद प्राप्त करता है ।

तत्त्वसंवेदनमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीनों आत्मगुणोंका सम्यक्प्रकारसे नियोजन होनेसे वही मोक्षमार्ग है । तत्त्वसंवेदनज्ञानसे शुद्ध सामायिककी प्राप्ति होती है और निरतिचार चारित्रका पालन शक्य होता है ।

मति आदि ज्ञान तथा चारित्रको आवरण करनेवाले विशिष्ट कर्मोंके अपगमके बाद ही यह ज्ञान प्रकट होता है और यह निर्वाणका अनन्य कारण है ।

मुमुक्षु आत्माओंको विषयप्रतिभासादि ज्ञानोंका स्वरूप जानकर, कदाग्रहका त्याग करके तथा प्रवचनका सतत परिशीलन करके तत्त्वसंवेदन ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सतत प्रयत्नशील होना चाहिये । तथा उसकी प्राप्तिके बाद उसकी स्थिरता और विकासके लिये आदरपूर्वक प्रयत्न चालू रखने चाहिये ।

सचमुच ! इस रासकी प्रत्येक पंक्ति पर गहन विचार किया जाय तो एक-एक बात पर कितने ही पृष्ठ लिखे जा सकते हैं । इसमें ऐसी तो रहस्यमय बातें आती है कि वह एक बड़े ग्रंथका प्रयोजन सिद्ध करती है ।

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

एक राजकुमारी मयणासुंदरी विपुल वैभवके बीच पली होते हुए भी उसकी माता इस सुकुमाल बालिकाको जैन दर्शनका तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये पाठकको सौंपती है। आज तो सुखी घरके बालक-बालिकाएँ पाठशालाओंमें क्वचित् ही नजर आते हैं! कारण? इन्हें धार्मिकज्ञानकी आवश्यकता मानी ही नहीं गयी। तदुपरांत व्यावहारिक ज्ञानका बोझ इतना सारा बढ़ गया है कि इसमें धार्मिकज्ञानके लिये कोई अवकाश ही नहीं है। इसके सिवाय इसमें वर्ष बिगड़ जानेका डर है इसलिये मा-बाप भी सतत पढ़नेकी ही प्रेरणा करते हैं। कुछ पढ़नेमें ध्यान कम दिखायी दे कि तुरत कहते हैं कि नहीं पढ़ेगा तो भूखो मरेगा। कोई तेरा भाव भी नहीं पूछेगा। धार्मिकज्ञानके लिये कोई मा-बाप ऐसा कभी कहते हैं? यहाँ तो केवल एक वर्ष ही बिगड़ जायेगा, परंतु धार्मिकज्ञानके बिना तो सारा भव! अरे! अनेक भव बिगड़ जायेंगे, इतना ही नहीं, चौदह राजलोकमें जगह जगह दुतकारे जाओगे। ऐसा कभी किसीने कहा? अरे! कभी मनमें भी सोचा कि धार्मिक ज्ञानके बिना बच्चोंका भविष्यमें क्या होगा? अपने ही हाथसे इनका जीवन आबाद करनेके बदले ज्ञानके बिना कैसा बरबाद हो जायेगा? कभी हुई है ऐसी चिंता या व्यथा?

सचमुच! मयणासुंदरीकी माता जैनदर्शनकी ज्ञाता थी, इसीलिये उसके हृदयमें धार्मिक ज्ञानकी आवश्यकता, उपकारिता और किंमत बराबर अंकित हो गयी थी। सत्य है कि जिस चीजकी जितने प्रमाणमें जीवनमें आवश्यकता महसूस हुई है उतने प्रमाणमें उसके लिये प्रयत्न होता है। सभीके अनुभवकी यह बात है। सचमुच! धार्मिक ज्ञानके बिना पुण्य-पाप, कर्तव्य-अकर्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, हितकारक-हानिकारक क्या क्या है इसका ख्याल आये ही कहाँसे? और इसके जाने बिना हेयका हानन और उपादेयका उपादान कैसे करे? सचमुच! यह सब गहरा विचार करके हितस्वी मा-बापोंको चाहिये कि वे संतानके भावी हितके लिये उसे ज़ीवनमें धार्मिक ज्ञानकी अनिवार्य आवश्यकता समझाकर, वारंवार सुसंस्कारका अमीपान कराते ही रहे, कि जिससे उसका भावी जीवन ऊर्ध्वगामी और उन्नत हो। बाकी, संतानोंके हाड़, चाम, रुधिर और मांससे भरे हुए स्थूल देहको तो सभी माताएँ पोसती ही है, परंतु इसके अलावा धर्मशील आर्य माताएँ संतानके स्थूल देहको पोसनेके साथ संस्कार-देहको इससे भी ज्यादा पोसती है। क्यों? ये तत्त्वज्ञाता होनेसे समझती है कि यदि यह स्थूलदेह दुर्बल हुआ तो ज्यादासे ज्यादा इस भवके पाँच-पच्चीस वर्ष बिगड़ जायेंगे; किन्तु यदि संस्कारदेह दुर्बल हुआ तो भव-भवमें पारावार नुकसान होगा, भव-भवमें भावदरिद्रता उसके गलेमें मढ़ी

www.jaintatvagyanshala.org

रहेगी। अपनी संतानोंकी ऐसी दुर्बल दुर्दशा हितस्वी माताएँ कैसे देख पायेगी? इसलिये यह सब समझकर हितस्वी माताओंको, बालकोंके जीवनको दिव्य, सुशील और गुणसंपन्न बनानेके लिये वारंवार धार्मिकज्ञान देनेके लिये, प्रेरणा करते ही रहना चाहिये। क्योंकि, इस सम्यक् ज्ञानके सिवाय विवेक, मर्यादा, औचित्य आदि अच्छे गुणोंकी आशा रखना हवा-पानीके बिना जीनेकी आशा रखनेके बराबर है। यद्यपि जैनदर्शनके ज्ञाता आत्माओंको धार्मिकज्ञानकी आवश्यकताके लिये उपदेश देना तो मछलीको तरनेका उपदेश देनेके बराबर है, फिर भी हमारी भयंकर कमनसीबी कहो या कालका प्रभाव कहो, किसी भी कारणसे आज अपने समाजमें तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा (पिपासा) लगभग अदृश्य जैसी हो गयी है, और इसके कड़वे फलोंका हम अनुभव भी कर रहे हैं। फिर भी आज तक हमारी आँख खुली नहीं है। अब भी सावचेत होकर नहीं चलेंगे और संतानोंको जीवनमें सम्यक्ज्ञानकी आवश्यकता नहीं समझायेंगे, तो भविष्यमें भयंकर परिणाम आयेगा उसके चिह्न आजसे दिखायी दे रहे हैं। आज अच्छे भले जैनकुलोंमें भी भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय आदिका विवेक दिनोंदिन भुलाता जा रहा है इसलिये भावी पेढीके नितांत कल्याणके लिये संतानोंके माता-पिताओंको समयसर सजाग होनेकी अनिवार्य जरूरत है। हर कोई शीघ्र जागृत हो जाओ और सम्यक्ज्ञानकी रम्य रोशनीको जगमगाओ।

तत्त्व ते दशविध धर्म छे, खंत्यादिक श्रमणनो शुद्ध रे,
धर्मनुं मूल दया कही, ते खंति गुणे अविरुद्ध रे. ते०सं०१५

अर्थ—क्षमा आदि दश प्रकारका यतिधर्म ही परमतत्त्व है। धर्मका मूल दया कही है और वह दया क्षमासे अविरुद्धरूपसे है, अर्थात् क्रोधके अभावस्वरूप क्षमा आये तभी दया आती है ॥१५॥

विशेषार्थ—साधु धर्म दस प्रकारका है, उसमेंसे साधुको ब्रह्मचर्यश्रमण या तपःश्रमण आदि न कहते हुए क्षमाश्रमण (खमासमण=जो क्षमामें श्रम करे सो) कहा है, तो वास्तवमें साधुजीवनमें यह क्षमागुण खूब व्यापक हो जाना चाहिये। सचमुच! क्षमा जैसा अन्य कोई हितकारक, उपकारक परिबल शायद ही होगा।

क्षमा वीरस्य भूषणम्। क्षमा वीरकी शोभा है। क्षमापनाका जैनधर्ममें अत्यंत महत्त्व है। असमर्थके लिये क्षमा रक्षाकवचका काम करती है और समर्थके लिये क्षमा आभूषणरूप है। इसकी मर्यादा यों बतायी है—मुनिको पक्ष (पंद्रह दिन) में क्षमा माँग लेनी चाहिये, श्रावकको चार महीनेके भीतर

क्षमायाचना कर लेनी चाहिये और अविरति सम्यग्दृष्टिको एक वर्षके अंदर-अंदर कषायसे विरमण कर लेना चाहिये। यहाँ तक तो जीव आराधक कहा जाता है और एक वर्ष तक कषायसे वापिस न मुड़े वह विराधक जीव गिना जाता है।

सत्य ही है कि क्षमावान आत्मा स्व और परका बहुत उपकार कर सकता है और क्षमावान आत्मा शक्रेन्द्रसे भी शतसहस्रगुनी शांति और सुखका साक्षात्कार कर सकता है और दिनोंदिन ज्यादासे ज्यादा समता सागरमें निमज्ञन करने लगता है। यह रहा इसकी पूर्ण प्रतीति करानेवाला श्लोक–

स्वयम्भूरमणस्पर्द्धि-वर्धिष्णु शमतारसः ।
मुनिर्येनोपमीयेत कोऽपि नासौ चराचरे ॥

इसके अलावा मयणासुंदरीके जीवन प्रसंगको याद करेंगे तो क्षमाका जीता-जागता नमूना दृष्टिगोचर होगा, क्योंकि–

जब खुद अपने ही पिता इस प्रकार रोगसे भरपूर शरीरवाले कोढ़ी पतिके साथ उसका संबंध जोड़ते हैं, तब ऐसे विषम प्रसंगमें भी मयणाकी मुखमुद्रा लेशमात्र बदलती नहीं है। इतना ही नहीं, किन्तु ऐसे आपत्तिप्रसंगमें भी मयणाकी मुखमुद्रा प्रभातके पुष्पकी तरह प्रसन्न और प्रफुल्लित ही बनी रहती है। मनमें अंशमात्र भी खेद या खिन्नता आने नहीं देती। इसका कारण एक यही कहा जा सकता है कि उसे कर्म पर अटल और अडिग श्रद्धा थी! इस श्रद्धाके परिबलसे ही वह ऐसे दुःखके प्रसंगमें भी बिना झुके वीर और स्थिर रह सकी। उसका यह अफर निर्णय था कि जो ज्ञानीने देखा होगा वही होगा, उसमें कमोबेश फेरफार करनेवाला कोई है ही नहीं। इस मौके पर उपाध्याय महाराज श्री यशोविजयजीकृत ज्ञानसारका यह श्लोक याद आ जाता है–

दुःखं प्राप्य न दीनः स्यात्, सुखं प्राप्य न विस्मितः ।
मुनिः कर्मविपाकस्य, जानन् परवशं जगत् ॥

ऐसे शोकके प्रसंगमें भी गुस्सा नहीं आनेका कारण एक ही था कर्मवादकी अटल श्रद्धा! और इस कारणसे उसने अन्य किसीका भी दोष न देखते हुए अपने ही कर्मका दोष देखा। जो कर्मका दोष देखता है उसे दूसरे पर क्रोध करनेका कोई कारण ही नहीं है।

सचमुच! मयणासुंदरीका जीवनप्रसंग यदि हमारे हृदयमें अंकित हो जाय तो जीवनमें कोई अपूर्व प्रकाश प्राप्त हो जाय। संकटके समयमें मयणाने जो

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

हिमालयसे स्पर्धा करे ऐसी हिंमत, सहिष्णुता, धैर्य और सात्त्विकता चमकाई है उसे आदर्श रखकर हम अपने जीवनपटको आलेखित करे तो स्वजीवनमें चाहे कैसे कठिन संयोगोंमें भी शांति, क्षमा और समाधिका साक्षात्कार हुए बिना नहीं रहेगा।

विनयने वश छे गुण सवे, ते तो मार्दवने आयत्त रे;
जेहने मार्दव मन वस्यो, तिणे सवि गुणगण संपत्त रे. ति० सं० १६

अर्थ–(अब दूसरा विनयगुण कहते हैं–) सभी गुण विनयके आधीन है। (अर्थात् देव, गुरु और धर्मकी उपासना भी विनयसे ही फलदायक होती है और अन्य गुण भी विनयसे ही आते हैं।) यह विनयगुण भी निरभिमानता (मार्दव) के आधीन है (अर्थात् निरभिमानता गुण हो तो विनय गुण आता है।) इसलिये जिसके हृदयमें निरभिमानता है, उसे अन्य सभी गुणरूपी संपत्ति प्राप्त हो गयी है ॥१६॥

भावार्थ :- इस गाथामें कहा है कि जब तक अहम् हमारेमें ठूँस ठूँस कर भरा हुआ है, तब तक हमारे हृदयमें पूज्योंके प्रति विनय आना ही मुशकिल है। मैं अर्थात् कुछ भी नहीं, ऐसी स्वविषयक अपूर्णताकी संपूर्ण प्रतीति और गुणाधिक पूर्ण आत्माओंके प्रति उछलता हुआ भक्तिभाव आये तो अहम् दूर चला जाता है। सचमुच इस अहंभावने बीचमें ऐसा दुर्ग चुन लिया है कि प्रमोदभाव या पूज्योंके प्रति विनयभाव आ ही नहीं सकता। इस बहुरूपी अहंभावको दूर किये बिना अपनी किसी भी साधना या आराधनामें सफलता नहीं मिलेगी।

सचमुच! इस अहंभावसे आत्ममंदिरकी भयंकर बरबादी देखते हुए हृदय हिल उठता है। सिंहगुफावासी आदि महामुनियोंके दृष्टांतसे यह सत्य स्पष्ट समझमें आ जाता है।

आर्जव विण नवि शुद्ध छे, नवि धर्म आराधे अशुद्ध रे;
धर्म विना नवि मोक्ष छे, तेणे ऋजु भावी होय बुद्ध रे.ते०सं०१७

अर्थ–(अब तीसरे आर्जवगुणका वर्णन करते हैं–) आत्माको सरलता (आर्जव) गुणके बिना धर्मकी शुद्धि नहीं होती, इसलिये मायावी अशुद्ध आत्मा धर्मकी आराधना नहीं कर सकता और धर्मकी आराधनाके बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता, इसीलिये ज्ञानीपुरुष सरलस्वभावी होते हैं ॥१७॥

द्रव्योपकरण देहनां, वळी भक्त पान शुचि भाव रे;
भाव शौच जिम नवि चले, तिम कीजे तास बनाव रे. ति०सं०१८

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ–(अब चौथा शौचधर्म कहते हैं–) द्रव्य उपकरण अर्थात् शरीरके हाथ, पैर आदि अंग तथा आहार, पानी पुस्तक, वस्त्र आदि। इन्हें पवित्र भावसे (रागरहित और बेतालीस दोषोंसे रहित) ग्रहण करना यह द्रव्यशौच कहलाता है। यह द्रव्य शौच इस प्रकार करना-रखना कि जिससे भावशौच (कषायरहित शुद्ध परिणति) चलायमान न हो। अर्थात् द्रव्यशौच रखते समय भावशौच नष्ट न हो यह ध्यान रखना चाहिये ॥१८॥

पंचास्रवथी विरमीए, इंद्रिय निग्रहीजे पंच रे;
चार कषाय त्रण दंड जे, तजिये ते संजम संच रे. त०सं०१९

अर्थ–(अब पाँचवें संयमगुणका वर्णन करते हैं–) प्राणातिपात आदि पाँच अणुव्रतोंके अभावरूप आस्रवसे रुकना, पाँच इंद्रियोंका निग्रह करना तथा चार कषाय एवं मनदंड, वचनदंड, कायदंड इन तीन दंडोंका त्याग करना–यों सत्रह प्रकारके आस्रवोंका त्याग कर (उनसे विपरीत) सत्रह गुणोंसे संयमका संग्रह करना चाहिये ॥१९॥

विशेषार्थ : आस्रवके सत्रह भेद इस प्रकार हैं–

पाँच अव्रत–१ प्राणातिपात, २ मृषावाद ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रह; पाँच इंद्रियोंका अनिग्रह–६. स्पर्शेन्द्रिय अनिग्रह, ७ रसनेन्द्रिय अनिग्रह ८. घ्राणेन्द्रिय अनिग्रह, ९. चक्षुरिन्द्रिय अनिग्रह, १० श्रोत्रेन्द्रिय अनिग्रह; चार कषाय–११ क्रोध, १२ मान, १३ माया, १४ लोभ; तीन दंड–१५ मनदंड, १६ वचनदंड, १७ कायदंड।

बांधव धन इंद्रियसुख तणो, वळी भय विग्रहनो त्याग रे;
अहंकार ममकारनो, जे करशे ते महाभाग रे.जे०सं०२०

अर्थ–(अब छठा त्याग (मुक्त) गुण कहते हैं–) बांधव अर्थात् भाई, बहन, स्त्री, माता, पिता; धन अर्थात् सोना, चाँदी, घर, दुकान आदि; इंद्रियसुख अर्थात् खाना-पीना, वस्त्र, अलंकार आदिके विलास तथा शब्द, रस, गंध आदि; इह लोकभय, परलोकभय आदि सात भय; क्लेश अर्थात् विषाद, ईर्षा तथा अहंकार अर्थात् जगतमें मैं ही सबसे बड़ा हूँ तथा ममकार अर्थात् यह सब मेरा है–इन सबका जो त्याग करेगा उसे महाभाग्यशाली जानना चाहिये ॥२०॥

विस्तारार्थ–महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ज्ञानसारमें यों कहते हैं–

अहं-ममेति मन्त्रोऽयं, मोहस्य जगदांध्यकृत् ।
अयमेव हि नञ्पूर्वः, प्रतिमंत्रोऽपि मोहजित् ॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थात् मोहराजाने अहं-मम (मैं, मेरा) इस मंत्रसे सारे जगतको अपने वशमें कर लिया है। इसे जीतनेका प्रतिमंत्र इसके आगे 'न' जोड़ना है, अर्थात् 'मैं नहीं, मेरा नहीं' इस प्रतिमंत्रसे मोहराजाको जीता जा सकता है। संक्षेपमें सारे संसारका मूल है अहं=मैं शरीर हूँ यह देहबुद्धि, और मम=यह शरीर मेरा है और इसके पीछे सारे सगे-संबंधी, धन, घर आदि मेरे हैं यह ममत्वबुद्धि। देहमें आत्मबुद्धि अर्थात् देहात्मबुद्धिसे संसारकी परंपरा चलती है, जन्म-मरणका अंत नहीं आता। आत्मामें आत्मबुद्धि अर्थात् मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ—इस भावनाके सातत्यसे अपवर्ग अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है।

अविसंवादन जोग जे, वळी तन मन वचन अमाय रे;
सत्य चतुर्विध जिन कह्यो, बीजे दर्शने न कहाय रे. बी०सं०२१

अर्थ—(अब सातवाँ सत्यगुण कहते हैं—) बिना विरोधका और वस्तुको वास्तविक रूपसे माननेवाला अविसंवादी योग तथा कपटरहित काययोग, कपटरहित वचनयोग, तथा कपटरहित मनयोग—यों चार प्रकारका सत्य चतुर्विध जिन (नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव निक्षेपसे जिन) ने कहा है। ऐसा सत्यधर्म जैनदर्शनके सिवाय अन्य कोई दर्शनमें वर्णित नहीं है ॥२१॥

विस्तारार्थ—इस गाथामें चार प्रकारका सत्यधर्म कहा है सो इस प्रकार है—

१ अविसंवादी योग—किसी प्रकारका विरोध न हो अर्थात् वस्तुको वास्तविक रूपसे वस्तुरूपमें मानना सो अविसंवादी योग।

२ निष्कपट काय योग—कुटिलता रहित कायाकी प्रवर्तना।

३ निष्कपट वचन योग—कुटिलता रहित वचन बोलना।

४ निष्कपट मन योग—कुटिलता रहित विचार करना।

चार निक्षेपोंसे चार प्रकारके जिनेश्वर इस प्रकार है—

१ नाम जिनेश्वर :- जिनेश्वरका ऋषभदेव, अजितनाथ, सीमंधर स्वामी आदि नाम

२ स्थापना जिनेश्वर :- काष्ठ या पाषाण अथवा चित्रमें जिनेश्वरकी स्थापना करना

३ द्रव्य जिनेश्वर :- भाव जिनेश्वरके पहलेकी या बादकी अवस्था। जैसे भविष्यमें होनेवाले तीर्थंकर श्रेणिकराजा आज द्रव्य तीर्थंकर कहे

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

जायेंगे अथवा निर्वाणको प्राप्त महावीरस्वामी आदि तीर्थंकर भी आज द्रव्य तीर्थंकर कहलायेंगे।

४ भाव जिनेश्वर :- केवलज्ञानीके रूपमें विचरते हुए तीर्थंकर जैसे सीमंधर स्वामी, युगमंधर स्वामी आदि विहरमान भगवान भाव जिनेश्वर कहलाते हैं।

षड्विध बाहिर तप कह्युं, अभ्यंतर षड्विध होय रे;
कर्म तपावे ते सही, पडिसोअ वृत्ति पण जोय रे. प०सं०२२

अर्थ–(अब आठवें तपगुणका वर्णन करते हैं–) छः प्रकारसे बाह्य और छः प्रकारसे अभ्यंतर यों बारह प्रकारका तप कहा गया है। कर्मको जो तपावे, जलाये उसे तप कहते हैं। ऐसा तप प्रतिशौचवृत्तिसे अर्थात् इंद्रियोंको रुचिकर न लगे ऐसी प्रतिकूल प्रवृत्तिसे करना चाहिये ॥२२॥

विस्तारार्थ :- बाह्य और अभ्यंतर तपका स्वरूप इस प्रकार है–

बाह्य तपके छः भेद –

१ अनशन :- अन्+अशन=खाना-पीना नहीं, उपवास आदि करना।

२ ऊनोदरी :- ऊन+उदर=खाली पेट। भूखसे कम खाना।

३ वृत्तिसंक्षेप :- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे आहारका संक्षेप करना।

४ रसत्याग :- अभक्ष्य विगई (विकृति) का सर्वथा त्याग और भक्ष्य विगइका यथाशक्ति त्याग करना।

५ कायक्लेश :- लोच इत्यादि कष्ट सहन करना।

६ संलीनता :- पाँचों इंद्रियोंको संयममें रखना।

अभ्यंतर तपके छः भेद :–

१ प्रायश्चित्त :- गुरु द्वारा प्रदत्त प्रायश्चित्त करना।

२ विनय :- गुरु आदिका विनय करना।

३ वैयावृत्य :- गुरु आदिकी सेवा-उपासना करना।

४ स्वाध्याय :- वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा–यों पाँच प्रकारसे स्वाध्याय करना।

५ ध्यान :- धर्मध्यान और शुक्लध्यान ध्याना।

६ कायोत्सर्ग :- शरीरके ममत्वका त्याग करना।

www.jaintatvagyanshala.org

दिव्य औदारिककाम ज़े, कृत कारित अनुमति भेद रे;
योग त्रिके तस वर्जवुं, ते ब्रह्म हरे सवि खेद रे. ते॰सं॰२३

अर्थ—(अब नौवाँ ब्रह्मचर्य गुण कहते हैं—) वैक्रिय शरीर और औदारिक शरीरके साथ मैथुन करना, कराना और उसकी अनुमोदना करना, इन छ भेदोंका मन, वचन और कायासे त्याग करना यह (अठारह भेदवाला) ब्रह्मचर्य सर्व प्रकारके दुःखोंका नाश करनेवाला है ॥३३॥

विस्तारार्थ—ब्रह्मचर्यके १८ भेद और १८००० भंग कहे हैं सो इस प्रकार—

१८ भेद :- औदारिक शरीरके साथ करना, कराना और अनुमोदना तथा वैक्रिय शरीरके साथ करना, कराना और अनुमोदना ये छः भेद, उसे मन, वचन, काया इन तीन योगोंसे गुणनेसे १८ भेद होते हैं।

१८००० भंग :- पृथ्वीकाय, अपूकाय, तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अजीव इन दस भेदोंको दश यतिधर्मसे गुणनेसे १०० भेद हुए; उसे पाँच इंद्रियोंसे गुणनेसे ५०० भेद हुए; उसे आहार, भय, मैथुन, और परिग्रह इन चार संज्ञाओंसे गुणनेसे २००० भेद हुए; उसे मन, वचन, कायासे गुणनेसे ६००० भेद हुए और उसे करना, कराना और अनुमोदना इन तीन करणसे गुणनेसे १८००० भेद हुए। ये १८००० शीलांग रथ कहलाते हैं।

अध्यातमवेदी कहे, मूर्च्छा ते परिग्रह भाव रे;
धर्म अकिंचनने भण्यो, ते कारण भवजल नाव रे. ते॰ सं॰२४

अर्थ—(अब दसवाँ आकिंचन्य धर्म कहते हैं—) अध्यात्मवेदी पुरुष धनादिके ऊपरकी मूर्छाको परिग्रह कहते हैं (अर्थात् पासमें कुछ भी न होते हुए भी प्रत्येक वस्त् पर की ममता परिग्रह कहलाती है) और ममत्वरहितता अकिंचन धर्म कहलाता है जो संसाररूपी समुद्रको तिरनेके लिये नौका समान है ॥२४॥

पांच भेद छे खंतिना, उवयारवयार विवाग रे,
वचन धर्म तिहां तीन छे, लौकिक दोय अधिक सोभाग रे. लौ॰सं॰२५

अर्थ—उपकार क्षमा, अपकार क्षमा, विपाक क्षमा, वचन क्षमा और धर्म क्षमा ये क्षमाके पाँच भेद हैं। इनमें पहली तीन क्षमा लौकिक सुखको देनेवाली है और अंतिम दो क्षमा अधिक सौभाग्य अर्थात् मोक्षको देनेवाली है ॥२५॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

विस्तारार्थ :- पाँच प्रकारकी क्षमाका स्वरूप इस प्रकार है—

१ उपकार क्षमा :- किसीने हम पर उपकार किया हो तो उसके कड़वे वचन भी सहन करना, अर्थात् यह मेरा उपकारी है यों मानकर क्षमा रखना।

२ अपकार क्षमा :- कोई अपनेसे ज्यादा बलवान अथवा बड़ा अधिकारी हो तो उसका हम कुछ बिगाड़ नहीं सकते, यों सोचकर उसके वचन सहन करना; अर्थात् वह हमारा नुकसान करेगा इस प्रकार अपकारके भयसे क्षमा रखना।

३ विपाक क्षमा :- क्रोधके फल कड़वे हैं, उससे अनेक दुश्मन पैदा होनेसे विविध संताप प्राप्त होगा! अर्थात् क्रोधका बुरा फल भोगना पड़ेगा यों सोचकर क्षमा रखना।

४ वचन क्षमा :- क्रोध नहीं करना चहिये ऐसा जिनेश्वर भगवानका वचन है—यों मानकर वचनसे भी किसीका दिल न दुभाना।

५ धर्म क्षमा :- क्षमा आत्माका धर्म ही है (स्वभाव ही है) अतः क्षमा ही रखनी चाहिये यों सोचकर गजसुकुमारकी तरह क्षमा धारण करना।

अनुष्ठान ते चार छे, प्रीति भक्ति ने वचन असंग रे,
त्रण क्षमा छे दोयमां, अग्रिम दोयमां दोय चंग रे. अ०सं०२६

अर्थ—प्रीति अनुष्ठान (प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान ये तीन आवश्यक), भक्ति अनुष्ठान (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव और वंदना आवश्यक), वचन अनुष्ठान (आगमके अनुसार प्रवृत्ति करना), और असंग अनुष्ठान (सहज स्वभावानुसार होनेवाली क्रिया) यों चार प्रकारका अनुष्ठान कहा गया है। इसमेंसे प्रीति और भक्ति इन दो प्रारम्भिक अनुष्ठानोंमें पहली तीन क्षमा होती है और अंतिम दो अनुष्ठान (वचन और असंग) में अंतिम दो क्षमा (वचन और धर्म) होती है। ये दो अनुष्ठान ही श्रेष्ठ है यों समझकर जीवनमें इन्हें ही आदर देना चाहिये, अपनाना चाहिये ॥२६॥

विस्तारार्थ :- यहाँ जो चार अनुष्ठान कहे हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) प्रीति अनुष्ठान :- प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान इन तीन आवश्यकोंको प्रीति अनुष्ठान कहा जाता है।

(२) भक्ति अनुष्ठान :- सामायिक, चतुर्विंशति स्तव, वंदना ये तीन आवश्यक भक्ति अनुष्ठान कहलाते हैं।

www.jaintatvagyanshala.org

इन दो अनुष्ठानोंमें उपकार क्षमा, अपकार क्षमा और विपाक क्षमा होती है।

(३) वचन अनुष्ठान :- जिनेश्वर भगवान कथित आगमके अनुसार प्रवृत्ति करना सो वचन अनुष्ठान कहा जाता है।

(४) असंग अनुष्ठान :- आत्माके सहज स्वभावके अनुसार प्रवृत्ति करना सो असंग अनुष्ठान कहलाता है।

ये दो अनुष्ठान श्रेष्ठ कहे गये हैं। इन अनुष्ठानोंमें वचनक्षमा और धर्मक्षमा होती है।

विशेषार्थ :–

प्रीति अनुष्ठानका लक्षण–जिसमें अधिक प्रयत्न होता है, जिससे करनेवालेका हितकारी उदय हो ऐसी प्रीतिरुचि होती है और शेष कार्योंका त्याग करके जिस कार्यको एकनिष्ठासे किया जाता है वह प्रीति अनुष्ठान कहा जाता है।

भक्ति अनुष्ठानका लक्षण–विशेष गौरवके योगसे बुद्धिमान पुरुष अत्यंत विशुद्ध योगवाली क्रिया करे वह दीखनेमें प्रीति अनुष्ठान जैसा होते हुए भी भक्ति अनुष्ठान कहा जाता है।

प्रीति और भक्ति अनुष्ठानकी विशेषता–पत्नी वास्तवमें अत्यंत प्रिय है और हितकारी माता भी अत्यंत प्रिय है। दोनोंके पालन-पोषणका कार्य भी समान ही है, फिर भी प्रीति और भक्तिकी विशेषता (अंतर) दिखानेके लिये यह उदाहरण दिया है। पत्नीका कार्य प्रीतिसे होता है और माताका कार्य भक्तिसे होता है। यों प्रीति और भक्तिकी विशेषता है।

वचनानुष्ठानका लक्षण–सभी धर्मव्यापारमें उचितरूपसे आगमका अनुसरणकर प्रवृत्ति करना सो वचनानुष्ठान है। यह चारित्रधारी साधुको अवश्य होता है।

असंगानुष्ठानका लक्षण–अत्यंत अभ्याससे चंदनगंधके न्यायसे सहजतासे सत्पुरुषों द्वारा जो क्रिया की जाती है वह असंगानुष्ठान है। यह आगमके संस्कारसे होता है।

वचनानुष्ठान और असंगानुष्ठानकी विशेषता–दंडसे चक्र घूमता है और फिर दंडके प्रयोगके बिना भी घूमता रहता है। यह वचनानुष्ठान और असंगानुष्ठानको समझनेके लिये उदाहरण है। जैसे पहले दंडके योगसे चक्र

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

घूमता है और बादमें दंडके बिना भी पूर्व संस्कारसे घूमता रहता है, वैसे ही वचनानुष्ठान आगमके संबंधसे प्रवृत्त होता है और बादमें आगमके संस्कारमात्रसे वचनकी अपेक्षाके बिना भी सहज भावसे प्रवृत्ति करता है सो असंगानुष्ठान है।

चारों अनुष्ठानोंका फल—प्रारम्भिक दो अनुष्ठान अभ्युदय अर्थात् स्वर्गके कारण हैं, और अंतिम दो अनुष्ठान विघ्नरहित और मोक्षके कारण है।

वल्लभ स्त्री जननी तथा, तेहना कृत्यमां जुओ जुओ राग रे,
पडिक्कमणादिक कृत्यमां, एम प्रीति भक्तिनो लाग रे. ए० सं०२७

अर्थ—जैसे पत्नी और माता दोनों स्त्रीजातिसे समान होने पर भी उनके प्रति राग है किन्तु उनके कार्यमें भिन्न भिन्न राग है, अर्थात् पत्नीके प्रति प्रीतिराग है और माताके प्रति भक्तिराग है; उसी प्रकार प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग अनुष्ठानमें प्रीतिराग है अर्थात् उससे आत्मा आगे बढ़ता है; और सामायिक, चतुर्विंशति स्तव और वंदना अनुष्ठानमें भक्तिराग है। यों प्रीति इहलोकके आशयरूप और भक्ति परलोकके आशयरूप होनेसे दोनों अनुष्ठानोंका अपना अपना प्रयोजन है ॥२७॥

वचन ते आगम आसरी, सहेजे थाये असंग रे,
चक्र भ्रमण जिम दंडथी, उत्तर तदभावे चंग रे. उ० सं० २८

अर्थ—जैसे दंडके योगसे चक्र घूमता है, फिर अपने आप दंड़के बिना भी सहजरूपसे घूमता रहता है, वैसे ही आगम कथित आज्ञानुसार प्रवृत्ति करना वचन अनुष्ठान और बादमें आधारके बिना सहजतासे पूर्व संस्कारसे उत्तम आचरण होता है वह असंग अनुष्ठान कहलाता है ॥२८॥

विष गरल [1]अननुष्ठान छे, तद्हेतु अमृत वली होय रे,
त्रिक तजवा दोय सेववा, ए पांच भेद पण जोय रे.ए० सं० २९

अर्थ—विष, गरल, [1]अननुष्ठान, तद्हेतु और अमृत यों पाँच प्रकारकी क्रिया जाननी चाहिये, उनमें प्रथम तीन त्याज्य है और अंतिम दो सेवनीय है ॥२९॥

विषकिरिया ते जाणिये, जे अशनादिक उद्देश रे,
विष ततखिण मारे यथा, तेम एहज भव फल लेश रे. ते० सं० ३०

अर्थ—इस लोकमें आहार आदि सरलतासे प्राप्त हो इस हेतुसे तथा

१. पाठान्तर अन्यानुष्ठान, अनुष्ठान

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

शब्दसे मान-सन्मान प्राप्त हो और लोग अपनी प्रशंसा करे इस प्रयोजनसे जो ज्ञान (उपदेश) और क्रिया की जाती है वह विषक्रिया कहलाती है। जैसे विष भक्षण करनेसे तत्काल मरणरूप परिणाम आता है वह विषक्रिया कहलाती है। वैसे ही विषक्रियासे इस भवमें आहार, मान-पान आदि अल्प फल मिलता है। (परन्तु आत्माकी अधोगति होती है, क्योंकि महाव्रतधारी साधुको तो कपट क्रिया दुर्गति आदि महाअनर्थको देनेवाली होती है।) ॥३०॥

परभवे इंद्रादिक ऋद्धिनी, इच्छा करतां गरल थाय रे,
ते कालांतर फल दिये, मारे जिम हडकियो वाय रे. मा० सं० ३१

अर्थ–धर्मक्रिया करते करते जो परलोकमें इन्द्र आदिकी ऋद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा होती है अथवा धन-धान्य आदिकी इच्छा होती है वह [1]गरल क्रिया कहलाती है। वह क्रिया हड़काये (पागल) वायुकी तरह (जैसे किसीको हड़काया-पागल प्राणी काटा हो तो उसका प्रभाव दो-तीन सालके बाद भी होता है और वह हड़कसे मर जाता है वैसे ही) दो-तीन भवमें सामान्य फल देती है (परन्तु शुद्ध चारित्रका फल नहीं मिलता।) ॥३१॥

विस्तारार्थ–विष और गरल क्रियामें अंतर इतना ही है कि विष तत्काल प्राण हरण करता है और गरल कुछ समय जानेके बाद अर्थात् देरीसे फल देता है। यह है तो जहर ही, मगर पहलेसे कुछ हलका है। दोनों दुर्गति ही देते है, अतः त्याज्य है।

लोक करे तिम जे करे, उठे बेसे समूर्च्छिम प्राय रे,
विधि विवेक जाणे नहीं, ते अननुष्ठान कहाय रे. तें० सं० ३२

अर्थ–जैसे कोई अज्ञानी जीव (पारणेके लिये या किसी वस्तुको लेनेके लिये) जैसे दूसरे लोग क्रिया करते है, बैठते हैं, उठते हैं, वैसे ही वह भी क्रिया करता है, बैठता है, उठता है और वह भी [2]संमूर्च्छिमकी तरह करता है। (अर्थात् आहार आदिके निमित्तसे बेमनसे करता है) वह अज्ञानी विधि-विधान या विवेक कुछ नहीं जानता (कि किस तरह बैठना, उठना, वंदन-पूजन करना चाहिये तथा गुरुके सन्मुख किस तरह जाना, आना, बैठना चाहिये) तथा धर्माचार्यका एवं ज्ञान-ज्ञानी आदिका विनय कैसे करना इसका उसे कुछ भी भान न होनेसे, मात्र लोगोंकी देखादेखी विवेकविहीन और अनिच्छासे जो क्रिया करता है वह निष्फल सिद्ध होती है इसलिये वह त्याज्य है। ऐसी क्रिया अननुष्ठान क्रिया कहलाती है ॥३२॥

---

१. जहर २. संमूर्च्छिम=मन रहित, असंज्ञी।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तद्‌हेतु ते शुद्ध रागथी, विधि शुद्ध अमृत ते होय रे,
सकल विधान जे आचरे, ते दीसे विरला कोय रे. ते०सं०३३

अर्थ–कोई भद्रिक परिणामी जीव (देशना सुनकर संसारके सर्व भाव अनित्य जान दीक्षा अंगीकार कर) शुद्ध रागसे अच्छे भावसे क्रिया करे वह तद्‌हेतु क्रिया कहलाती है। (इस क्रियामें विधि शुद्ध नहीं होती, किन्तु परिणाम अच्छे होते हैं।) तथा अमृतकी तरह शुद्ध विधिपूर्वक (अच्छे परिणामसे) जो क्रिया करता है वह अमृतक्रिया कहलाती है। आगमकथित शुद्ध विधिके साथ शुभाशयसे सर्व अनुष्ठानकी विधिको करनेवाले जगतमें विरल ही होते हैं।

पाँच अनुष्ठानोंमें यह अमृत अनुष्ठान अद्‌भुत चिंतामणि रत्न जैसा है। इसकी प्राप्तिसे ही संसारका अंत और मोक्ष-प्राप्ति होती है ॥३३॥

करण प्रीति आदर घणो, जिज्ञासा जाणनो संग रे,
शुभ आगम निर्विघ्नता, ए शुद्ध क्रियानां लिंग रे. ए० सं० ३४

अर्थ–(अब शुद्ध क्रियाके लक्षण कहते हैं कि–) (१) क्रिया करनेमें बहुत प्रीति रखे, (२) बहुत आदर करे, (३) क्रियाके प्रयत्नमें हमेशा उद्यम करे, (४) क्रियाके तत्त्वको जाननेकी इच्छा करे, (५) शुद्ध क्रियाके ज्ञाता पुरुषका संग करे तथा (६) श्री जिनेश्वर देव कथित स्याद्वादकी रचनारूप उत्तर सिद्धांतोंको अंगीकार करे (अर्थात् सर्व काम छोड़कर केवल आगमश्रुतपंथमें प्रवृत्ति करे)–ये शुद्ध क्रियाके (छः) लक्षण हैं ॥३४॥

द्रव्य लिंग अनंता धर्यां, करी किरिया फल नवि लद्ध रे,
शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुद्‌गल आवर्तने अद्ध रे. पु० सं० ३५

अर्थ–इस संसारमें जीवने द्रव्य लिंग (बाह्य साधुवेश) अनंत बार धारण किया है और क्रिया भी विशिष्ट प्रकारसे अनेक बार की है; तथापि उस संयम और क्रियाका शुद्ध फल मिला नहीं है। (क्योंकि भावशून्य क्रिया वास्तविक फल नहीं देती।) और भाव क्रिया तो जीव तभी प्राप्त कर सकता है कि जब उसका संसार अर्धपुद्‌गलपरावर्त जितना ही बाकी रहे ॥३५॥

[मारग अनुगति भाव जे, अपुनर्बंधकता लद्ध रे,
किरिया नवि उपसंपजे, पुद्‌गल आवर्तने अद्ध रे. पु० सं० ३५]

अर्थ–मार्गानुसारीके भावसे अपुनर्बंधकता प्राप्त होती है, परन्तु अर्धपुद्‌गल परावर्तसे अधिक स्थितिवाले जीवको शुद्ध क्रिया प्राप्त नहीं होती ॥३५॥

www.jaintatvagyanshala.org

विशेषार्थ–अपुनर्बंधकता अर्थात् मंद मिथ्यात्वकी अवस्था कि जिस अवस्थामें आयुष्यके सिवाय किसी कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बंध नहीं होता, एक कोटाकोटि सागरोपमके अंदर ही बंध होता है और इस अपुनर्बंधक अवस्थाको प्राप्त आत्मामें तीन प्रकारकी विशिष्टता होती है जो इस प्रकार है–

१. वह तीव्र भावसे पाप नहीं करता. २ वह संसार पर बहुमान धारण नहीं करता अर्थात् संसारमें रुचि नहीं रहती, ३. वह सर्व स्थान पर 'औचित्यकी रक्षा करता है, अनुचित प्रवृत्ति कहीं नहीं करता।

यह अपुनर्बंधक दशा चरमावर्त्त कालमें ही प्राप्त होती है। चरमावर्त्त अर्थात् जिसे अब मोक्षमें जानेके लिये अंतिम पुद्गल परावर्तन काल अवशेष रहा हो। इससे अधिक संसारकाल अवशेष हो उसे अचरमावर्त्त काल कहते हैं और उस कालमें चाहे जितनी धर्मसामग्री मिलने पर भी उसमें भवभय या मोक्षकी अभिलाषा मात्र भी उत्पन्न नहीं हो सकती। जैसे बिलकुल कच्चा आम (अँबियाके रूपमें रहा हुआ) पेड़ परसे उतारकर उसे पकानेके लिये चाहे जितने प्रयत्न किये जाय, उसे घास आदिमें रखा जाय, किन्तु इस अँबियेमें पकनेकी कोई योग्यता ही नहीं है।

सही बात तो यह है कि वृक्ष पर ही इसका समय आने पर कच्चे आमके रूपको धारण करे, उसके बाद ही घास आदिका संयोग मिलने पर इसमें पक्व होनेकी योग्यता प्रकट होती है। ऐसा ही इस चरमावर्त्त और अचरमावर्त्त कालके संबंधमें है।

अरिहंत सिद्ध तथा भला, आचारज ने उवज्झाय रे,
साधु नाण दंसण चरित, तव नवपद मुक्ति उपाय रे. त० सं० ३६

अर्थ–अरिहंत भगवान, सिद्ध परमात्मा, श्रेष्ठ आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान, साधु भगवान, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप ये नवपद ही वास्तवमें मोक्षके उपायभूत है, अर्थात् इन नवपदकी आराधनासे ही मोक्ष प्राप्त होता है ॥३६॥

ए नवपद ध्यातां थकां, प्रगटे निज आतमरूप रे,
आतम दरिसण जेणे कर्युं, तेणे मूंध्यो भव भय कूप रे. ते० सं० ३७

अर्थ–इस नवपदके ध्यानसे अपने आत्माका स्वाभाविक सहज स्वरूप प्रकट होता है। जिस प्राणीने कर्ममलसे रहित आत्माके ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप

उज्ज्वल गुणको प्राप्त किया है उसीने आत्मदर्शन प्राप्त किया है और उसने संसाररूपी कूएको ढँक दिया है—बंद कर दिया है, अर्थात् अब उसे संसारकूपमें गिरना नहीं रहता ॥३७॥

क्षण अर्धे जे अघ टळे, ते न टळे भवनी कोडी रे,
तपस्या करतां अति घणी, नहि ज्ञानतणी छे जोडी रे. न० सं० ३८

अर्थ—ज्ञानी पुरुष आधे क्षणमें (एक घड़ीके बारहवें भागमें) जो पापका नाश करते हैं उन पापोंको अज्ञानी पुरुष करोड़ों भव तक अत्यंत अत्यंत तपश्चर्या करके भी नष्ट नहीं कर सकता। इसलिये ज्ञानकी समानता कोई नहीं कर सकता ॥३८॥

आतमज्ञाने मगन जे, ते सवि पुद्गलनो खेल रे,
इन्द्रजाल करी लेखवे, न मिले तिहां देई मनमेळ रे. न० सं० ३९

अर्थ—जो प्राणी आत्मज्ञानमें मग्न होता है अर्थात् जो संसारी दशाको विभावरूप मानकर हमेशा स्वभाव दशामें लीन रहकर आत्मरमणता करता है, वह प्राणी शरीर धन इंद्रियाँ संबंधी सुखदुःखरूप पुद्गलके नाटकको इंद्रजाल जैसा मानता है (इससे उसे कर्मरूपी मैल चिपकता नहीं है), क्योंकि पौद्गलिक सुखोंमें उसे कुछ रुचि रही नहीं है ॥३९॥

जाण्यो ध्यायो आतमा, आवरण रहित होय सिद्ध रे,
आतमज्ञान ते दुःख हरे, एहि ज शिव हेतु प्रसिद्ध रे. ए० सं० ४०

अर्थ—जिस प्राणीने आत्माको सही रीतिसे पहचान लिया, पहचान कर क्षीरनीरकी तरह और लोहाग्निकी तरह तद्रूप होकर उसका चिंतन किया, वह प्राणी आठ कर्मोंके आवरणसे रहित होकर सिद्ध होता है। सचमुच! आत्मज्ञान ही दुःखका नाश करनेवाला है, और यही मोक्षका प्रसिद्ध उपाय है ॥४०॥

चोथे खंडे सातमी, ढाळ पूरण थई ते खास रे,
नवपद महिमा जे सुणे, ते पामे सुजस विलास रे. ते० सं० ४१

अर्थ—इस प्रकार चौथे खंडकी सातवीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि जो प्राणी नवपदजीकी महिमाको सुनता है वह प्राणी अच्छे यशके विलासको प्राप्त होता है।

चतुर्थ खंडकी सातवीं ढाल समाप्त

www.jaintatvagyanshala.org

दोहा छंद

इणि परे देई देशना, रह्यो जाम मुनिचंद,
तव श्रीपाल ते विनवे, धरतो विनय अमंद. १

अर्थ—इस प्रकार मुनियोंमें चंद्र समान ऐसे अजितसेन मुनि जब देशना दे चुके, तब श्रीपाल राजा अत्यंत विनयको धारण करते हुए इस प्रकार विनती करने लगा ।।१।।

भगवन्! कहो कुण कर्मथी, बालपणे मुज देह
महारोग ए ऊपनो, कुण सुकृते हुओ छेह. २

अर्थ—हे भगवन्! आप कहिये कि मुझे बचपनमें किस कर्मके उदयसे कोढ़का भयंकर रोग हुआ? और भवांतरमें (पूर्व भवमें) मैंने ऐसे कौनसे अच्छे कर्म किये थे कि जिससे यह रोग नष्ट भी हो गया? ।।२।।

कवण कर्मथी में लही, ठाम ठाम बहु ऋद्धि,
कवण कुकर्मे हुं पड्यो, गुणनिधि! जलनिधि मध्य. ३

अर्थ—फिर हे प्रभो! ऐसा कौनसा शुभ कर्म मैंने किया था कि जिसके उदयसे कदम कदम पर मैंने बहुत ऋद्धि प्राप्त की? और हे गुणनिधि, गुणके भंडार समान हे पूज्य! किस दुष्ट कर्मके प्रतापसे मुझे समुद्रमें गिरना पड़ा? ।।३।।

कवण नीच कर्मे हुओ, डूंबपणो मुनिराय,
मुजने ए सवि किम हुओ, कहिये करी सुपसाय. ४

अर्थ—हे मुनिराज! किस नीच कर्मके उदयसे मुझे डूंब होनेका कलंक प्राप्त हुआ? ये सारी ऊँची-नीची अवस्थाएँ मुझे क्यों प्राप्त हुई? सो सब कृपा करके मुझे कहिये ।।४।।

ढाल आठवीं

(सांभरीया गुण गावा मुज मन हरिना रे—ए देशी)

सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे,
कांई कीधुं कीधुं कर्म न जाय रे,
कर्मवशे होय सघलां सुखदुःख जीवने रे,
कर्मथी बलियो को नवि थाय रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे.१

अर्थ—अब अजितसेन मुनि कर्मके विपाकका वर्णन कर रहे हैं—हे

श्रोताजन! आप ध्यानसे सुनिये। जो कुछ भी कर्मबंध किया हो वह कर्म भोगे बिना नष्ट नहीं होता। जीवको कर्मवशात् सर्व सुखदुःख प्राप्त होते हैं, किन्तु कोई जीव कर्मसे ज्यादा बलवान नहीं है ॥१॥

भरतक्षेत्रमां नयर हिरण्यपुरे हुओ रे,
महीपति महोटो ते श्रीकंत रे,
व्यसन तेहने लाग्युं आहेडातणुं रे,
कांई वारे वारे राणी एकंत रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २

अर्थ—इस भरतक्षेत्रमें हिरण्यपुर नामक नगरमें श्रीकान्त नामक एक बड़ा राजा राज्य करता था। उस राजाको शिकारका व्यसन लग गया, इसके लिये रानी राजाको एकांतमें बार बार शिकारका निषेध करती थी ॥२॥

राणी तेहनी जाणो सुगुणा श्रीमती रे,
समकित शीलनी रेख रे,
जिनधर्मे मति रूडी कूडी नहीं मने रे,
दाखे दाखे शीख विशेष रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ३

अर्थ—उस श्रीकांतराजाको अच्छे गुणवाली, समकित और शीलकी रेखा समान श्रीमती नामक रानी थी। उसे जैनधर्म पर अच्छी श्रद्धा थी और मनमें जरा भी कपटभाव न था। वह रानी राजाको शिकारके लिये इस प्रकार विशिष्ट सलाह देती रहती थी— ॥३॥

पियु तुजने आहेडे जावुं नवि घटे रे,
जेहने केडे छे नरकनी भीति रे,
धरणी ने परणी बे लाजे तुज थकी रे,
मांडी जेणे जीवहिंसानी अनीति रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ४

अर्थ—हे स्वामिन्! जिसके पीछे नरकका भय रहा हुआ है ऐसे शिकारके लिये आपको जाना योग्य नहीं है। आप जो यह जीवहिंसारूप अनीति करने लगे हैं आपके उस खराब कृत्यसे तो पृथ्वी और मैं आपकी पत्नी दोनों शर्मिंदा हो रही है ॥४॥

मुख तृण दीधे अरि पण मूके जीवतो रे,
एहवो छे रूडो क्षत्रीनो आचार रे,

तृण आहार सदा जे मृग पशु आचरे रे,
तेहने मारे जे आहेडे ते गमार रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ५

अर्थ—क्षत्रियका इस प्रकारका सुंदर व्यवहार होता है कि यदि शत्रु भी मुँहमें घासका तिनका ले ले, तो उसे जिंदा छोड़ देते हैं, तो ये मृग जैसे पशु तो सदा घासका ही आहार करते हैं (अर्थात् मुँहमें सदा घास लिये हुए हैं) उन्हें शिकारके लिये जो मारता है वह तो मूर्ख ही है ॥५॥

ससलां नासे पासे नहि आयुध धरे रे,
राणीजाया बाणी तेहने केड रे,
जे वागे ते आगे दुःख लहेशे घणां रे,
नाठाशुं बल न करे क्षत्री वेढ रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ६

अर्थ—फिर खरगोश जैसे बेचारे प्राणी तो शिकारीको देखकर ही भाग जाते हैं और पासमें हथियार भी नहीं रखते, ऐसे खरगोशके पीछे आप जैसे रानी- पुत्र बाण लेकर शिकारके लिये दौड़ते हैं तो भविष्यमें बहुत दुःख पायेंगे। जो असली क्षत्रियपुत्र हो वह तो भागनेवालेके पीछे बलप्रयोग नहीं करता। (यहाँ रानीने कटाक्षमें 'रानीपुत्र' कहा है, अर्थात् यदि आप सचमुच रानीपुत्र अर्थात् क्षत्रियपुत्र है तो निर्बलके आगे बलप्रयोग नहीं करना चाहिये—यह काम तो दासीपुत्र हो वही करते हैं।) ॥६॥

अबल कुलाशी झखने निज द्रुम पीडतां रे,
खगने मृगने तृणभक्षीने दोष रे,
हणतां नृपने न होय इम जे उपदिशे रे,
तेणे कीधो तस हिंसक कुल पोष रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ७

अर्थ—(राजाकी मालिकीकी पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली सभी वस्तुओंका मालिक राजा ही है इसलिये) "राजाकी मालिकीके जलको भक्षण करनेवाले निर्बल छोटे-बड़े मत्स्य, तथा राजाकी मालिकीके वृक्षके फल, फूल और पत्ते भक्षण करनेवाले पक्षी तथा घास आदिका भक्षण करनेवाले हिरन आदि सब राजाके गुनहगार है, इसलिये उन्हें मारनेमें—उनका शिकार करनेमें कोई दोष नहीं है, हिंसा नहीं है," ऐसा उपदेश जो हिंसक गुरु देते हैं वे हिंसक कुलका पोषण ही करते हैं ॥७॥

Aacharya vijay shri·Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

हिंसानी ते खिंसा सघले सांभळी रे,
हिंसा नवि रूडी किणही हेत रे,
आप संतापे पर संतापे पापीओ रे,
आहेडी ते जाणो कुलमां केत रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ८

अर्थ—सभी दर्शनोंमें (धर्मोंमें) हिंसाकी निंदा ही सुनी जाती है, इसलिये किसी भी प्रकारसे हिंसा करनेवाला पापी मनुष्य स्वयंको दुःखी करता है और दूसरोंको भी दुःख देता है। इसलिये हिंसक मनुष्य (शिकारी) को अरिष्टसूचक केतु ग्रहके समान अपने कुलको क्षय करनेवाला मानना चाहिये ॥८॥

जाओ रसातल विक्रम जे दुर्बल हणे रे,
ए तो लेश्या कृष्णनो घन परिणाम रे,
भूंडी करणीथी जग अपजश पामिये रे,
लीहालो खातां मुख होवे ते श्याम रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ९

अर्थ—फिर जो दुर्बल प्राणियोंको मारता है उनका पराक्रम पृथ्वीके तलमें (पातालमें) चला जाओ। (रानी कटाक्षमें कहती है कि ऐसे हिंसक मनुष्य अपने पराक्रमके साथ पातालमें चले जाओ, यहाँ पृथ्वी पर उनका काम नहीं है।) क्योंकि ऐसी गाढ़ कृष्ण लेश्याके परिणामसे ही जीवको हिंसाके भयंकर परिणाम होते हैं, इसलिये जैसे कोयला खानेसे मुँह काला (श्याम) ही होता है वैसे ही संसारमें हिंसा जैसे खराब काम करनेसे अपयश ही प्राप्त होता है ॥९॥

एहवां राणीए वयण कह्यां पण रायने रे,
चित्तमांहे नवि जाग्यो कोई प्रतिबोध रे,
घन वरसे पण नवि भींजे मगसेलीओ रे,
मूरखने हित उपदेशे होय क्रोध रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १०

अर्थ—इस प्रकार रानीने बहुत बहुत वचन कहे, फिर भी राजाके चित्तमें किसी भी प्रकारका प्रतिबोध जागृत नहीं हुआ; क्योंकि, जैसे अत्यंत बरसात बरसने पर भी मगसेल पत्थर नहीं भीगता, वैसे ही मूर्ख मनुष्यको दिया गया हित-उपदेश फायदा न करके क्रोध ही उत्पन्न करता है ॥१०॥

www.jaintatvagyanshala.org

अन्य दिवसे शतसात उल्लंठे परवर्यो रे,
मृगयासंगी आव्यो गहनवन राय रे;
मुनि तिहां देखी कहे व्याधे छे पीड्यो कोढियो रे,
उल्लंठ ते मारे देई घन घाय रे;
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. ११

अर्थ—फिर एक दिन सात सौ जोरावर पुरुषोंके साथ शिकारका व्यसनी वह राजा एक गाढ़ वनमें आया। वहाँ कायोत्सर्ग ध्यानमें खड़े एक मुनिको देखकर कहने लगा कि 'यह कोई कुष्ठ रोगसे पीड़ित कुष्ठी है, इसे मारो, मारो।' यह सुनकर वे जोरावर पुरुष मुनिपर जोर-जोरसे प्रहार करने लगे ॥११॥

जिम ताडे ते मुनिने तिम नृपने हुवे रे,
हास्यतणो रस मुनि मन ते रस शांत रे,
करी उपसर्गने मृगयाथी वळ्या सातशें रे,
नृप साथे ते पहोता घर मन खांत रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १२

अर्थ—वे बलवान पुरुष जैसे जैसे मुनिको ताड़न करते थे वैसे वैसे राजाको हास्यरस (आनंद-आनंद) उत्पन्न होता था, पर मुनिराज तो मनमें शांतरसमें ही निमग्न थे (समतारसमें ही स्नान कर रहे थे।)

इस प्रकार मुनिको उपसर्ग करके वे सात सौ पहलवान लोग मनमें हर्षित होते हुए शिकारसे लौटकर राजाके साथ अपने-अपने घर गये ॥१२॥

अन्य दिवस मृग पूंठे धायो एकलो रे,
राजा मृगलो पेठो नईतट रान रे,
भूलो नृप ते देखे नईतट साधुने रे,
बोळे नई जलमां मुनि झाली कान रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे.१३

अर्थ—फिर एक दिन राजा अकेला शिकारके लिये एक मृगके पीछे दौड़ा, इतनेमें वह मृग नदी किनारे एक जंगलमें घुस गया। वहाँ भूले पड़े हुए राजाने नदी किनारे एक मुनिको ध्यानमें बैठे हुए देखा, उन्हें देखकर कौतुकी राजाने मुनिको कानसे पकड़कर नदीके पानीमें डुबाया ॥१३॥

कांईक करुणा आवी कढाव्यो नीरथी रे,
घेर आवीने राणीने कही वात रे,

सा कहे बीजानी पण हिंसा दुःख दिये रे,
जनम अनंता दुःख दिये ऋषिघात रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १४

अर्थ—फिर कुछ दया आनेसे राजाने मुनिको पानीमेंसे बाहर निकाला। फिर घर आकर राजाने रानीको सारी बात बतायी, तब रानी कहने लगी—दूसरे जीवोंकी हिंसा भी दुःखका कारण होती है तो ऋषि(मुनि)की हिंसा तो विशेषतया अनंत भवों तक दुःख देगी ॥१४॥

राजा भाखे नवि करशुं फरी एहवुं रे,
वीता केताईक वासर जाम रे,
गोख थकी मुनि दीठो फिरतो गोचरी रे,
विसारी राणीनी शिक्षा ताम रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १५

अर्थ—तब राजाने कहा—अब फिरसे कभी ऐसा काम मैं नहीं करूँगा। फिर इस घटनाको कई दिन बीत गये। एक दिन राजाने झरोखेमेंसे एक मुनिको गोचरीके लिये नगरमें घूमते देखा कि रानीकी दी हुआ शिक्षा भूल गया। (पूर्व संस्कार जागृत हो गये) ॥१५॥

नगरी विटाली भीखे कहे नृप उल्लंठने रे,
काढो बाहिर एहने झाली कंठ रे,
राणीए दीठा गोख थकी ते काढता रे,
राजाने आदेशे लाग्या लंठ रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १६

अर्थ—मुनिको देखकर राजा अपने जोरावर पुरुषोंसे कहने लगा—इस भिक्षुकने सारी नगरीको भ्रष्ट कर दिया है अतः इसका गला पकड़कर नगरीसे बाहर धकेल दो। तब राजाके आदेशसे वे जोरावर पुरुष मुनिको नगरके बाहर धकेल ही रहे थे कि झरोखेमें बैठी हुई रानीने यह दृश्य देख लिया ॥१६॥

राणी रूठी राजाने कहे शुं करो रे,
पोतानुं बोल्युं पाळो न वचन्न रे,
मुनि उपसर्गे सर्गे जावुं दोहिलुं रे,
नरके जावा लाग्युं छे तुम मन्न रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १७

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—रानीको बहुत गुस्सा आया और राजासे कहने लगी—हे राजन्! यह आप क्या कर रहे हैं? आप अपने दिये हुए वचनको भी नहीं पालते? और फिर मुनिको उपसर्ग करनेसे स्वर्गगमन तो अत्यंत दुर्लभ है और आपका तो नरकमें जानेका ही मन हुआ लगता है (इसलिये ऐसा कार्य कर रहे हो।) ॥१७॥

नृप उपशमियो नमियो मुनि तेडी घरे रे,
राणी भाखे राजा ए अन्नाण रे,
मुनि उपसर्गे पाप कर्युं इणे मोटकुं रे,
ए छूटे ते कहिये कांई विन्नाण रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १८

अर्थ—इस प्रकार रानीके वचन सुनकर राजा उपशांत हुआ और मुनिको अपने घर बुलाया और नमस्कार किये। फिर रानीने मुनि महाराजसे कहा—हे पूज्य! यह राजा तो अज्ञानी है, इसलिये आपको उपसर्ग करके इसने महान पापका बंध किया है। तो उस पापसे यह छूट जाये ऐसा कोई प्रायश्चित्त बताइये ॥१८॥

सज्जन जे भूंडुं करतां रूडुं करे रे,
तेहनां जगमां रहेशे नाम प्रकाश रे,
आंबो पत्थर मारे तेहने फल दिये रे,
चंदन आपे कापे तेहने वास रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. १९

अर्थ—क्योंकि सज्जन तो वही कहलाता है जो बुरा करनेवालेका भी भला करे, और इसीलिये उसका नाम दुनियामें रोशन होता है। जैसे आम्रवृक्ष अपनेको पत्थर मारनेवालेको भी मधुर फल ही देता है और चंदनका वृक्ष भी काटनेवालेको सुगंध ही देता है ॥१९॥

मुनि कहे महोटा पातकनुं शुं पालणुं रे,
तोपण जो होय एहनो भाव उल्लास रे,
नवपद जपतां तपतां तेहनुं तप भलुं रे,
आराधे सिद्धचक्र होय अघनाश रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २०

अर्थ—तब मुनिराजने कहा—हे रानी! महापापका क्या प्रायश्चित्त हो सकता है? फिर भी यदि उसका उल्लासयुक्त भाव हो तो नवपदजीका जप

www.jaintatvagyanshala.org

करनेसे तथा उसका सुंदर तप करनेसे और इस प्रकार सिद्धचक्रजीकी आराधना करनेसे पापका नाश होता है ॥२०॥

पूजा तप विधि शीखी आराध्युं नृपे रे,
राणी साथे ते सिद्धचक्र विख्यात रे,
उजमणामांहे आठे राणीनी सही रे,
अनुमोदे वळी नृपनुं तप शत सात रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २१

अर्थ–फिर राजाने पूजा और तपकी विधि सीखी और रानीके साथ प्रसिद्ध महिमावान सिद्धचक्रजीकी आराधना की। फिर उस तपके उद्यापनमें रानीकी आठों सहेलियोंने अनुमोदना की और सात सौ जोरावर पुरुषोंने भी राजाके तपकी अनुमोदना की ॥२१॥

अन्य दिवस ते गया सिंहनृप गामडे रे,
भांजी ते वळिया लेई गोवग्ग रे,
केड करीने सिंहे मार्या ते मरी रे,
कोढी हुआ खत्री मुनि उवसग्ग रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २२

अर्थ–फिर एक दिन राजा और उसके सातसौ सुभट सिंहराजाके गाम जाकर उसे लूटकर वहाँसे गायोंके झुण्ड लेकर वापिस आये। तब सिंहराजाने पीछेसे आकर उन सात सौ सुभटोंको मार दिया। वे सभी मरकर क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए, किन्तु मुनिको उपसर्ग करनेके पापसे वे सभी कुष्ठी हुए ॥२२॥

पुण्य प्रभावे राजा हुओ श्रीकंत तुं रे,
श्रीमती राणी मयणासुंदरी तुज्ज रे,
कुष्ठीपणुं जलमज्जन डूंबपणुं तुम्हे रे,
पाम्युं ए मुनि आशातना फल गुज्ज रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २३

अर्थ–पुण्यके प्रभावसे वह श्रीकांतराजा मरकर तू (श्रीपाल) हुआ है और तेरी श्रीमती रानी यह मयणासुंदरी हुई है। कुष्ठ होना, पानीमें डूबना और डूंब होनेका कलंक लगना यह सब मुनिराजकी आशातना करनेके रहस्यभूत परिणाम हैं ॥२३॥

www.jaintatvagyanshala.org

सिद्धचक्र श्रीमती वयणे आराधियुं रे,
तेहथी पाम्यो सघलो ऋद्धि विशेष रे,
आठ सखी राणीनुं तप अनुमोदियुं रे,
तेणे ते लघुदेवी हुई तुज शुभवेष रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २४

अर्थ—फिर श्रीमती रानीके वचनसे तूने सिद्धचक्रजीकी आराधना की थी, इसलिये यह सर्व विशिष्ट ऋद्धि प्राप्त हुई है। आठ सहेलियोंने रानीके तपकी अनुमोदना की थी, इसलिये वे शुभ वेषको धारण करनेवाली ये तेरी लघु रानियाँ हुई हैं ॥२४॥

साप खाओ तुज आठमीए कह्युं शोक्यने रे,
तेणे सापे दंसी न टळे पाप रे,
धर्मप्रशंसा करी राणा हुआ ते सातशें रे,
घातविधुर ते सिंह लिये व्रत आप रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २५

अर्थ—तेरी आठवीं रानीने अपनी शोक्यसे द्वेषवश कहा था कि तुझे साप काटो, इसलिये उसे साप काटा था। सचमुच! किया हुआ पाप भोगे बिना नष्ट नहीं होता। उन सात सौ जोरावर पुरुषोंने भी धर्मकी प्रशंसा की थी इससे वे राणा हुए हैं। फिर सिंहराजाने सात सौ पुरुषोंको मार दिया था, किन्तु बादमें हिंसाके पापसे भयभीत होकर उसने दीक्षा अंगीकार की थी ॥२५॥

मास अणसणे अजितसेन ते हुं हुओ रे,
बालपणे तुज राज्य हर्युं ते राण रे,
बांधी पूरव वैरे तुज आगल धरे रे,
पूरव अभ्यासे मुज आव्युं नाण रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २६

अर्थ—फिर एक मासका अनशन करके वह सिंहराजा वहाँसे मरकर यह मैं अजितसेन राजा हुआ हूँ। गत भवमें तूने मेरा राज्य लिया था इसलिये इस भवमें मैंने तेरे बचपनमें ही तेरा राज्य लिया था। फिर पूर्व भवके वैरसे इन सात सौ राणाओंने मुझे बाँधकर तेरे आगे लाकर रखा था। फिर पूर्वभवके चारित्रके अभ्याससे ही मुझे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ है ॥२६॥

जाति संभारी संयम ग्रही लही ओहिने रे,
इहां आव्यो जेणे जेवां कीधां कर्म रे,

तेहने तेहवां आव्यां फल सुख दुःखतणां रे,
सद्‌गुरु पाखे जाणे कुण ए मर्म रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २७

अर्थ–जातिस्मरणज्ञानसे पूर्वभव देखकर सोच-विचारकर मैंने संयम अंगीकार किया और निरतिचार चारित्रके पालनसे अवधिज्ञानको प्राप्तकर मैं यहाँ आया हूँ। सचमुच! जिस प्राणीने जैसे कर्म किये होते हैं उसे वैसे प्रकारके सुख-दुःखरूप फल प्राप्त होते हैं। यह रहस्य सद्‌गुरुके बिना और कौन जान सकता है? ॥२७॥

चोथे खंडे ढाळ हुई ए आठमी रे,
एहमां गायो नवपद महिमा सार रे,
श्री जिनविनये सुजस लहिजे एहथी रे,
जगमां होवे निश्चे जयजयकार रे.
सांभळजो हवे कर्मविपाक कहे मुनि रे. २८

अर्थ–श्रीपाल महाराजाके रासकी यह चौथे खंडकी आठवीं ढाल पूर्ण हुई जिसमें उत्तम नवपदजीकी महिमाका गुणगान किया गया है। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी कहते हैं कि जिनेश्वर भगवानका विनय करनेसे और नवपदजीकी भक्तिसे जगतमें उत्तम यश प्राप्त होता है और जयजयकार होती है ॥२८॥

चतुर्थ खंडकी आठवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

इम सांभळी श्रीपालनृप, चिंते चित्त मझार,
अहो अहो भव नाटके, लहिये इस्या प्रकार. १

अर्थ–इस प्रकार अजितसेन मुनिकी देशना सुनकर श्रीपालराजा मनमें सोचने लगे कि अहो! आश्चर्य है कि संसाररूपी नाटकमें ऐसे प्रकारके प्रपंच प्राप्त होते हैं ॥१॥

कहे गुरु प्रते हवणां नथी, मुज चारित्रनी सत्ति,
करी पसाय तिणे उपदिसो, उचित करण पडिवत्ति. २

अर्थ–फिर श्रीपालराजा गुरुसे कहने लगे–हे पूज्य! अभी मुझमें चारित्र ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं है, तो कृपा करके मेरे योग्य धर्म बताइये ॥२॥

वळतुं मुनि भाखे नृपति, निश्चय गति तुं जोय,
करम भोग फल तुज घणुं, इह भव चरण न होय. ३

अर्थ—तब मुनि भगवंत प्रत्युत्तर देते हुए बोले—हे राजन्! तू तेरी निश्चित गति देख ले, सुन ले। अभी तुझे भोगकर्मका फल बहुत बाकी है इसलिये इस भवमें तुझे चारित्रका योग नहीं है ॥३॥

पण नवपद आराधतां, पामीश नवमुं सग्ग,
नर सुर सुख क्रमे अनुभवी, नवमे भव अपवग्ग. ४

अर्थ—किन्तु नवपदजीकी आराधना करनेसे तू नौवें देवलोकको प्राप्त करेगा। फिर अनुक्रमसे मनुष्य और देवगतिके सुखोंका अनुभव करते हुए तू नौवें भवमें मोक्ष पायेगा ॥४॥

ते सुणी रोमांचित हुओ, निज घर पहोतो भूप,
मुनि पण विहरंतो गयो, ठाणांतर अनुरूप. ५

अर्थ—यह सुनकर श्रीपालराजा रोमांचित होता हुआ अपने घर गया और मुनि भगवंत भी पृथ्वी पर विचरण करते हुए अन्य योग्य स्थानको गये ॥५॥

ढाल नवमी

(कंत तमाकु परिहरो—ए देशी)

हवे नरपति श्रीपाल ते, निज परिवार संयुत्त, मेरे लाल,
आराधे सिद्धचक्रने, विधि सहित ग्रही सुमुहुत्त, मेरे लाल,
मननो महोटो मोजमां. १

अर्थ—अब उदारचित्त श्रीपालराजा अपने परिवारके साथ अच्छा मुहूर्त्त देखकर आनंदपूर्वक श्री सिद्धचक्रजीकी विधि सहित आराधना करने लगा ॥१॥

मयणासुंदरी त्यारे भणे, पूर्वे पूज्युं सिद्धचक्र, मे०
धन तो त्यारे थोडुं हतुं, हवणां तुम्ह ऋद्धे शक्र. मे० म० २

अर्थ—तब मयणासुंदरी बोली—पहले हमने सिद्धचक्रकी पूजा की थी, तब अपने पास धन थोड़ा था, परन्तु अब तो आप ऋद्धिमें इंद्र जैसे हैं ॥२॥

धन महोटे छोटुं करे, [1]धर्म उजमणुं तेह, मे०
फल पूरुं पामे नहीं, मम करजो तिहां संदेह. मे० म० ३

१. पाठान्तर—जे करणी धर्मनी तेह मे०

अर्थ–ऋद्धि ज्यादा होते हुए भी जो मनुष्य तपधर्मका लघु उद्यापन करता है, वह प्राणी पूर्ण फलको पा नहीं सकता। इसमें आप कुछ भी संदेह न करे ॥३॥

विस्तारे नवपद तणी, तिणे पूजा करो सुविवेक, मे०
धननो लाहो लीजिये, राखो महोटी टेक. मे० म० ४

अर्थ–इसलिये उत्तम विवेकपूर्वक नवपदजीकी विस्तारसे अर्थात् बड़े आडम्बरके साथ पूजा करे और धनप्राप्तिका लाभ उठाये। क्योंकि धन होते हुए भी कुछ भी खर्च किये बिना धर्म करनेकी इच्छा रखना सो महामोहनीयका उदय है। यों समझकर शक्तिके अनुसार प्राप्त लक्ष्मीका सद्व्यय करके उसका सच्चा फल प्राप्त करे और चित्तमें बड़ी टेक अर्थात् श्रद्धा रखे ॥४॥

मयणा वयणां मन धरी, गुरु भक्ति शक्ति अनुसार, मे०
अरिहंतादिक नवपद भलां, आराधे ते सार. मे० म० ५

अर्थ–ऐसे मयणासुंदरीके वचन मनमें धारण कर बड़ी भक्तिवाले श्रीपाल राजा अपनी शक्तिके अनुसार सुंदर अरिहंत आदि पदोंकी श्रेष्ठ आराधना करने लगे ॥५॥

नव जिनघर नव पडिमा भली, नव जीर्णोद्धार कराव, मे०
नानाविध पूजा करी, जिन आराधन शुभ भाव. मे० म० ६

अर्थ–(कैसे नवपदजीकी आराधना की उसका वर्णन करते हैं–) श्रीपाल राजाने नौ चैत्य कराये, उनमें नौ जिनप्रतिमायें बनवाई, नौ जिन-मंदिरोंका जीर्णोद्धार कराया और विविध प्रकारसे पूजा करके शुभभावसे अरिहंतपदकी आराधना की ॥६॥

एम सिद्धतणी प्रतिमातणुं, पूजन त्रिहु काल प्रणाम, मे०
तन्मय ध्याने सिद्धनुं, करे आराधन अभिराम. मे० म० ७

अर्थ–इसी प्रकार सिद्ध भगवंतकी त्रिकाल पूजा तथा प्रणाम करते हुए मन-वचन-कायाकी एकाग्रतापूर्वक सिद्धपदकी सुंदर आराधना की ॥७॥

आदर भक्ति नें वंदना, वैयावच्चादिक लग्ग, मे०
शुश्रूषाविधि साचवी, आराधे सूरि समग्ग. मे० म० ८

www.jaintatvagyanshala.org

अर्थ—आचार्यपदमें अंतरंग बहुमान, भक्ति, वंदन, वैयावृत्यमें सावधानी, सेवा-शुश्रूषा आदि सर्व विधिपूर्वक समग्र सूरिपदकी आराधना की ॥८॥

अध्यापक भणतां प्रति, वसनाशन ठाण बनाय, मे°
द्विविध भक्ति करतो थको, आराधे नृप उवज्झाय. मे° म° ९

अर्थ—पढ़ानेवाले उपाध्यायको वस्त्र, आहार, पानी और निवास आदि देकर द्रव्य और भाव इन दोनों प्रकारसे भक्तिपूर्वक श्रीपालराजाने उपाध्याय पदकी आराधना की ॥९॥

नमन वंदन अभिगमनथी, वसही अशनादिक दान, मे°
करतो वैयावच्च घणुं, आराधे मुनिपद ठाण. मे° म° १०

अर्थ—मुनिराजके सन्मुख जाकर नमस्कार, वंदना करते हुए तथा उन्हें आहार, पानी, निवासका दान करते हुए तथा अत्यंत वैयावृत्य करते हुए श्रीपालराजाने मुनिपदकी आराधना की ॥१०॥

तीर्थयात्रा करी अति घणी, संघपूजा ने रहजत्त, मे°
आराधे दर्शनपद भलुं, शासन उन्नति दृढ चित्त. मे° म° ११

अर्थ—तथा अनेकानेक तीर्थयात्राएँ कर संघपूजा, रथयात्रा आदि करके, शासनकी उन्नतिमें दृढ़ चित्तवाले श्रीपालराजाने दर्शनपदकी आराधना की ॥११॥

सिद्धान्त लिखावी तेहने, पालन अर्चादिक हेत, मे°
नाण पदाराधन करे, सज्झाय उचित मन देत. मे° म° १२

अर्थ—आगम लिखवाकर, उसकी रक्षा तथा पूजामें तत्पर तथा स्वाध्यायमें भी अपनी योग्यतानुसार मन लगाकर श्रीपालराजाने ज्ञानपदकी आराधना की ॥१२॥

व्रत नियमादिक पाळतो, विरतिनी भक्ति करंत, मे°
आराधे चारित्र धर्मने, रागी यतिधर्म एकंत. मे° म° १३

अर्थ—पाँच अणुव्रत तथा नियमोंके पालनपूर्वक, विरतिवान्(त्यागी)की भक्ति करते हुए संयममार्गमें एकान्त (परिपूर्ण) रागवाले श्रीपालराजाने चारित्रधर्मकी आराधना की ॥१३॥

तजी इच्छा इह परलोकनी, हुई सघळे अप्रतिबद्ध, मे°
षट् बाह्य अभ्यंतर षट् करी, आराधे तप पद शुद्ध. मे° म° १४

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—इहलोक तथा परलोकके सुखकी इच्छाका त्यागकर, सर्वत्र अप्रतिबद्धतासे रहकर छः प्रकारसे आभ्यंतर तप करके शुद्ध तपपदकी आराधना की ॥१४॥

उत्तम नवपद द्रव्यभावथी, शुभ भक्ति करी श्रीपाल, मे०
आराधे सिद्धचक्रने, नित्य पामे मंगलमाल. मे० म० १५

अर्थ—इस प्रकार श्रेष्ठ नवपदजीकी द्रव्य और भावसे शुभ भक्ति करके श्रीपालराजा सिद्धचक्रजीकी आराधना करता था और हंमेशा मांगलिककी मालाको प्राप्त करता था ॥१५॥

इम सिद्धचक्रनी सेवना, करे साडा चार ते वर्ष, मे०
हवे उजमणा विधि तणो, पूरे तप उपन्यो हर्ष. मे० म० १६

अर्थ—इस प्रकार साढ़े चार वर्ष तक उसने श्री सिद्धचक्रजीकी भक्ति की। फिर तप पूर्ण होनेके बाद हर्षपूर्वक उद्यापन-विधि की ॥१६॥

चोथे खंडे पूरी थई, ढाळ नवमी चढते रंग, मे०
विनय सुजस सुख ते लहे, सिद्धचक्र थुणे जे चंग. मे० म० १७

अर्थ—इस प्रकार यह चौथे खंडकी नौवीं ढाल पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि जो मनुष्य सिद्धचक्रकी सुंदर स्तवना करता है वह विनय और सुयशके सुखको प्राप्त करता है ॥१७॥

चतुर्थ खंडकी नौवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

हवे राजा निज राजनी, लच्छितणे अनुसार,
उजमणुं तेह तपतणुं, मांडे अतिहि उदार. १

अर्थ—अब श्रीपालराजा अपनी राज्यलक्ष्मीके अनुसार उस तपका उद्यापन अत्यंत उदारता पूर्वक शुरू करता है ॥१॥

ढाल दसवीं

(भोलीडा हंसा रे विषय न राचीए—ए देशी.)

विस्तीरण जिनभुवन विरचिये, पुण्य त्रिवेदिक पीठ,
चंद्र चंद्रिका रे धवल भुवन तले, नवरंग चित्र विसिठ्ठ. १

अर्थ—(अब उद्यापनकी विधि बताते हैं—) विशाल जिनचैत्यमें मानो पुण्यकी पीठिका हो वैसी तीन वेदिकाएँ बनानी चाहिये तथा चंद्र और उसकी

www.jaintatvagyanshala.org

ज्योत्स्नासे उज्ज्वल ऐसे जिनभुवनके तल (फर्श) पर नये फीके रंगोंसे अरिहंत आदि पदोंका विशिष्ट प्रकारसे चित्र बनाना चाहिये ॥१॥

तप उजमणुं रे इणि परे कीजिये, जिम विरचे रे श्रीपाळ,
तप फल वाधे रे उजमणे करी, जेम जल पंकज नाळ. तप० २

अर्थ—हे भव्य जीवों ! जैसे श्रीपाल राजाने तपका उद्यापन किया, उसी प्रकार हमें भी करना चाहिये। जैसे पानीसे कमलकी नाल वर्धमान होती है, वैसे ही उद्यापनसे तपका फल बढ़ता है ॥२॥

पंच वरणना रे शालि प्रमुख भला, मंत्र पवित्र करी धान्य,
सिद्धचक्रनी रे रचना तिहां करे, संपूरण शुभ ध्यान. तप० ३

अर्थ—अब पाँच वर्णवाले शालि (अक्षत) आदि सुंदर धान्योंको मंत्रसे पवित्र कर संपूर्ण शुभ ध्यानपूर्वक श्री सिद्धचक्रकी रचना करनी चाहिये ॥३॥

अरिहंतादिक नवपदने विषे, श्रीफल गोळ ठवंत,
सामान्ये घृत खांड सहित सवे, नृप मन अधिकी रे खंत. तप० ४

अर्थ—फिर अरिहंत आदि नवपदके स्थान पर सामान्यतया लोग घी-शक्करसे भरकर श्रीफलके गोले रखते हैं, परंतु श्रीपालराजाके चित्तमें अत्यंत उत्साह है ॥४॥

जिनपद धवलुं रे गोलक ते ठवे, शुचि कर्केतन अड्ड,
चोत्रीश हीरे रे सहित बिराजतुं, गिरुओ सुगुण गरिट्ठ. तप० ५

अर्थ—अत्यंत गुणवान श्रीपालराजा, श्री अरिहंत पद श्वेत है इसलिये, उन गोलोंको श्वेत चंदनसे रंगकर बारह गोलक रखता है तथा आठ प्रातिहार्योंके प्रतीकरूप आठ कर्केतन रत्न रखता है और भगवानके चौतीस अतिशय होते हैं इसलिये चौतीस हीरोंसे अरिहंत पदको सुशोभित करता है ॥५॥

सिद्धपदे अड माणिक रातडां, वळी इगतीस प्रवाल,
घृषण विलेपित गोलक तस ठवे, मूरति राग विशाल. तप० ६

अर्थ—फिर सिद्धपदमें लाल वर्णके आठ माणिक और इगतीस प्रवाल तथा लाल चंदनसे विलेपन किये हुए आठ गोलें अत्यंत प्रेमपूर्वक रखता है ॥६॥

पण मणि पीत छत्रीश गोमेदके, सूरिपदे ठवे गोल,
नीलरयण पचवीस पाठक पदे, ठवे विपुल रंगरोल. तप० ७

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ—फिर आचार्यपदमें पाँच पुष्कराज मणि, छत्तीस पीले वर्णके गोमेदक जातिके रत्न तथा छत्तीस गोले स्थापन करता है; तथा उपाध्याय पदमें पच्चीस नीले रत्न और अनेक रंगोंसे रंगित पच्चीस गोले रखता है ॥७॥

रिष्ट रतन सगवीस ते मुनिपदे, पंच राजपट अंक,
सगसट्ठि इगवन्न सित्तरी पंचास ते, मुगता शेष निःशंक. तप० ८

अर्थ—फिर मुनिपदमें सत्ताइस अरिष्ट रत्न तथा पाँच राजपट जातिके रत्न स्थापन करता है, तथा दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप पदमें अनुक्रमसे सडसठ, एक्यावन, सत्तर और पचास मोती तथा सात, पाँच, पाँच और बारह गोले निःशंकतासे अर्थात् श्रद्धापूर्वक स्थापन करता है ॥८॥

ते ते वरणे रे चीरादिक ठवे, नवपद तणे रे उद्देश,
बीजी पण सामग्री मोटकी, मांडे तेह नरेश. तप० ९

अर्थ—इसके अलावा नवपदजीके उद्यापनके लिये श्रीपालराजा नवपदके विशिष्ट वर्णोंके वस्त्र तथा 'आदि' शब्दसे चंद्रुएँ, फूल आदि अन्य भी कई प्रकारकी सामग्री रखता है ॥९॥

बीजोरां खारेक दाडिम भलां, कोहोलां सरस नारंग,
पूगीफल वळी कलश कंचन तणां, रतन पुंज अतिचंग. तप० १०

अर्थ—फिर उद्यापनमें नौ नौ बिजोरे, खारेक, सुंदर दाडिम, कद्दू, रसवाली नारंगी, सुपारी, सुवर्णकलश और अत्यंत मनोहर रत्नके ढग रखता है ॥१०॥

सारांश :— इस परसे तत्त्व यह ग्रहण करना है कि धर्मी पुरुष अपना सर्वस्व धर्मके चरणोंमें सौंप दे तो भी उसे कम ही लगता है।

जे जे ठामे रे जे ठववुं घटे, ते ते ठवे रे नरिंद,
ग्रह दिक्पाल पदे फळ फूलडां, धरे सवरण आनंद. तप० ११

अर्थ—इस प्रकार श्रीपालराजा जहाँ जहाँ जो जो रखने जैसा होता है वहाँ वहाँ वे वे वस्तुएँ रखता है तथा नवग्रह और दिक्पालके स्थान पर भी उस-उस वर्णके फल तथा फूल हर्षसहित रखता है ॥११॥

गुरु विस्तारे रे उजमणुं करी, न्हवण उत्सव करे राय,
आठ प्रकारी रे जिनपूजा करे, मंगल अवसर थाय. तप० १२

अर्थ—यों बड़े आडंबरके साथ श्रीपालराजा उद्यापन करके जिनेश्वर

www.jaintatvagyanshala.org

भगवानका स्नात्र-उत्सव कर अष्टप्रकारी पूजा करता है। फिर मांगलिक अवसर आता है ॥१२॥

संघ तिवारे रे तिलकमाळातणुं, मंगळ नृपने करेई,
श्री जिन माने रे संघे जे कर्युं, मंगल ते शिव देई. तप० १३

अर्थ—उस समय श्रीसंघ श्रीपालराजाको मांगलिक तिलक करके इंद्रमाला पहनाकर मंगल करता है, क्योंकि श्रीसंघ जो करता है उसे तीर्थंकर भगवान भी मान्य करते हैं और यह मंगलकार्य मोक्षदाता होता है ॥१३॥

तप उजमणे रे वीर्य उल्लास जे, तेहज मुक्ति निदान,
सर्व अभव्ये रे तप पूरा कर्या, पण नाव्युं प्रणिधान. तप० १४

अर्थ—मूल बात तो यह है कि तपके उद्यापनमें जो वीर्योल्लास होता है वही मोक्षका कारण है। वीर्यके उल्लासके बिना सभी अभव्य जीवोंने कई बार तप पूर्ण किये हैं किन्तु उसमें शुद्ध मन-वचन-कायाकी एकाग्रता न आयी ॥१४॥

विशेषार्थ—अब वीर्यके अभावको द्रव्य प्रत्याख्यानका कारण बताते हैं—

उदग्रवीर्यविरहात्, क्लिष्टकर्मोदयेन यत् ।
बाध्यते तदपि द्रव्य-प्रत्याख्यानं प्रकीर्तितम् ॥

उत्कृष्ट वीर्यके अभावसे तथा क्लिष्ट कर्मोंके उदयसे जिसे बाधा आती है उस प्रत्याख्यानको 'द्रव्य प्रत्याख्यान' कहा गया है।

वीर्यके उल्लाससे जीव क्लिष्ट कर्मोंका शमन करता है और वीर्यके अभावसे उसे कर्मोंका उदय होता है। अथवा क्लिष्ट कर्मके उदयसे होनेवाला वीर्यका अभाव उससे जीवके द्वारा जो प्रत्याख्यानको बाधा होती है वह 'द्रव्य प्रत्याख्यान' है ऐसा भी अर्थ होता है। यों वीर्याभावके प्रत्याख्यानको भी तत्त्ववेत्ताओंने द्रव्यप्रत्याख्यान कहा है। तात्पर्य यह है कि क्लिष्ट कर्मोंके उदयसे आत्मवीर्य उल्लसित नहीं होता, इससे प्रत्याख्यानमें जीवके अंतरंग भाव जागृत नहीं होते, अतः वह प्रत्याख्यान द्रव्य-प्रत्याख्यान होनेसे मोक्षका हेतु नहीं होता।

लघुकमळने रे किरिया फल दिये, सफल सुगुरु उवएस,
सेर होय तिहां कूप खनन घटे, नहि तो होई किलेश. तप०१५

अर्थ—लघुकर्मी आत्मा जो क्रिया करता है वह फलदायी होती है तथा उसीमें पात्रता होनेसे सद्गुरुका उपदेश भी सफल होता है। जहाँ भूगर्भमें

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

पानीका प्रवाह बहता हो वहाँ कूआँ खोदना उचित है; परंतु जहाँ पानीका प्रवाह ही न हो वहाँ कूआँ खोदना मात्र कायक्लेश ही है ।।१५।।

सफळ हुओ सवि नृप श्रीपाळने, द्रव्य भाव जस शुद्ध,
मत कोई राचो रे काचो मत लेई, साचो बिहुं नय बुद्ध. तप०१६

अर्थ—यह सारा उपदेश श्रीपालराजाको सफल हुआ, क्योंकि उसे द्रव्यसे और भावसे दोनों प्रकारकी शुद्धि थी। इसलिये हे भव्य प्राणी! अकेले द्रव्यमतको लेकर खुश मत होओ! अर्थात् द्रव्यसे शुद्ध क्रिया कर लेंगे ऐसा मानकर संतुष्ट मत हो जाओ! सचमुच! पंडित लोग, द्रव्य और भावसे शुद्ध हो ऐसे नयको सिद्ध करते हैं ।।१६।।

विस्तारार्थ:— व्यवहार धर्म वस्त्र जैसा है और निश्चयधर्म अलंकार जैसा है। यद्यपि अलंकार मूल्यवान है और शोभाको बढ़ानेवाले है, फिर भी वस्त्रकी आवश्यकता भी कम नहीं मान सकते। दोनों जरूरी है। उसी तरह व्यवहार और निश्चय दोनोंकी समन्वयपूर्वक साधना ही सिद्धिदायक है।

चोथे खंडे रे दशमी ढाळ ए, पूरण हुई सुप्रमाण,
श्री जिन विनय सुजस भक्ति करी, पग पग होय कल्याण. तप०१७

अर्थ—इस प्रकार चौथे खंडकी दशवीं ढाल सम्यक् प्रमाणोंके साथ पूर्ण हुई। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि जिनेश्वर भगवानके विनयसे सम्यक् यश प्राप्त होता है और भक्ति करनेसे कदम कदम पर कल्याण होता है।

चतुर्थ खंडकी दसवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

नमस्कार करे एहवा, हवे गंभीर उदार,
योगीसर पण जे सुणी, चमके हृदय मझार. १

अर्थ—अब श्रीपालराजा गंभीर और उदार वाणीसे श्री सिद्धचक्रजीको पूर्ण भक्तिसे नमस्कार करता है कि जिसे सुनकर योगी पुरुष भी हृदयमें चकित होते हैं—प्रभावित होते हैं ।।१।।

अथ श्री सिद्धचक्र नमस्कार (छप्पय छंद)

जो धुरि सिरि अरिहंत, मूल दृढ पीठ पईट्ठियो,
सिद्ध सूरि उवज्झाय साहु, चिहुं पास गरिट्ठिओ.

www.jaintatvagyanshala.org

दंसण नाण चरित्त तवही पडिसाहा सुंदरु,
तत्तख्खर सरवग्ग लद्धि, गुरु पयदल दुंबरु.
दिसिवाल जख्खजख्खिणी पमुह, सुर कुसुमेहि अलंकियो,
सो सिद्धचक्र गुरु कप्पतरु, अम्ह मनवंछिय फल दियो. २

अर्थ—(यहाँ कवि सिद्धचक्रजीको कल्पवृक्षकी उपमा देते हुए कहता है कि—) जो पहले पदमें श्री अरिहंत भगवान है वह सिद्धचक्ररूपी कल्पवृक्षकी मूल पीठिकाका दृढ स्थान है। तथा सिद्ध भगवान, आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान और साधु भगवान ये सभी उस कल्पवृक्षकी चारों ओरकी मुख्य शाखा समान है। तथा दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपरूपी सुंदर छोटी छोटी शाखा समान है। ॐ ह्रीं आदि तत्त्वाक्षर, अ आदि स्वर और व्यंजन आदि अक्षरोंका समूह तथा अट्ठाइस महालब्धियाँ, अष्ट महासिद्धि, नवनिधि आदि उस सिद्धचक्ररूपी वृक्षके पत्तोंका समूह है। दश दिक्पालदेव, नौ ग्रह, चौबीस यक्ष-यक्षिणियाँ आदि देवता रूपी पुष्पोंसे सुशोभित है। ऐसा यह सिद्धचक्रजी रूप महान कल्पवृक्ष हमारे मनोवांछित पूर्ण करो ॥२॥

नमस्कार कही उच्चरी, शक्रस्तव श्रीपाल,
नवपद स्तवन करे मुदा, स्वर पद वर्ण विशाल. ३

अर्थ—इस प्रकार नमस्कार कर 'नमुत्थुणं' का पाठ बोलकर श्रीपाल राजा हर्षपूर्वक उच्च स्वरसे अच्छे पदवाला और शुद्ध गुरु-लघु अक्षरोंके उच्चारपूर्वक विशाल स्तवनसे स्तुति करता है ॥३॥

मंगल तूर बजावते, नाचंते वर पात्र,
गायंते बहुविध धवल, बिरुद पठंते छात्र. ४

अर्थ—फिर मांगलिक वाद्य बजते हुए, उत्तम नाटकके पात्र नृत्य करते हुए, अनेक प्रकारके धवल गीत गवाते हुए, भाट-चारण विरुदावली (प्रशस्ति) बोलते हुए— ॥४॥

संघपूजा साहमिवछल, करी तेह नरनाथ,
शासन जैन प्रभावतो, मेले शिवपुर साथ. ५

अर्थ—वह श्रीपाल राजा श्री संघकी पूजा और साधर्मिक वात्सल्य करके जैनशासनकी प्रभावना करते हुए मोक्षमार्गका साथ प्राप्त करता है, अर्थात् मोक्षमार्गकी ओर आगेकूच करता है ॥५॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

पटदेवी परिवार अन्य, साथे अविहड राग,
आराधे सिद्धचक्रने, पामे भवजल ताग. ६

अर्थ—पट्टरानी श्री मयणासुंदरी तथा अन्य रानियाँ और अन्य परिवारके साथ श्रीपालराजा अविचल रागपूर्वक श्री सिद्धचक्रजीकी आराधना करता है और भवसमुद्र पार कर जाता है ।।६।।

त्रिभुवनपालादिक तनय, मयणादिक संयोग,
नव निरुपम गुणनिधि हुआ, भोगवतां सुख भोग. ७

अर्थ—विषयसुख भोगते हुए श्रीपालराजाको मयणासुंदरी आदिके संयोगसे निरुपम गुणके भंड़ार जैसे त्रिभुवनपाल आदि नौ पुत्र हुए ।।७।।

गय रह सहस ते नव हुआ, नव लख जच्च तुरंग,
पत्ति हुआ नव कोडि तस, राजनीति नवरंग. ८

अर्थ—फिर नौ हजार हाथी, नौ हजार रथ, नौ लाख जातिवंत घोड़े तथा नौ करोड़ सैनिक हुए। इस प्रकार उनकी चतुरंगी राजनीति नौ प्रकारकी हुई ।।८।।

राज निकंटक पालतां, नव शत वरस विलीन,
थापी तिहुअणपालने, नृप हुओ नवपद लीन. ९

अर्थ—इस प्रकार निष्कंटक अर्थात् शत्रु रहित राज्यका पालन करते हुए नौ सौ वर्ष व्यतीत हुए। उसके बाद मयणाके पुत्र त्रिभुवनपालको राजगद्दी पर बिठाकर श्रीपालराजा नवपदके ध्यानमें लीन हुए ।।९।।

ढाल ग्यारहवीं

(श्री सीमंधर साहेब आगे—ए देशी)

त्रीजे भव वर स्थानक तप करी, जेणे बांध्युं जिन नाम,
चोसठ इंद्रे पूजित जे जिन, कीजे तास प्रणाम रे,
भविका! सिद्धचक्र पद वंदो, जिम चिरकाले नंदो रे.भ०सि०१

अर्थ—(अब पाँच गाथासे अरिहंतपदकी स्तुति करता है—) जिन्होंने पहलेके तीसरे भवमें श्रेष्ठ (बीस) स्थानकका तप करके तीर्थंकरनामकर्मका बंध किया था और जो चौसठ इंद्रों द्वारा पूजे जाते हैं उन जिनेश्वर भगवंतको हे भव्यों! तुम प्रणाम करो और सिद्धचक्रजीको नमस्कार करो कि जिससे लंबे समय तक आनंदकी प्राप्ति होती रहे ।।१।।

www.jaintatvagyanshala.org

जेहने होय कल्याणक दिवसे, नरके पण अजुवालुं,
सकल अधिक गुण अतिशय धारी, ते जिन नमी अघ टालुं रे. भ०सि०२

अर्थ—जिनके च्यवन आदि पाँच कल्याणकोंके दिनको नारकियोंमें (नरकमें) भी उजाला (प्रकाश) होता है तथा जो सर्व गुणोंमें श्रेष्ठ ऐसे चौंतीस अतिशयोंके धारी है, उन जिनेश्वर भगवानको नमस्कार करके मैं पापका नाश करता हूँ अर्थात् उनको नमस्कार करनेसे पाप क्षय होते हैं ॥२॥

जे तिहुं नाण समग्ग उपन्ना, भोग करम खिण जाणी,
लेई दीक्षा शिक्षा दिये जनने, ते नमिये जिन नाणी रे.भ०सि०३

अर्थ—जो तीन ज्ञान सहित उत्पन्न हुए हैं अर्थात् तीर्थंकर भगवानको जन्मसे ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान नियमसे होते हैं; तथा उस ज्ञानसे भोगकर्म क्षीण जानकर जो दीक्षा अंगीकार करके केवलज्ञानको प्राप्त करके भव्य जीवोंको उपदेश देते हैं उन केवलज्ञानी जिनेश्वर भगवानको नमस्कार करो ॥३॥

महागोप महामाहण कहिये, निर्यामक सत्थवाह,
उपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमिये उच्छाह रे.भ०सि०४

अर्थ—जो भगवान गोपालक(ग्वाला)की तरह प्राणियोंकी रक्षा करनेसे महागोप कहलाते हैं, करुणासे त्रिलोकमें अहिंसाका अमारि पटह बजवानेसे महामाहण कहलाते हैं, भवरूपी समुद्रमें भूले पड़े हुए प्राणियोंको नाविककी तरह मोक्षनगर पहुँचानेवाले होनेसे निर्यामक है तथा संसाररूपी वनमें भटकते प्राणियोंको सही रास्ते पर ले जानेवाले होनेसे सार्थवाह है—ये इत्यादि अनेक उपमाएँ जिन्हें शोभित होती है, घटित होती है उन जिनेश्वर भगवंतको उत्साहपूर्वक नमस्कार करो ॥४॥

आठ प्रातिहारज जस छाजे, पांत्रीश गुणयुत वाणी,
जे प्रतिबोध करे जगजनने, ते जिन नमिये प्राणी रे.भ०सि०५

अर्थ—जिन भगवानको अशोकवृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य शोभा दे रहे हैं, जिनकी वाणी पैंतीस गुणोंसे युक्त है और जो जगतके प्राणियोंको यथार्थ तत्त्वका उपदेश देते हैं उन जिनेश्वर भगवानको हे प्राणियों! तुम नमस्कार करो ॥५॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

समय पएसंतर अणफरसी, चरम तिभाग विशेष,
अवगाहन लही जे शिव पहोता, सिद्ध नमो ते अशेष रे.भ०सि०६

अर्थ–(अब पाँच गाथासे सिद्ध भगवानकी स्तुति करता है–) जो दूसरे समयका स्पर्श किये बिना अर्थात् उसी समयमें (एक ही समयमें) निर्वाणमें पहुँचे हैं और जिन्होंने दूसरे आकाशप्रदेशका भी स्पर्श नहीं किया है, अर्थात् कर्मरहित होकर मध्यके आकाशप्रदेशका स्पर्श किये बिना शरीरके २/३ (दो तृतीयांश) भागकी अवगाहना लेकर मोक्ष गये हैं उन सर्व सिद्ध भगवंतोंको नमस्कार करो ॥६॥

पूर्वप्रयोग ने गति परिणामे, बंधन छेद असंग,
समय एक ऊर्ध्व गति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो रंग रे.भ०सि०७

अर्थ–जो पूर्व प्रयोगसे (पूर्व अभ्यासके संस्कारसे), जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेसे, शरीररूपी बंधनका छेद होनेसे तथा कर्मरूपी संगसे रहित होनेसे, एक समयमें ही जिनकी ऊर्ध्वगति होती है उन सिद्ध भगवंतोंको उत्साहपूर्वक नमस्कार करो ॥७॥

विशेषार्थ :–सिद्धगतिमें जानेके चार दृष्टातोंको समझाते हैं–

(१) पूर्वप्रयोग–जैसे धनुष्यसे बाण छोड़ते हैं वह पूर्वप्रयोगसे ऊँचे जाता है, वैसे ही आत्मा १५८ कर्मकी प्रकृतिका क्षय होनेसे पूर्वप्रेरणासे ऊँचे जाता है।

(२) गतिपरिणाम–जैसे अग्निमेंसे धूम निकलकर स्वभावसे ऊर्ध्वगति करता है वैसे ही आत्मा कर्मसे छूटते ही ऊर्ध्वगमन करता है।

(३) बंधनछेद–जैसे एरंड वृक्षका फल पकता है तब गर्मीसे सूख कर फटता है तब उसका बीज ऊपरकी ओर उछलता है वैसे ही आत्मा कर्मबंधनसे मुक्त होने पर ऊपर जाता है।

(४) असंग–जैसे कुंभकार प्रथम वेगसे चक्रको दंड़से घुमाता है, फिर छोड़ देनेपर वह अपने आप घूमता रहता है वैसे ही आत्मा कर्मसंगसे रहित होनेसे स्वभावसे ऊर्ध्वगति करता है।

निर्मळ सिद्धशिलानी उपरे, जोयण एक लोगंत,
सादि अनंत तिहां स्थिति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो संत रे.भ०सि०८

अर्थ–स्फटिक रत्न जैसी निर्मल सिद्धशिलाके ऊपर एक योजनके अंतिम भागमें लोकके अंतमें (लोकाग्रे) जो सिद्ध भगवंत सादि अनंतकाल

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तक रहनेवाले हैं उन सिद्ध परमात्माओंको हे सज्जन पुरुषों! तुम प्रणाम करो ॥८॥

जाणे पण न शके कही पुरगुण, प्राकृत तिम गुण जास,
उपमा विण नाणी भवमांहे, ते सिद्ध दियो उल्लास रे.भ०सि०९

अर्थ—जैसे भील नगरके गुणोंको जानता है परंतु (उपमाके अभावसे) कह नहीं सकता, वैसे ही केवली भगवान भी सिद्ध भगवानके गुणोंके (सुखको) जानते हुए भी संसारमें वैसी कोई उपमा न होनेसे कह नहीं सकते। ऐसे सिद्ध भगवंत हमें उल्लास देओ ॥९॥

दृष्टांत :— कोई एक राजा एक बार वक्र शिक्षावाले अश्व पर असवार होकर घूमने निकला। रुकनेके लिये ज्यों-ज्यों राजा लगाम खींचता था त्यों-त्यों वह अश्व ज्यादा तेजीसे दौड़ता था (क्योंकि उसे उलटी शिक्षा दी गयी थी) यों दौड़ते-दौड़ते वह भयानक जंगलमें पहुँच गया। अंतमें राजा थकनेसे लगाम ढीली हो जानेसे अश्व खड़ा रहा। राजा नीचे उतरकर एक पेड़की छायामें बैठा। उसे भयंकर प्यास लगी थी। इतनेमें वहाँ एक भील आया। राजाने हाथकी संज्ञासे (इशारेसे) पानी माँगा तब भीलने पानी ला दिया और राजाने पानी पिया। इससे उसके प्राण बच गये और वह बहुत खुशी हुआ। इतनेमें राजाका सैन्य ढूँढ़ते ढूँढ़ते अश्वके पैरकी निशानीसे वहाँ आ गया और राजाको देखकर सब बहुत हर्षित हुए। फिर राजाके लिये लाई हुई भोजन सामग्री राजाके आगे रखी। राजाने उसमेंसे भीलको खिलाया और अपने साथ उसे नगरमें ले आया। वहाँ उसे एक महलमें रखा, उसके पास सेवाके लिये अनेक नौकर-चाकर रखे और अनेक प्रकारकी रसवती पक्वान्न आदि खिलाये, विविध वस्त्राभूषण पहननेको दिये। भील वहाँ खान-पान आदि अनेक प्रकारके सुखका उपभोग करता था और महलके झरोखेसे नगरचर्या देखता था। इतनेमें वर्षाऋतु आयी। बारिश होनेसे मोर चारों ओर पिहकने लगे और नाचने लगे। यह देखकर भीलको अपना घर याद आया और राजाकी अनुमति लेकर अपने घर गया। वहाँ उसके पड़ौसी तथा स्वजन मिलकर उससे पूछने लगे कि तू वहाँ क्या खाता था और क्या देखता था? तब भील क्या वर्णन करेगा? वह शहरकी एक भी चीजका वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वहाँ जंगलमें ऐसी कोई खानेकी या देखनेकी चीज नहीं है इसलिये वह किसकी उपमा दे? इसी प्रकार केवली भगवान भी मोक्षके अनुपम सुखको देख सकते हैं परंतु संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिसे मोक्षसुखकी उपमा दी जा सके। संसारमें (चारों गतिमें) जीवने जो सुख माना है वह है

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

इंद्रियसुख–पाँच इंद्रियोंके विषयोंसे प्राप्त होनेवाला सुख। मोक्षमें इंद्रियाँ (शरीर) तो है नहीं, वहाँ अतीन्द्रिय (इंद्रियोंसे अतीत, इंद्रियोंके बिना प्राप्त होनेवाला) सुख है–आत्मिक सुख है। दोनों सुखोंकी जाति ही अलग है तो उनकी तुलना कैसे हो सकती है? इसलिये मोक्षसुख अवर्णनीय है।

ज्योतिशुं ज्योति मिली जस अनुपम, विरमी सकल उपाधि,
आतमराम रमापति समरो, ते सिद्ध सहज समाधि रे.भ०सि०१०

अर्थ–जैसे ज्योतिमें ज्योति मिल जाती है अर्थात् एकदीपकके प्रकाशमें अन्य लाखों दीपकोंका प्रकाश मिल जाता है, उसी तरह सिद्ध भगवानकी अनुपम अवगाहना (सर्व शरीर रहित, कर्मसे भी रहित, जिसमें केवल आत्माके प्रदेश ही होते हैं जो अरूपी है) के क्षेत्रमें अन्य अनंत सिद्ध भी रहे हुए हैं। ऐसी अवगाहनावाले, सर्व उपाधिसे विराम पाये हुए, आत्माकी ज्ञानादि लक्ष्मीके स्वामी और स्वाभाविक समाधिवाले सिद्ध भगवंतोंको नमस्कार करो ॥१०॥

पंच आचार जे सुधा पाले, मारग भाखे साचो,
ते आचारज नमिये तेहशुं, प्रेम करीने जाचो रे.भ०सि०११

अर्थ–(अब पाँच गाथासे आचार्य भगवंतकी स्तुति करते हैं–) जो ज्ञानाचार आदि पाँच प्रकारके आचारका अच्छी तरहसे पालन करते हैं, जो सत्य मार्ग बताते हैं, उन आचार्य भगवंतके साथ सच्चा धर्मप्रेम करके उन्हें प्रणाम करो ॥११॥

वर छत्रीश गुणे करी सोहे, युगप्रधान जन मोहे,
जग बोहे न रहे खिण कोहे, सूरि नमुं ते जोहे रे. भ०सि०१२

अर्थ–जो श्रेष्ठ छत्तीस गुणोंसे शोभित है, जो युगप्रधान है, जो जगतके जीवोंको आश्चर्यचकित करते हैं, सब जीवोंको प्रतिबुद्ध करते हैं, और क्षणभरके लिये भी क्रोध नहीं करते, उन आचार्य भगवंतको परीक्षा करके मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

नित्य अप्रमत्त धर्म उवएसे, नहि विकथा न कषाय,
जेहने ते आचारज नमिये, अकलुष अमल अमाय रे. भ०सि०१३

अर्थ–जो हमेशा अप्रमादपूर्वक धर्मका उपदेश देते हैं, जो राजकथा, देशकथा, भोजनकथा और स्त्रीकथारूप चार प्रकारकी विकथा नहीं करते, तथा जिन्हें क्रोध आदि कषायोंका भी उदय नहीं होता, जो कलुषित भावसे

www.jaintatvagyanshala.org

रहित है, श्रद्धाकी मलिनतासे रहित है और कपटभावसे भी रहित है, उन आचार्य भगवंतोंको नमस्कार करिये ॥१३॥

जे दिये सारण वारण चोयण, पडिचोयण वळी जनने,
पटधारी गच्छ थंभ आचारज, ते मान्या मुनि मनने रे. भ०सि०१४

अर्थ—जो मुनियोंको सारणा, वारणा, चोयणा, और पडिचोयणा देते हैं तथा परंपराकी पाटको धारण करनेवाले और गच्छके स्तंभरूप (आधार) है, ऐसे आचार्य भगवंत मुनियोंके मनमें विशेषरूपसे मान्य होते हैं ॥१४॥

विस्तारार्थ :— सारणा आदिके अर्थ इस प्रकार हैं—

सारणा—साधुक्रियामें तत्पर साधुओंको भूल होने पर फिर याद दिलाना।

वारणा—साधुओंको अनुचित क्रिया करनेसे रोकना।

चोयणा—साधुओंको सही क्रियामें तत्पर बनाना।

पडिचोयणा—प्रमाद करते साधुओंको कठोर शब्दसे विशेष प्रेरणा करना।

अत्थमिये जिन सूरज केवल,—चंदे जे जगदीवो,
भुवन पदारथ प्रगटन पटु ते, आचारज चिरंजीवो रे. भ०सि०१५

अर्थ—तीर्थंकर भगवानरूपी सूर्य और केवलज्ञानरूपी चंद्र अस्त हो जाने पर जो जगतमें दीपकके समान प्रकाश करनेवाले हैं और तीन भुवनके पदार्थोंको प्रकट करनेमें चतुर है, ऐसे आचार्य भगवान चिरकाल तक जयवान होओ ॥१५॥

द्वादश अंग सज्झाय करे जे, पारग धारक तास,
सूत्र अरथ विस्तार रसिक ते, नमो उवज्झाय उल्लास रे. भ०सि०१६

अर्थ—(अब पाँच गाथासे उपाध्याय भगवानकी स्तुति करते हैं—) जो बारह अंगका स्वाध्याय करते हैं, और जो उसके पारगामी (पारको पाये हुए) है तथा उन अंगोंके रहस्यको धारण करनेवाले हैं, फिर जो आगमसूत्र तथा उनके अर्थका विस्तार करनेमें रसवाले (रुचिवाले) हैं, उन उपाध्याय भगवानको उल्लासपूर्वक नमस्कार करो ॥१६॥

अर्थ सूत्रने दान विभागे, आचारज उवज्झाय,
भव [1]त्रण्ये लहे जे शिव संपद, नमिये ते सुपसाय रे. भ०सि०१७

---

१. पाठांतर—त्रीजे (किन्तु अर्थकी दृष्टिसे 'त्रण्ये' पाठ ज्यादा जमता है।)

अर्थ—अर्थ और सूत्र दान करनेके विभागसे आचार्य और उपाध्यायमें अंतर है, अर्थात् उपाध्याय भगवंत सूत्र पढ़ाते हैं और आचार्य भगवंत अर्थ पढ़ाते हैं; तथा जो 'तीन भवमें (उसी भवमें या तीसरे भवमें) मोक्षसंपत्तिको प्राप्त करनेवाले हैं, उन आचार्य भगवंतको चित्तकी प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार करो ।।१७।।

मूरख शिष्य निपाई जे प्रभु, पहाणने पल्लव आणे,
ते उवज्झाय सकल जन पूजित, सूत्र अरथ सवि जाणे रे. भ०सि०१८

अर्थ—जो उपाध्याय भगवान मूर्ख शिष्यको भी पंडित (विद्वान) बना देते हैं, अर्थात् मानो पत्थरको भी अंकुरसे नवपल्लवित करते हैं, ऐसे उपाध्याय प्रभु सब लोगों द्वारा पूजे जाते हैं और सारे सूत्र तथा अर्थ (रहस्य) जानते हैं ।।१८।।

राजकुंवर सरीखा गणचिंतक, आचारिजपद जोग,
जे उवज्झाय सदा ते नमतां, नावे भव भय शोग रे. भ०सि०१९

अर्थ—जैसे राजाकी अनुपस्थितिमें राजकुमार राज्यको सँभालता है, वैसे ही तीर्थंकर प्रभुके अभावमें गच्छकी चिंता करनेवाले उपाध्याय भगवंत है। ये उपाध्याय भगवंत आचार्यपदकी योग्यता धारण करनेवाले होते हैं। ऐसे उपाध्यायको नमस्कार करनेसे जीवको संसारके भयका शोक स्पर्श नहीं करता ।।१९।।

बावना चंदन रस सम वयणे, अहित ताप सवि टाळे,
ते उवज्झाय नमीजे जे वळी, जिनशासन अजुआले रे.भ०सि०२०

अर्थ—जैसे बावनाचंदनका रस तापको दूर करता है, वैसे ही जो उपाध्याय भगवान बावनाचंदनके रस जैसे शीतल-सौम्य वचनोंसे अहित करनेवाले मिथ्यात्व आदि सभी तापको दूर करते हैं, तथा जो जैनशासनको रोशन करते हैं उन उपाध्याय भगवानको नमस्कार करो ।।२०।।

जिम तरुफूले भमरो बेसे, पीडा तस न उपावे,
लेई रस आतम संतोषे, तिम मुनि गोचरी जावे रे.भ०सि०२१

अर्थ—(अब पाँच गाथासे साधु भगवानकी स्तुति करते हैं—) जैसे भ्रमर सुगंधी वृक्षके फूलोंपर बैठता है और उसमेंसे थोड़ा रस लेकर अपने आत्माको संतुष्ट करता है परंतु उन फूलोंको दुःख नहीं देता अर्थात् सारा रस चूसकर उन्हें सुखा नहीं देता; वैसे ही मुनिराज भी अलग-अलग घरोंसे थोड़ा थोड़ा

www.jaintatvagyanshala.org

आहार लेते हैं, परंतु एक घरसे इतना नहीं ले लेते कि उन्हें वापस रसोई करनी पड़े। इस प्रकार मुनि गोचरीके लिये घूमते हैं ॥२१॥

विशेषार्थ : गोचरीका अर्थ होता है गायकी चरनेकी क्रिया। गाय चरते समय ऊपर ऊपरसे घास खाती है, किन्तु घासको मूलसे नहीं खा जाती, जिससे वही घास वर्षाका योग होने पर पुनः उगती है। उसी प्रकार मुनि विभिन्न घरोंसे थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण करते हैं ताकि किसी गृहस्थको अंतराय न हो अर्थात् उसे भूखा न रहना पड़े या वापस रसोई न करना पड़े। अगर उसे भूखा रहना पड़े तो भी मुनिको पाप लगता है और वापस रसोई करना पड़े तो अग्निकाय वगेरेके आरंभका पाप भी मुनिको लगता है।

पंच इंद्रिय ने कषाय निरूंधे, षट्कायक प्रतिपाल,
संयम सत्तर प्रकारे आराधे, वंदो तेह दयाल रे. भ०सि०२२

अर्थ—जो पाँच इंद्रियाँ और क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायोंको रोकते हैं, जो छकाय-जीवकी रक्षा करते हैं तथा जो सत्रह प्रकारसे संयमकी आराधना करते हैं, उन दयालु मुनिराजको मैं वंदना करता हूँ ॥२२॥

अढार सहस शीलांगना धोरी, अचल आचार चरित्र,
मुनि महंत जयणायुत वंदी, कीजे जन्म पवित्र रे. भ०सि०२३

अर्थ—जो अढ़ार हजार शीलांगरथको वहन करते हैं अर्थात् शीलके १८००० भंगोंका पालन करते हैं, जो अचलायमान आचाररूप चारित्रका पालन करते हैं, जो महान और यत्नाधर्मसे युक्त है, उन मुनिराजोंकी वंदना कर जन्म पवित्र करो ॥२३॥

नवविध ब्रह्म गुप्ति जे पाळे, बारसविह तप शूरा,
एहवा मुनि नमिये जो प्रगटे, पूरव पुण्य अंकूरा रे. भ०सि०२४

अर्थ—जो नौ प्रकारसे ब्रह्मचर्यकी गुप्तिका पालन करते हैं, बारह प्रकारके तपके पालनमें शूरवीर हैं, ऐसे मुनि भगवंतको नमस्कार करो; क्योंकि पूर्व जन्मके पुण्यके अंकुर प्रकट हो तभी ऐसे मुनिराजका योग होता है ॥२४॥

सोनातणी परे परीक्षा दीसे, दिन दिन चढते वाने,
संयम खप करता मुनि नमिये, देश काल अनुमाने रे. भ०सि०२५

अर्थ—जिनकी सुवर्णकी तरह कष्ट, छेद, ताप और ताडन—इन चार

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

प्रकारसे परीक्षा की जाती है, फिर भी उनका वर्ण (रूप) दिनोंदिन वृद्धिंगत होता है तथा देश और कालके अनुरूप जो संयमका पालन करनेवाले हैं, उन मुनिराजको वंदना करो ॥२५॥

शुद्ध देव-गुरु-धर्म परीक्षा, सद्दहणा परिणाम,
जेह पामीजे तेह नमीजे, सम्यग दर्शन नाम रे. भ०सि०२६

अर्थ–(अब पाँच गाथासे दर्शनपदका स्वरूप कहते हैं–) अठारह दोषसे रहित सद्‌देव, पंचमहाव्रतधारी सद्‌गुरु और सद्‌धर्मकी परीक्षापूर्वक श्रद्धाके परिणाम जिससे प्राप्त होते हैं वह सम्यग्दर्शन कहलाता है। ऐसे सम्यग्दर्शनको नमस्कार करो ॥२६॥

मल उपशम क्षय उपशम क्षयथी, जे होय त्रिविध अभंग,
सम्यग्‌दर्शन तेह नमीजे, जिनधर्मे दृढ रंग रे. भ०सि०२७

अर्थ–दर्शनसप्तक (चार अनंतानुबंधी कषाय, समकितमोहनीय, मिश्र-मोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय ये सात) रूपी कर्ममलके उपशम होनेसे उपशम समकित, इनका क्षयोपशम करनेसे क्षयोपशम समकित, और मूलसे क्षय करनेसे क्षायिक समकित होता है। इन तीन प्रकारके अभंग समकितको नमस्कार करो कि जिससे जैनधर्ममें अविचल श्रद्धा प्राप्त होती है ॥२७॥

पंच वार उपशमिय लहीजे, खय उपशमिय असंख,
एक वार क्षायिक ते समकित, दर्शन नमिये असंख रे. भ०सि०२८

अर्थ–संपूर्ण संसारचक्रमें एक जीवको उपशम समकित ज्यादासे ज्यादा पाँच बार प्राप्त होता है, क्षयोपशम समकित असंख्यात बार प्राप्त होता है और क्षायिक समकित एक ही बार प्राप्त होता है, उस सम्यक्‌दर्शनके असंख्य स्थानकोंको नमस्कार करते हैं ॥२८॥

विस्तारार्थ–एक बार समकितकी स्पर्शना हो गयी उसका भव-परिभ्रमण अर्धपुद्‌गल-परावर्तन तक सीमित हो जाता है। उपशम और क्षयोपशम समकितमें कुछ कर्म प्रकृतियाँ उपशांत हुई है अतः जैसे मैले पानीमें कतकफल डालनेसे कचरा नीचे जम जाता है मगर हिलानेसे वापस ऊपर आ जाता है, उसी तरह सुषुप्त कर्मप्रकृतियाँ जगनेसे वापस मिथ्यात्वका उदय हो जाता है अर्थात् समकितका वमन हो जाता है। परंतु क्षायिकसमकितमें इन प्रकृतियोंका जड़-मूलसे नाश हो गया है अतः उसका वमन नहीं हो सकता, और क्षायिक सम्यग्दृष्टि उसी भवमें और देवगतिका बंध हो गया हो तो

www.jaintatvagyanshala.org

तीसरे भवमें और युगलिककी आयुष्यका बंध हो गया हो तो चौथे भवमें नियमसे मोक्षमें जाता है।

जे विण नाण प्रमाण न होये, चारित्र तरु नवि फलियो,
सुख निर्वाण न जे विण लहिये, समकित दर्शन बलियो रे. भ०सि०२९

अर्थ—जिस समकितकी प्राप्तिके बिना ज्ञान यथार्थ (विश्वासपात्र, प्रमाणभूत) नहीं होता और चारित्ररूपी वृक्ष भी फलवान नहीं होता, तथा जिसके बिना मोक्षसुख प्राप्त नहीं किया जा सकता—इसलिये सम्यक्‌दर्शन अत्यंत बलवान है ।।२९।।

विशेषार्थ—समकितके बिना ज्ञान अज्ञान है और चारित्र कुचारित्र (द्रव्य-लिंगीपना) है। "रुचि अनुयायी वीर्य चरणधारा सधे" ऐसा श्री देवचंद्रजीने स्तवनमें कहा है तदनुसार श्रद्धाके अनुसार ही जीवका वर्तन होता है। समकितसे आत्मसुखकी श्रद्धा आती है और आत्मा ही सुखका घर है यह श्रद्धा होनेके बाद उसका चारित्र (वर्तन) आत्मसुखकी प्राप्तिके लिये ही होगा।

सडसठ्ठ बोले जे अलंकरियुं, ज्ञान चारित्रनुं मूल,
समकित दर्शन ते नित्य प्रणमुं, शिवपंथनुं अनुकूल रे.भ०सि०३०

अर्थ—जो समकित सड़सठ बोलोंसे (नामोंसे) अलंकृत है, जो ज्ञान और चारित्रका मूल है, (अर्थात् सम्यक्‌दर्शन होनेके बाद ही सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रकी उत्पत्ति होती है) और जिससे मोक्षमार्गमें गमन करनेमें अनुकूलता—सहायता मिलती है उस समकितको मैं हंमेशा प्रणाम करता हूँ ।।३०।।

भक्ष अभक्ष न जे विण लहिये, पेय अपेय विचार,
कृत्य अकृत्य न जे विण लहिये, ज्ञान ते सकल आधार रे. भ०सि०३१

अर्थ—(अब पाँच गाथासे ज्ञानपदका स्वरूप कहते हैं—) जिस ज्ञानके बिना निर्दोष भक्ष्य वस्तुका और अनंतकाय, बाईस अभक्ष्य आदिका विचार जाना नहीं जाता, पेय और अपेय संबंधी ज्ञान नहीं होता और कृत्य-अकृत्य (आचरण करने योग्य और त्याग करने योग्य) का स्वरूप समझा नहीं जाता, वह ज्ञान ही सब चीजोंका आधार है, इसलिये उस ज्ञानको नमस्कार करो ।।३१।।

प्रथम ज्ञान ने पछी अहिंसा, श्री सिद्धांते भाख्युं,
ज्ञानने वंदो ज्ञान म निंदो, ज्ञानीए शिवसुख चाख्युं रे. भ०सि०३२

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थ–ज्ञान और अहिंसामें प्रथम ज्ञान है और फिर अहिंसा है, क्योंकि ज्ञानसे ही अहिंसाका स्वरूप समझमें आता है–इस प्रकार शास्त्रमें कहा है, इसलिये ज्ञानकी निंदा न करो, बल्कि ज्ञानको नमस्कार करो क्योंकि ज्ञानीने ही शिवसुखका आस्वाद किया है ॥३२॥

विशेषार्थ :– पंच महाव्रतमें प्राणातिपात-विरतिरूप अहिंसा मुख्य है और जैनधर्ममें सबसे ज्यादा महत्त्व अहिंसाको दिया गया है–अहिंसा परमो धर्म। मगर ऐसी अहिंसाका स्वरूप समझनेके लिये ज्ञानकी अत्यंत आवश्यकता है। समझे बिना अहिंसा करते हुए हिंसा भी हो जाती है।

सुखका मूल भी ज्ञान है। जो ज्ञानमें मग्न है वही मोक्षसुखका स्वाद चखता है। यह श्लोक इस बातकी साक्षी देता है–

मज्जत्यज्ञः किलाज्ञाने विष्टायामिव शूकरः ।
ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने मराल इव मानसे ॥

अर्थ–जैसे सुअर विष्टामें मग्न होता है वैसे ही अज्ञानी सचमुच अज्ञानमें ही लीन रहते हैं। जैसे राजहंस मानसरोवरमें मग्न रहता है वैसे ही ज्ञानी ज्ञानमें अत्यंत मग्न रहते हैं।

सकल क्रियानुं मूल ते श्रद्धा, तेहनुं मूल जे कहीए,
तेह ज्ञान नितनित वंदीजे, ते विण कहो किम रहीए रे. भ०सि०३३

अर्थ–सर्व क्रियाका मूल श्रद्धा है और उस श्रद्धाका मूल जो कहा जाता है वह ज्ञान है। (सही जाने बिना सही श्रद्धा नहीं हो सकती) ऐसे ज्ञानको हमेशा वंदना करो। ऐसे ज्ञानके बिना कैसा चल सकता है? ॥३३॥

पंच ज्ञानमांहे जेह सदागम, स्वपर प्रकाशक जेह,
दीपक परे त्रिभुवन उपगारी, वळी जिम रवि शशि मेह रे. भ०सि०३४

अर्थ–पाँच प्रकारके ज्ञानमें जो श्रुतज्ञान है वह स्वमत और परमत दोनोंको प्रकाशित करता है तथा जो दीपककी तरह उपकारी है और जो चंद्र, सूर्य और मेघकी तरह त्रिभुवनके उपकारी है तथा प्रत्युपकारकी वांछामात्र नहीं रखता ॥३४॥

लोक ऊरध अधो तिर्यग् ज्योतिष, वैमानिक ने सिद्ध,
लोक अलोक प्रगट सवि जेहथी, ते ज्ञाने मुज शुद्धि रे. भ०सि०३५

अर्थ–ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्च्छालोक (मध्यलोक) तथा ज्योतिषी देवोंके विमान, वैमानिक देवोंके विमान तथा सिद्धशिला–यह पूरा चौदह

www.jaintatvagyanshala.org

राजलोक तथा सारा अलोक जिससे प्रकट होता है, उस ज्ञानसे मेरी भी शुद्धि होओ ॥३५॥

देशविरति ने सर्वविरति जे, गृही यतिने अभिराम,
ते चारित्र जगत जयवंतुं, कीजे तास प्रणाम रे. भ०सि०३६

अर्थ–(अब पाँच गाथासे चारित्रपदका स्वरूप कहते हैं–) गृहस्थके लिये देशविरति और यतिके लिये सर्वविरतिरूप चारित्र घटित होता है। यह दो प्रकारका चारित्र जगतमें जयवंत है, इसलिये इस चारित्र धर्मको प्रणाम करो ॥३६॥

तृणपरे जे षट्खंड सुख छंडी, चक्रवर्ती पण वरियो,
ते चारित्र अक्षय सुखकारण, ते में मनमांहे धरियो रे. भ०सि०३७

अर्थ–चक्रवर्ती मनुष्य भी छः खंडके सुखोंको घास (तृण) की तरह छोड़कर जिस चारित्रको अंगीकार करते हैं वह चारित्र अक्षय मोक्षसुखका कारण है और इसीलिये मैंने उसे मनमें धारण किया है ॥३७॥

हुआ रांक पण जेह आदरी, पूजित इंद नरिंदे,
अशरण शरण चरण ते वंदुं, पूर्युं ज्ञान आनंदे रे. भ०सि०३८

अर्थ–जिस चारित्रको स्वीकार करनेसे रंक जैसे मनुष्य भी इंद्रों तथा राजाओंके लिये पूजनीय हो जाते हैं, तथा जो संसारमें अशरण मनुष्योंके लिये शरण-रूप है, ऐसे ज्ञानके आनंदसे पूरित (भरे हुए) चारित्रको मैं वंदन करता हूँ ॥३८॥

बार मास पर्याये जेहने, अनुत्तर सुख अतिक्रमिये,
शुक्ल शुक्ल अभिजात्य ते उपरे, ते चारित्रने नमिये रे. भ०सि०३९

अर्थ–एक वर्षके पर्यायवाले संयमी मनुष्य अनुत्तर देवके सुखको भी कूद जाते हैं (अतिक्रमण करते हैं) अर्थात् एक वर्षके शुद्ध चारित्रवाले मुनिको स्वरूप रमणतासे जो सुखका अनुभव होता है वह अनुत्तर देवके सुखसे बढ़ जाता है; और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे वैसे उज्ज्वल उज्ज्वल परिणामसे योगकी तरतमतासे आत्मसुख बढ़ता ही जाता है–ऐसे चारित्रपदको नमस्कार करो ॥३९॥

चय ते आठ कर्मनो संचय, रिक्त करे जे तेह,
चारित्र नाम निरुत्ते भाख्युं, ते वंदुं गुणगेह रे. भ०सि०४०

अर्थ–चय अर्थात् आठ कर्मोंका समूह और रिक्त अर्थात् उसका क्षय

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

करनेवाला—इस प्रकार निर्युक्तिमें चारित्रका अर्थ किया गया है। ऐसे गुणनिधानरूप चारित्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४०॥

जाणंता त्रिहुं ज्ञाने संयुत, ते भव मुक्ति जिणंद,
जेह आदरे कर्म खपेवा, ते तप शिवतरु कंद रे. भ०सि०४१

अर्थ—(अब पाँच गाथासे तपपदका स्वरूप कहते हैं—) जो जन्मसे तीन ज्ञान सहित है, और इसी भवमें मोक्षमें जायेंगे ऐसा जो जानते हैं, वे तीर्थंकर भगवान भी कर्मक्षय करनेके लिये जिस तपको अंगीकार करते हैं, वह तप मोक्षरूपी वृक्षके मूल समान है ॥४१॥

करम निकाचित पण खय जाये, क्षमा सहित जे करता,
ते तप नमिये जेह दीपावे, जिनशासन उजमंता रे. भ०सि०४२

अर्थ—फिर जो तप क्षमाधर्म सहित करनेसे निकाचित बाँधे हुए कर्म भी नष्ट हो जाते हैं तथा जिस तपका उद्यापन करनेसे जिनशासन रोशन होता है उस तपको हमें नमस्कार करना चाहिये ॥४२॥

आमोसहि पमुहा बहु लब्धि, होवे जास प्रभावे,
अष्ट महासिद्धि नवनिधि प्रगटे, नमिये ते तप भावे रे. भ०सि०४३

अर्थ—जिस तपके प्रभावसे आमौषधि आदि अनेक प्रकारकी लब्धियाँ, आठ महासिद्धियाँ, नौ निधान आदि प्रकट होते हैं उस तपको भावपूर्वक नमस्कार करो ॥४३॥

फल शिवसुख महोटुं सुर नर वर, संपत्ति जेहनुं फूल,
ते तप सुरतरु सरिखो वंदुं, सम मकरंद अमूल रे. भ०सि०४४

अर्थ—जिस तपरूपी वृक्षका मोक्षसुखरूप महाफल (श्रेष्ठ फल) है, देव गति और मनुष्य गतिकी उत्तम संपत्तिरूप फूल है तथा समतारूपी अमूल्य फूलका रस (पुष्पपराग) है, ऐसा तप कल्पवृक्ष जैसा है, उसे मैं वंदन करता हूँ ॥४४॥

सर्व मंगलमांहि पहेलुं मंगल, वरणविये जे ग्रंथे,
ते तपपद त्रिहुं काल नमीजे, वर सहाय शिवपंथे रे. भ०सि०४५

अर्थ—'तप सब मंगलोंमें प्रथम (आद्य, मुख्य) मंगल है' ऐसा सब ग्रंथोंमें वर्णन किया गया है, तथा तप मोक्षमार्गमें उत्कृष्ट मदद देता है, इसलिये उस तपको त्रिकाल नमस्कार करो ॥४५॥

www.jaintatvagyanshala.org

इम नवपद थुणतो तिहां लीनो, हुओ तन्मय श्रीपाळ,
सुजस विलासे चोथे खंडे, एह अग्यारमी ढाळ रे. भ०सि०४६

अर्थ—इस प्रकार अरिहंतादि नवपदोंकी स्तवना करता हुआ श्रीपाल राजा उसमें लीन होकर तन्मय हो गया। सुयश विलासवाले इस चौथे खंडमें (अथवा महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजने) यह ग्यारहवीं ढाल कही ॥४६॥

चतुर्थ खंडकी ग्यारहवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

इम नवपद थुणतो थको, ते ध्याने श्रीपाल,
पाम्यो पूरण आउखे, नवमो कल्प विशाल. १

अर्थ—इस प्रकार अरिहंतादि नवपदकी स्तवना करता हुआ उसके ध्यानमें लीन होकर श्रीपालराजा आयुष्य पूर्ण होने पर मरकर विशाल नौवें देवलोकमें उत्पन्न हुआ ॥१॥

राणी मयणा प्रमुख सवि, माता पण शुभ ध्यान,
आउखे पूरे तिहां, सुख भोगवे विमान. २

अर्थ—मयणासुंदरी आदि नौ रानियाँ तथा श्रीपालराजाकी माता भी आयुष्य पूर्ण होने पर शुभ ध्यानसे मरकर उसी नौवें देवलोकके विमानमें सुख भोगने लगी ॥२॥

नरभव अंतर स्वर्ग ते, चार वार लही सर्व,
नवमे भव शिव पामशे, गौतम कहे निर्गर्व. ३

अर्थ—फिर मनुष्यभव पाकर वापिस देवलोकमें जायेंगे—इस प्रकार मनुष्यभव और देवभव चार बार पाकर फिर नौवें भवमें मनुष्य होकर मोक्षमें जायेंगे। यों गर्वरहित भगवान गौतमस्वामीने श्रेणिकराजा आदिके समक्ष कहा ॥३॥

ते निसुणी श्रेणिक कहे, नवपद उलसित भाव,
अहो नवपद महिमा वडो, ए छे भवजल नाव. ४

अर्थ—इस प्रकार सुनकर नवपदमें उल्लसित भाववाला श्रेणिकराजा बोला—अहो! नवपदका प्रभाव जगमें अपार है, और वही भवसमुद्रको तिरनेके लिये नौका समान है ॥४॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

वळतुं गौतम गुरु कहे, एक एक पद भत्ति,
देवपाल प्रमुख सुख लह्यां, नवपद महिमा तहत्ति.५

अर्थ—तब गौतमस्वामी गणधर प्रत्युत्तरमें कहने लगे—नवपदजीमेंके एक-एक पदकी भक्ति करनेसे देवपाल आदिको अनेक प्रकारके सुख प्राप्त हुए हैं, इसलिये नवपदकी महिमा सही है, सत्य हैं ॥५॥

किं बहुना मगधेश तुं, इक पद भक्ति प्रभाव,
होईश तीर्थंकर प्रथम, निश्चय ए मन भाव. ६

अर्थ—हे मगधदेशके राजा! अधिक क्या कहे? तू भी एक समकित (दर्शन) पदकी भक्तिके प्रभावसे आगामी चौबीसीमें प्रथम तीर्थंकर होगा। यह बात निश्चयसे मनमें मान ॥६॥

गौतम वचन सुणी इस्या, ऊठे मगध नरिंद,
वधामणी आवी तदा, आव्या वीर जिणंद. ७

अर्थ—गौतमस्वामीके ऐसे वचन सुनकर श्रेणिकराजा वहाँसे खड़े हुए। इतनेमें 'भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं' ऐसी बधाईके समाचार मिले ॥७॥

देवे समवसरण रच्युं, कुसुमवृष्टि तिहां कीध,
अंबर गाजे दुंदुभि, वर अशोक सुप्रसिद्ध. ८

अर्थ—फिर बधाई देनेवालेने कहा—"देवताओंने वहाँ त्रिगढ़ सहित समवसरणकी रचना की है और पुष्पवृष्टि की है। फिर आकाशमें देवदुंदुभिका नाद हो रहा है और श्रेष्ठ सुप्रसिद्ध अशोकवृक्षकी रचना की गयी है ॥८॥

सिंहासन मांड्युं तिहां, चामर छत्र ढलंत,
दिव्यध्वनि दिये देशना, प्रभु भामंडलवंत. ९

अर्थ—देवताओंने भगवानके बैठनेके लिये सिंहासन बनाया है, भगवानकी दोनों ओर चामर ढाल रहे हैं, मस्तक पर छत्र शोभित हो रहा है, मस्तकके पीछे देवरचित भामंडल प्रकाशमान है। इन आठ देवरचित प्रातिहार्यों सहित भगवान समवसरणमें बैठकर दिव्य ध्वनिसे देशना दे रहे हैं।" ॥९॥

वधामणी देई वांदवा, आव्यो श्रेणिक राय,
वांदी बेठो परखदा, उचित स्थानके आय. १०

अर्थ—इत्यादि समाचार सुनकर श्रेणिकराजा भी बधाई देनेवालेको योग्य

www.jaintatvagyanshala.org

उपहार देकर भगवानको वंदन करने आया और वंदन करके पर्षदामें योग्य स्थान पर आकर बैठा ॥१०॥

श्रेणिक उद्देशी कहे, नवपद महिमा वीर,
नवपद सेवी बहु भविक, पाम्या भवजल तीर. ११

अर्थ—भगवान महावीर श्रेणिकराजाको उद्दिष्ट कर निश्चयसे नवपदजी की महिमाका वर्णन करने लगे—इन नवपदके सेवनसे कई भव्य प्राणी संसारसागरको पार कर गये हैं ॥११॥

आराधननुं मूल जस, आतमभाव अछेह,
तिणे नवपद छे आतमा, नवपद मांहे तेह. १२

अर्थ—नवपदजीकी आराधनाका मूल कारण निश्चयसे आत्मभाव है, इसलिये नवपद जो है सो आत्मा ही है, और नवपदमें भी आत्मा ही है ॥१२॥

ध्येय समापत्ति हुये, ध्याता ध्यान प्रमाण,
तिणे नवपद छे आतमा, जाणे कोई सुजाण. १३

अर्थ—ध्यान करने लायक वस्तुकी पूर्णता प्राप्त हो तभी ध्यान करने वालेका ध्यान प्रमाणभूत होता है। इसीलिये नवपद आत्मा ही है। यों सब कोई विद्वान (ज्ञाता) मनुष्य जान सकते हैं ॥१३॥

लही असंग क्रियाबले, जस ध्याने जिणे सिद्धि,
तिणे तेहवुं पद अनुभव्युं, घटमांहि सकल समृद्धि. १४

अर्थ—इस प्रकार असंग क्रियाके बलसे, जिसके ध्यानसे जिसे सिद्धि प्राप्त हुई है, उस आत्माने उस पदका अनुभव किया है। इसलिये सर्व समृद्धि घटमें (आत्मामें) ही रही हुई है ॥१४॥

ढाल बारहवीं

(स्वामी सीमंधर उपदिसे—ए देशी)

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जाय रे,
भेद छेद करी आतमा, अरिहंत रूपी थाय रे. १

अर्थ—द्रव्यसे, गुणसे और पर्यायसे अरिहंतपदका ध्यान करनेवाला आत्मा, अपनेमें और अरिहंतमें रहे हुए भेदको नष्टकर अरिहंत स्वरूप होता है ॥१॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

वीर जिनेश्वर उपदिशे, (तुमे) सांभळजो चित्त लाई रे,
आतमध्याने आतमा, ऋद्धि मळे सवि आई रे. वी॰ २

अर्थ—इस प्रकार वीर भगवान उपदेश दे रहे हैं—हे भव्यजीवों! तुम मन लगाकर सुनों। आत्माके ध्यानसे ही आत्माकी ज्ञान आदि ऋद्धि प्राप्त होती है ॥२॥

रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे,
ते ध्यातां निज आतमा, होय सिद्ध गुणखाणी रे. वी॰ ३

अर्थ—जो सिद्ध भगवंत रूपातीत (रूपरहित) स्वभाववाले हैं, तथा जो केवलज्ञान और केवलदर्शन सहित है, उन सिद्ध भगवंतका ध्यान करते हुए आत्मा स्वयं गुणोंका घर जैसा सिद्धस्वरूपी हो जाता है ॥३॥

ध्याता आचारज भला, महामंत्र शुभ ध्यानी रे,
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होये प्राणी रे. वी॰ ४

अर्थ—महामंत्रको जपनेवाले, शुभध्यान करनेवाले, अच्छे परिणामवाले आचार्य महाराजका पाँच प्रस्थानोंसे ध्यान करनेसे प्राणी स्वयं आचार्य हो जाता है ॥४॥

विशेषार्थ :— पाँच प्रस्थानोंका स्वरूप इस प्रकार है—(१) विद्यापीठ (२) सौभाग्यपीठ (३) लक्ष्मीपीठ (४) मंत्रराज प्रयोगपीठ (५) सुमेरु पीठ। इसका अर्थ इस प्रकार है—(१) विद्यापीठ—इसका बारह पदका मंत्र है, वर्द्धमान विद्या आदि सूरिमंत्रकी सवाकोटि जपपूर्वक साधना करनेसे कोटि श्रुतका ज्ञाता होता है। (२) सौभाग्यपीठ—यही पूर्वोक्त मंत्र विधिपूर्वक आराधित करनेसे सभी लोगोंको वल्लभ (प्रिय) और आदेय वचनवाला होता है। (३) लक्ष्मीपीठ—इस मंत्रराजसे राजा आदि वश होते हैं। (४) मंत्रराज प्रयोगपीठ—इस मंत्रकी आराधना करनेसे उपद्रवरूप सर्व ईति तथा कामण मोहन वश्य आदि नहीं होते। (५) सुमेरुपीठ—यह करनेसे इंद्र आदिको भी मान्य होता है, गौतम आदिकी तरह लब्धिवंत होता है और अजेय होता है।

तप सज्झाये रत सदा, द्वादश अंगनो ध्याता रे,
उपाध्याय ते आतमा, जगबंधव जगभ्राता रे. वी॰ ५

अर्थ—जो तप और स्वाध्यायमें सदा लीन रहते हैं, बारह अंगोंका ध्यान करनेवाले हैं, जगतके बंधु और जगतके भाई सरीखे हैं ऐसे उपाध्यायपदका ध्यान करनेसे आत्मा उपाध्याय होता है ॥५॥

www.jaintatvagyanshala.org

अप्रमत्त जे नित रहे, नवि हरखे नवि शोचे रे,
साधु सुधा ते आतमा, शुं मूंडे शुं लोचे रे? वी० ६

अर्थ–जो हमेशा अप्रमत्त रहते हैं, स्तवना आदिसे हर्षित नहीं होते और उपसर्ग आदिसे दुःखी नहीं होते–ऐसे अमृततुल्य साधु आत्मा ही है। परंतु फक्त मुंडन करनेसे या केशलोच करनेसे थोड़े ही साधु हुआ जाता है? (अर्थात् आत्माको मुँडनेसे ही साधु हुआ जाता है, केवल बाह्यवेश पहननेसे नहीं।) ॥६॥

विशेषार्थ :– इस कथनसे ऐसा नहीं समझना है कि द्रव्यवेशकी महत्ता कम है। यह कथन तो भाव-चारित्रकी महत्ता बतानेके लिये है। जैसे अंधा मनुष्य कहता है कि आँखके बिना धन क्या कामका? यह कथन धनकी अप्रीतिका सूचक नहीं है, इसकी महत्ता कम करनेवाला नहीं है। परंतु इस कथनमें भी आँखका अभाव ही खटकता है। आँख है तो धन तो चाहिये ही। अर्थात् इसमें धनकी महत्ता कम नहीं होती। इसी तरह यहाँ भावचारित्रके अभाववाले द्रव्यचारित्रकी कीमत नहीं है ऐसा समझना है।

शम संवेगादिक गुणा, खय उपशम जे आवे रे,
दर्शन तेहि ज आतमा, शुं होय नाम धरावे रे? वी० ७

अर्थ–जिसके उपशम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य आदि गुण मिथ्यात्वमोहनीयके क्षय या उपशमसे प्रकट होते हैं ऐसा सम्यक्‌दर्शन आत्मा ही है। किन्तु केवल सम्यक्त्वी ऐसा नाम धारण करनेसे अर्थात् सम्यक्‌दृष्टि कहलानेसे क्या लाभ? ॥१७॥

ज्ञानावरणी जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थाय रे,
तो हुये एहि ज आतमा, ज्ञान अबोधता जाय रे. वी० ८

अर्थ–आत्माके ज्ञानगुणको रोकनेवाला जो ज्ञानावरणीय कर्म है, उसका क्षयोपशम होता है तब आत्मा ही ज्ञानरूप हो जाता है, जिससे अज्ञानता नष्ट होती है ॥८॥

जाण चारित्र ते आतमा, निज स्वभावमां रमतो रे,
लेश्या शुद्ध अलंकर्यो, मोहवने नवि भमतो रे. वी० ९

अर्थ–जो आत्मा अपने ज्ञानादि गुणोंमें रमणता करता हो, शुद्ध लेश्यावाला हो, और मोहरूपी वनमें भटकता न हो, वह आत्मा ही चारित्र जानना चाहिये (अर्थात् स्वरूपरमणता ही चारित्र है।) ॥९॥

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

इच्छारोधे संवरी, परिणति समता योगे रे,
तप ते एहि ज आतमा, वरते निज गुण भोगे रे. वी० १०

अर्थ—इच्छा-निरोधपूर्वक संवरगुणको अपनानेवाला और समतायोगके परिणामवाला प्राणी आत्माके गुणोंके अनुभवमें आत्मरमणता करे यही तप है ॥१०॥

आगम नोआगम तणो, भाव ते जाणो साचो रे,
आतम भावे थिर होजो, परभावे मत राचो रे. वी० ११

अर्थ—श्रुतज्ञानरूप आगम और मतिज्ञान आदिरूप नोआगमके सच्चे भावको जानो और आत्मभावमें स्थिर हो जाओ। पुद्‌गल आदि परभावमें आसक्त न होओ ॥११॥

विशेषार्थ :— आगम यानि श्रुतज्ञान और नोआगम अर्थात् श्रुतज्ञानको छोड़कर बाकीके चार ज्ञान जानना चाहिये; अथवा आगम अर्थात् ज्ञानी और अनुपयोगी; और नोआगम अर्थात् ज्ञानी और उपयोगी; अथवा आगम और नोआगमका मतलब ज्ञान और क्रिया—इन दोनोंके भेदको जानकर उनके भावको सच्चा जानना चाहिये।

अष्टक सकल समृध्दिनी, घटमांहे ऋध्दि दाखी रे,
तिम नवपद ऋध्दि जाणजो, आतमराम छे साखी रे. वी० १२

अर्थ—जैसे अणिमा आदि आठ प्रकारकी ऋध्दिकी पूर्णता घटमें (आत्मामें) बतायी है, उसी तरह सर्व प्रकारकी ऋध्दियाँ नवपदजीमें है और आत्मा स्वयं उसका साक्षी है ऐसा विचारो ॥१२॥

योग असंख्य छे जिन कह्या, नवपद मुख्य ते जाणो रे,
एहतणे अवलंबने, आतमध्यान प्रमाणो रे. वी० १३

अर्थ—आत्मऋध्दिको प्राप्त करनेके असंख्य योग जिनेश्वर भगवानने कहे हैं उनमें नवपद मुख्य है, इसलिये इन नवपदजीके आलंबनसे ध्यान करना प्रमाणभूत है ॥१३॥

ढाळ बारमी एहवी, चोथे खंडे पूरी रे,
वाणी वाचक जस तणी, कोई नये न अधूरी रे. वी० १४

अर्थ—इस प्रकार चौथे खण्डकी बारहवीं ढाल पूरी हुई। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि जिनेश्वर भगवानकी वाणी किसी नयसे

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अपूर्ण नहीं है। अथवा वाचक श्री यशोविजयजीकी वाणी नैगम आदि किसी भी नयसे अपूर्ण नहीं है ॥१४॥

चतुर्थ खण्डकी बारहवीं ढाल समाप्त

दोहा छंद

वचनामृत जिन वीरनां, निसुणी श्रेणिक भूप,
आनंदित पहोतो घरे, ध्यातो शुद्ध स्वरूप. १

अर्थ—इस प्रकार श्री वीर जिनेश्वरके वचनामृत सुनकर आनंदित हुआ श्रेणिकराजा चित्तमें आत्माके शुद्धस्वरूपका विचार करता हुआ अपने घर पहुँचा ॥१॥

कुमतितिमिर सवि टाळतो, वर्द्धमान जिन भाण,
भविक कमल पडिबोहतो, विहरे महियल जाण. २

अर्थ—कुबुद्धिरूप सर्व अंधकारको नाश करते हुए, सामान्य केवलियोंमें सूर्य समान, शुद्ध स्वरूपके ज्ञाता भगवान वर्धमान स्वामी भव्य प्राणियोंरूप कमलको प्रतिबुद्ध करते हुए पृथ्वी तल पर विहरण कर रहे हैं ॥२॥

ए श्रीपाल नृपति कथा, नवपद महिमा विशाळ,
भणे गुणे जे सांभळे, तस घर मंगल माळ. ३

अर्थ—नवपदजीकी विशाल महिमायुक्त इस श्रीपालराजाकी कथाको जो प्राणी स्वयं पढ़ेगा, गुनेगा अथवा सुनेगा उसके घरमें मांगलिककी माला होगी ॥३॥

ढाल तेरहवीं

(राग धन्याश्री—थुणियो थुणियो रे प्रभु तुं सुरपति जिन थुणिओ—ए देशी)

तूठो तूठो रे मुज साहिब जगनो तूठो,
ए श्रीपालनो रास करंतां, ज्ञान अमृत रस वूठो रे. मु० १

अर्थ—जगतके स्वामी अब मुझ पर संतुष्ट हुए, इसलिये यह श्रीपाल राजाका रास रचते हुए ज्ञानरूपी अमृतरसकी वृष्टि हुई ॥१॥

पायसमां जिम वृद्धिनुं कारण, गोयमनो अंगूठो रे,
ज्ञानमांहि अनुभव तिम जाणो, ते विण ज्ञान ते जूठो रे. मु० २

अर्थ—जैसे क्षीरकी वृद्धिमें गौतमस्वामीका अंगूठा कारणभूत है, उसी

www.jaintatvagyanshala.org

तरह ज्ञानमें अनुभवज्ञान कारणभूत है। इसलिये अनुभव ज्ञान रहित ज्ञान मिथ्या है, व्यर्थ है ॥२॥

उदकपयोमृत कल्पज्ञान तिहां, त्रीजो अनुभव मीठो रे,
ते विण सकल तृषा किम भांजे, अनुभव प्रेम गरीठो रे. मु० ३

अर्थ—उदककल्पज्ञान, पयःकल्पज्ञान और अमृतकल्पज्ञान ये तीन प्रकारके ज्ञान है। उनमें तीसरा अमृतकल्पज्ञान ही मीठा अनुभवज्ञान है। सचमुच! उस ज्ञानके बिना संसारभ्रमणरूप तृषा कैसे नष्ट हो सकती है? इसलिये अनुभव ज्ञानका प्रेम महान है, श्रेष्ठ है ॥३॥

विशेषार्थ :— इस गाथामें तीन प्रकारका ज्ञान कहा है—

उदककल्पज्ञान—यह ज्ञान पानी जैसा है। जैसे पानी पीते समय शांति होती है, परंतु थोड़ी देरमें फिर प्यास लगती है, वैसे ही यह ज्ञान प्राप्त करते समय आनंद होता है, परंतु फिर कुछ नहीं।

पयःकल्पज्ञान—यह ज्ञान दूध जैसा है। जैसे दूध पीनसे कुछ ज्यादा समय तक आनंद रहता है, फिर प्यास लगती है; वैसे ही इस ज्ञानसे कुछ समय तक आनंद रहता है, फिर उस ज्ञानका आनंद विस्मृत हो जाता है।

अमृतकल्पज्ञान—यह ज्ञान अमृत जैसा है। जैसे अमृत पीनेसे फिर कभी प्यास नहीं लगती, वैसे ही इस ज्ञानसे भवभ्रमणरूप तृषा नष्ट होती है, फिर कभी भवभ्रमण नहीं होता।

प्रेम तणी परे शीखो साधो, जोई शेलडी सांठो रे,
जिहां गांठ तिहां रस नवि दीसे, जिहां रस तिहां नवि गांठो रे. मु० ४

अर्थ—गन्नेके साठेके दृष्टांतके अनुसार सांसारिक प्रेमकी तरह अमृत समान अनुभव ज्ञानको समझो और प्राप्त करो। जैसे गन्नेके साठेमें जहाँ गाँठ होती है वहाँ रस नहीं होता और जहाँ रस होता है वहाँ गाँठ दिखायी नहीं देती। उसी तरह जहाँ कर्मरूपी गाँठ (ग्रंथि) होती है वहाँ अनुभवज्ञानका रस नहीं होता और जहाँ अनुभवज्ञान होता है वहाँ कर्मकी गाँठ नहीं होती ॥४॥

जिनही पाया तिनही छिपाया, ए पण एक छे चीठो रे;
अनुभव मेरु छिपे किम महोटो, ते तो सघले दीठो रे. मु० ५

अर्थ—जिन्होंने अनुभवज्ञानका रस प्राप्त किया है, उन्होंने वह रस छिपाया है यह कहावत एक कागजकी चिट्ठीके समान है, क्योंकि—अनुभवरस तो मेरुपर्वत जैसा है, इसलिये उसे कैसे छिपाया जा सकता है? अर्थात् वह तो

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

सभी जगह दिखाई देता है। (परन्तु सत्य यह है कि जिसने उस रसको प्राप्त किया हो वही उसे देख सकता है, दूसरा कोई जान नहीं सकता।) ॥५॥

पूरव लिखित लिखे सवि लेई, मसी कागळ ने कांठो रे,
भाव अपूरव कहे ते पंडित, बहु बोले ते बांठो रे. मु० ६

अर्थ—स्याही, कागज और कलम लेकर पूर्व लिखित ज्ञान सब कोई लिख सकते हैं, परन्तु उस लिखे हुए ज्ञानके अपूर्व भाव (रहस्य) को जो कह सकता है वह पंडित कहलाता है। बाकी जो ज्यादा बोल-बोल करता है वह मनुष्य वाचाल कहलाता है ॥६॥

अवयव सवि सुंदर होय देहे, नाके दीसे चाठो रे,
ग्रंथज्ञान अनुभव विण तेहवुं, शुक जिस्यो श्रुतपाठो रे. मु० ७

अर्थ—(अनुभव ज्ञानके लिये दूसरा दृष्टांत देते हैं—) जैसे शरीरके सभी अंग सुंदर रूपवाले हो परंतु नाक पर कोई चकत्ता (दाग) हो तो वह अच्छा नहीं लगता, वैसे ही अनुभवज्ञानरहित केवल ग्रंथका ज्ञान पोपटके श्रुतपाठ जैसा निरर्थक है। (जैसे पोपटको कोई 'राम-राम' बोलना सिखा दे तो वह वैसे बोला करे, मगर उसे पता नहीं है कि राम किसका नाम है, अथवा राम क्या है? उसी तरह अनुभवज्ञानके बिना केवल वाचाज्ञान शोभाको प्राप्त नहीं होता।) ॥७॥

संशय नवि भांजे श्रुतज्ञाने, अनुभव निश्चय जेठो रे,
वादविवाद अनिश्चित करतो, अनुभव विण जाय हेठो रे. मु० ८

अर्थ—अनुभवज्ञानके रसके बिना अकेले शास्त्रज्ञानसे भी मनके सर्व संशय नष्ट नहीं होते, इसलिये अनुभवज्ञान ही श्रेष्ठ ज्ञान है और उस अनुभवज्ञानके बिना परदर्शनियोंके साथ वाद-विवाद करनेसे अवश्य ही शर्मिंदा होना पड़ता है ॥८॥

जिम जिम बहुश्रुत बहु जन संमत, बहुल शिष्यनो शेठो रे,
तिम तिम जिनशासननो वैरी, जो नवि अनुभव नेठो रे. मु० ९

अर्थ—जैसे जैसे अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता होता जाता है, बहुत लोगोंसे सन्मान पाने लगता है और बहुत शिष्योंका स्वामी होता है, किन्तु यदि अनुभवज्ञान निश्चयसे न हुआ हो तो वह प्राणी वैसे वैसे जिनशासनका शत्रु होता जाता है ॥९॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

माहरे तो गुरु चरण पसाये, अनुभव दिलमांहि पेठो रे,
ऋद्धि वृद्धि प्रगटी घटमांहे, आतम रति हुई बेठो रे. मु० १०

अर्थ–(ग्रंथकार स्वयंको अनुभवज्ञान हुआ है ऐसा बताते हुए कहते हैं कि–) मेरे तो अपने गुरुके चरणोंकी कृपासे अनुभवज्ञान दिलमें ही प्रविष्ट हो गया है; जिससे सर्व प्रकारकी ऋद्धि और आबादी आत्मघटमें (आत्मामें) ही प्रकट हो गई है, इससे आत्मा आनन्दवान होकर बैठा है अर्थात् आत्मा आत्मानंदमें रमणता कर रहा है ॥१०॥

उग्यो समकित रवि झलहलतो, भरम तिमिर सवि नाठो रे,
तगतगता दुर्नय जे तारा, तेहनो बल पण धाठो रे.मु० ११

अर्थ–समकितरूपी झगमगाता हुए सूर्य उदित हुआ, इससे भ्रमरूपी सारा अंधकार नष्ट हो गया; और सूर्य उदित हो जानेसे टिमटिमाते हुए ताराओंका बल जैसे नष्ट हो जाता है वैसे ही दुर्नयोंका बल घिस गया (कम हो गया) ॥११॥

मेरु धीरता सवि हर लीनी, रह्यो ते केवल भाठो रे,
हरि सुरघट सुरतरुकी शोभा, ते तो माटी काठो रे. मु० १२

अर्थ–फिर अनुभवज्ञानने मेरुपर्वतकी धीरता(धैर्य)को चुरा लिया (ले लिया) जिससे वह केवल पत्थर जैसा रह गया, तथा कामघट और कल्पवृक्षकी शोभाको भी छीन लिया, जिससे कामघट सिर्फ मिट्टीरूप रह गया और कल्पवृक्ष केवल काष्ठरूप हो गया अर्थात् अनुभवज्ञान आ जानेसे मेरुपर्वत, कामघट और कल्पवृक्ष गुणरहित हो गये, निरुपयोगी हो गये ॥१२॥

हरव्यो अनुभव जोर हतो जे, मोहमल्ल जग लूंठो रे,
परि परि तेहना मर्म देखावी, भारे कीधो भूंठो रे. मु० १३

अर्थ–फिर अनुभवज्ञानने मोह-मल्लको, जो जगतको अपने बलसे लूट रहा था उसे, हरा दिया; अर्थात् मोहके बलको हटा दिया और बारबार उसके छिद्रोंको दिखाकर उसे अत्यंत शर्मिंदा बना दिया ॥१३॥

अनुभवगुण आव्यो निज अंगे, मिट्यो रूप निज माठो रे,
साहिब सन्मुख सुनजरे जोतां, कोण थाये उपरांठो रे. मु०१४

अर्थ–इस प्रकार जब अपने आत्मामें अनुभवज्ञान प्रकट हो गया तब अनादिकालका अपना विभाव स्वरूप नष्ट हो गया; क्योंकि जब स्वामी अच्छी

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

नजरसे (कृपादृष्टिसे) हमारी ओर देखता है तब अन्य कौन प्रतिकूल (शत्रु) हो सकता है ? ॥१४॥

थोडे पण दंभे दुःख पाम्या, पीठ अने महापीठो रे,
अनुभववंत ते दंभ न राखे, दंभ धरे ते धीठो रे. मु० १५

अर्थ—फिर किंचित् भी दंभ (कपट) करनेसे पीठ और महापीठ अनेक प्रकारके तप-ध्यान-अध्ययन करते हुए भी स्त्रीत्वके महादुःखको प्राप्त हुए, इसलिये अनुभवज्ञानवाला आत्मा कपट नहीं करता, और यदि करे तो उसे मूर्ख जानना चाहिये ॥१५॥

अनुभववंत अदंभनी रचना, गायो सरस सुकंठो रे,
भाव सुधारस घट घट पीओ, हुओ पूर्ण उत्कंठो रे. मु० १६

अर्थ—अनुभवज्ञान सहित और दंभरहित (कपटरहित) ऐसी इस रचनाको मैंने उत्साहपूर्वक अच्छे कंठसे गाया है, इसलिये हे श्रोतागण ! आप भी इसमेंसे भावरसरूपी अमृतका हृदयपूर्वक (प्रेमपूर्वक) पान करो और पीकर पूर्ण उत्कंठित होओ ॥१६॥

कलश

(राग-धन्याश्री, ते तरिया रे भाई ते तरिया—ए देशी)

तपगच्छनंदन सुरतरु प्रगट्यो, हीरविजय गुरुरायाजी,
अकबरशाहे जस उपदेशे, पडह अमारि बजायाजी. १

अर्थ—तपगच्छरूपी नंदनवनमें कल्पवृक्ष जैसे गुरुदेव श्रीहीरविजयसूरि हुए, जिनके उपदेशसे अकबर बादशाहने अमारि (अहिंसा) पटह बजाया था। अर्थात् अहिंसाकी घोषणा की थी ॥१॥

हेमसूरि जिनशासन मुद्राये, हेम समान कहायाजी,
जाचो हीरो जे प्रभु होतां, शासन सोह चढायाजी. २

अर्थ—तथा हेमसूरि महाराज जैनशासनरूपी मुद्रामें (अंगूठीमें) सुवर्ण समान कहे गये है, तथा श्री हीरविजयसूरी भगवान तो जातिवंत (सच्चे) हीरेके समान थे और उन्होंने जैनशासनकी अनेक प्रकारसे शोभा बढ़ायी है। (अर्थात् जैनशासनरूपी अंगूठीमें हेमसूरि महाराज हेम (सुवर्ण) समान और हीरविजयसूरि महाराज हीरे समान थे) ॥२॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

तास पटे पूर्वाचल उदयो, दिनकर तुल्य प्रतापीजी,
गंगाजल निर्मळ जस कीर्ति, सघले जगमांहि व्यापीजी. ३

अर्थ—उन हीरविजयसूरिकी पाट पर, उदयाचल पर्वत पर तेजस्वी सूर्यके समान जो उदित हुए और जिनकी गंगाजल समान निर्मल कीर्ति सारी दुनियामें फैल रही है—॥३॥

शाह सभामांहे वाद करीने, जिनमत थिरता थापीजी,
बहु आदर जस शाहे दीधो, बिरुद सवाई आपीजी. ४

अर्थ—और जिन्होंने अकबर बादशाहकी सभामें अन्य दर्शनियोंके साथ वादविवाद करके जैनमतकी निश्चलता स्थापित की थी जिससे बादशाहने खुश होकर उन्हें बहुत मान तथा 'सवाई' बिरुद दिया था—॥४॥

श्री विजयसेनसूरि तस पटधर, उदया बहु गुणवंताजी,
जास नाम दश दिशि छे चावुं, जे महिमाए महंताजी. ५

अर्थ—ऐसे श्री विजयसेनसूरि महाराज हुए और उनके पट्टधर (उत्तराधिकारी) अनेक गुणोंके घर समान श्री विजयदेवसूरि हुए जिनका नाम दसों दिशाओंमें विख्यात था और जो इस पृथ्वी पर महाप्रभाववाले थे ॥५॥

श्री विजयप्रभ तस पटधारी, सूरि प्रतापे छाजेजी,
एह रासनी रचना कीधी, सुंदर तेहने राजेजी. ६

अर्थ—उनकी पाट पर श्री विजयप्रभसूरि हुए जो महान विद्वान और सूर्यकी तरह तेजस्वी थे, उनके मनोहर शासनमें इस श्रीपालराजाके रासकी रचना की गई ॥६॥

सूरी हीरगुरुनी बहु कीर्ति, कीर्तिविजय उवज्झायाजी,
शिष्य तास श्री विनयविजयवर, वाचक सुगुण सोहायाजी. ७

अर्थ—गुरुदेव श्री हीरविजयसूरि महाराजकी मानो साक्षात् कीर्ति ही न हो ऐसे श्री कीर्तिविजयजी महाराज हुए और उनके शिष्य तथा उपाध्यायके गुणोंसे भूषित श्री विनयविजयजी महाराज हुए ॥७॥

विद्या विनय विवेक विचक्षण, लक्षण लक्षित देहाजी,
सोभागी गीतारथ सारथ, संगत सखर सनेहाजी. ८

अर्थ—ये महोपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज ज्ञान, विनय और विवेकमें विचक्षण थे, शुभ लक्षणयुक्त शरीरवाले थे, सौभाग्यशाली, शास्त्रोंके

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अर्थके ज्ञाता, गीतार्थ गुणको सार्थक करनेवाले तथा अच्छी संगतिवाले प्रेमी थे ॥८॥

संवत सत्तर अडत्रीस वरसे, रही रांदेर चोमासेजी,
संघतणा आग्रहथी मांड्यो, रास अधिक उल्लासेजी. ९

अर्थ—ये महोपाध्यायजी महाराज संवत् सत्रहसौ आडतीस (१७३८) के वर्षमें रांदेरमें चातुर्मास रहे थे। वहाँ संघके आग्रहसे इस रासकी अत्यंत उल्लासपूर्वक रचना शुरू की थी ॥९॥

सार्द्ध सप्त शत गाथा विरची, पहोता ते सुरलोकेजी,
तेना गुण गावे छे गोरी, मिलि मिलि थोके थोकेजी. १०

अर्थ—परन्तु साढ़े सातसौ गाथाएँ बनाकर वे महोपाध्यायजी महाराज आयुक्षय होने पर स्वर्गवासी हुए। अनेक शुभ कार्योंके कर्त्ता इन महाराजके गुण अनेक सौभाग्यवान स्त्रियाँ मिलकर गाती है ॥१०॥

तास विश्वास भाजन तस पूरण, प्रेम पवित्र कहायाजी,
श्री नयविजय विबुध पय सेवक, सुजसविजय उवज्झायाजी. ११

अर्थ—उन विनयविजयजी महाराजका विश्वासपात्र और उनके संपूर्ण प्रेमसे पवित्र तथा पंडित श्री नयविजयजी महाराजके चरणोंकी सेवा करनेवाला मैं यशोविजय उपाध्याय हूँ ॥११॥

भाग थाकतो पूरण कीधो, तास वचन संकेतेजी,
तिणे वळी समकितदृष्टि जे नर, तेह तणे हित हेतेजी. १२

अर्थ—श्री विनयविजयजी महाराजके वचनके संकेतके अनुसार बाकी रहा हुआ (अधूरा रहा हुआ) यह रास मैंने (यशोविजयने) जो सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं उनके कल्याणके लिये पूर्ण किया है ॥१२॥

जे भावे ए भणशे गुणशे, तस घर मंगळ माळाजी,
बंधुर सिंधुर सुंदर मंदिर, मणिमय झाकझमाळाजी. १३

अर्थ—जो भावपूर्वक इस रासको पढ़ेंगे, गुनेंगे और सुनेंगे उनके घर श्री सिद्धचक्रजीके प्रभावसे मांगलिकोंकी माला होगी अर्थात् अनेक मंगल होंगे और श्रेष्ठ हाथियोंसे सुशोभित, मणिरत्नोंसे झगमगाते अलंकार तथा सुंदर मंदिर (घर) प्राप्त होंगे ॥१३॥

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

देह सबळ ससनेह परिच्छद, रंग अभंग रसाळाजी,
अनुक्रमे तेह महोदय पदवी, लहेशे ज्ञान विशाळाजी. १४

अर्थ—तथा वे पराक्रमयुक्त शरीर, स्नेहयुक्त परिवार, अक्षय और मनोहर आनंदको पायेंगे तथा अनुक्रमसे विशाल ज्ञानलक्ष्मीसे पूर्ण मोक्षपदको भी प्राप्त करेंगे ॥१४॥

इतिश्री श्रीपालराजाके चरित्रके रासमें श्रीपालकुँवर और अजितसेन राजाके बीच युद्ध, तत्पश्चात् अजितसेन राजाका दीक्षाग्रहण, श्रीपालराजा द्वारा उनके सद्गुणोंकी स्तुति अजितसेन राजर्षिका उपदेश और कर्मविपाकके स्वरूप वर्णनवाला श्रीपालराजा आदिका पूर्वभव कथन, परमात्माके प्रति श्रीपालराजाकी अनन्य श्रद्धा, उद्यापन-महोत्सव, श्री सिद्धचक्रजीकी गुण-स्तवना और अन्तमें स्वर्गगमन आदि आदि वर्णनसहित यह चतुर्थखंड पूर्ण हुआ।

इति श्रीमन्महोपाध्याय कीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय श्रीविनयविजयगणि
विरचिते श्री श्रीपालचरित्रे प्राकृतप्रबंधे तन्मध्ये
उपाध्याय यशोविजयगणिपूरिते
अयं चतुर्थः खंडः संपूर्णः तत्समाप्तौ समाप्तंश्च श्रीपालरासः ।

सर्व खंड चार तत्र प्रथम खंडे ढाल ग्यारह, द्वितीय खंडे ढाल आठ, तृतीयखंडे ढाल आठ, चतुर्थ खंडे ढाल चौदह, सर्व ढाल इकतालीस, तन्मध्ये गाथा १२५१ ग्रंथाग्र श्लोक १८२५.

शुभं भवतु!! कल्याणमस्तु!!

श्रीपाल राजाका रास समाप्त

www.jaintatvagyanshala.org

पंडित श्री पद्मविजयजीकृत

श्री नवपदजीकी पूजा

विधि

आ पूजामां जे जे चीजो अवश्य जोईअे तेमांनी केटलीक चीजोनां नाम लखीअे छीअे.

दूध, दहीं, घृत, साकर, शुद्ध जळ अे पंचामृत तथा केसर, सुगंधी चंदन, कपूर, कस्तूरी, अमर, रोली, मौली, छूटां फूल, फूलोनी माळा, फूलोना चंद्रुवा, धूप, तंदुल प्रमुख नव जातिना धान्य, नव प्रकारनां फळ, नव प्रकारनां नैवेद्य, नव प्रकारनी पक्व वस्तु, मिश्री, पतासां ओला प्रमुख, तथा अंगलूहणाने वास्ते सफेद वस्त्र, अने पहेरवाने वास्ते उत्तम रेशमी वस्त्र, वासक्षेप, गुलाब-जळ, अत्तर इत्यादिक बीजा पण नव नव नालीना कळश, नव थाळी, परात (त्रांस), तसला, आरती, मंगळदीपक, भगवाननी आंगी, समवसरण इत्यादिक सर्व वस्तु प्रथमथी ठीक करीने राखवी, जेथी पूजामां अड्चन न आवे. अे संक्षेप विधि कह्यो. विशेष विधि गुरु थकी जाणवो.

दरेक पूजाना अंते मंत्र बोलाया पछी थाळीमां रहेला अष्ट द्रव्यथी प्रभुजीनी पूजा करवी.

कळश ढालन विधि

चैत्र तथा आश्विन मासमां अे पूजाओ भणावो त्यारे नव स्नात्रिया करीअे, मोटा कळश वगेरेमां पंचामृत भरीअे, स्थापनामां श्रीफळ तथा रोकड नाणुं धरीअे, तेने गुरुनी पासे मंत्रावी केसरथी तिलक करे, कंकणदोरो हाथे बांधे. डाबा हाथमां स्वस्तिक करीने विधि सहित स्नात्र भणावे.

१ प्रथम श्री अरिहंतपद श्वेतवर्णे छे माटे तांदुल (चोखा), धूप, दीप, नैवेद्य वगेरे अष्ट द्रव्य, वासक्षेप, नागरवेलनां पान (डींटावाळा), पूजानी थाळीमां धरीने ते थाळी हाथमां राखे. नव कळशने मौलीसूत्र बांधी कुंकुमना स्वस्तिक करी, पंचामृतथी भरीने ते कळशो हाथमां लई, प्रथम श्री अरिहंतपदनी पूजा भणे. ते संपूर्ण भणी रह्या पछी मोटा थाळमां प्रतिमाजीने पधरावे. पछी "ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं" अे प्रमाणे कहेतो थको श्री अरिहंतपदनी पूजा करे, अष्टद्रव्य अनुक्रमे चढावे. इति प्रथम पद पूजा विधि.

२ बीजुं श्री सिद्धपद रक्त वर्णे छे. माटे घउं पूजानी थाळीमां धरी श्रीफळ तथा अष्ट द्रव्य लईने नव कळश पंचामृतथी भरीने बीजी पूजा भणे. ते संपूर्ण थयेथी 'ॐ ह्रीं नमो सिद्धस्स' अेम कही अभिषेक करीने अष्टप्रकारी पूजा करे. इति द्वितीयपद पूजा विधि.

३ त्रीजुं श्री आचार्यपद पीळे वर्णे छे माटे चणानी दाळ, अष्ट द्रव्य, श्रीफळ वगेरे लई नव कळश पंचामृतथी भरीने त्रीजी पूजानो पाठ भणे. ते संपूर्ण थयेथी 'ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं' अेम कही अभिषेक करीने अष्टप्रकारी पूजा करे. इति तृतीयपद पूजा विधि.

४ चोथुं श्री उपाध्यायपद नीलवर्णे छे माटे मग प्रमुख तथा अष्ट द्रव्य लईने पूर्वोक्त विधिअे पूजा भणी संपूर्ण थयेथी "ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं" अेम कहीने अभिषेक करीने अष्टप्रकारी पूजा करे. इति चतुर्थपद पूजा विधि.

५ पांचमुं श्री साधुपद श्यामवर्णे छे. माटे अडद प्रमुख तथा अष्ट द्रव्य लईने पूर्वोक्त विधिअे पूजा भणी ते संपूर्ण थयेथी "ॐ ह्रीं नमो लोअे सव्वसाहूणं" कही अभिषेक करीने अष्टप्रकारी पूजा करे. इति पंचमपद पूजा विधि.

६ छट्ठुं श्री दर्शनपद श्वेतवर्णे छे माटे तांदुल वगेरे लई 'ॐ ह्रीं नमो दंसणस्स' कहेवुं. बीजो सर्व पूर्वोक्त विधि करवो. इति षष्ठपद पूजा विधि.

७ सातमुं श्री ज्ञानपद श्वेत वर्णे छे. माटे चावल वगेरे लई 'ॐ ह्रीं नमो नाणस्स' कहेवुं. बीजो सर्व पूर्वोक्त विधि करवो. इति सप्तमपद पूजा विधि.

८ आठमुं श्री चारित्रपद पण श्वेतवर्णे छे. माटे चोखा प्रमुख लई "ॐ ह्रीं नमो चारितस्स" कहेवुं. बीजो सर्व पूर्वोक्त विधि करवो. इति अष्टमपद पूजा विधि.

९ नवमुं श्री तपपद श्वेतवर्णे छे, माटे चोखा प्रमुख लई पूर्वोक्त विधि करीने "ॐ ह्रीं नमो तवस्स" कही अभिषेक करीने अष्टप्रकारी पूजा करे, आरती करे. इति श्री नवमपद पूजा विधि.

॥ प्रथम श्री अरिहंत पद पूजा ॥

दोहा—श्रुतदायक श्रुतदेवता, वंदुं जिन चोवीश;
गुण सिद्धचक्रना गावतां, जगमां होय जगीश. १

अरिहंत सिद्ध सूरि नमुं, पाठक मुनि गुणधाम;
दंसण नाण चरण वळी, तप गुणमांहे उद्दाम. २

इम नवपद भक्ति करी, आराधो नित्यमेव;
जेहथी भवदुःख उपशमे, पामे शिव स्वयमेव. ३

ते नवपद कांई वरणवुं, धरतो भाव उल्लास;
गुणी गुणगण गातां थकां, लहीअे ज्ञानप्रकाश. ४

प्रतिष्ठा कल्पे कही, नवपद पूजा सार;
तेणे नवपद पूजा भणुं, करतो भक्ति उदार. ५

(ढाळ—राग भैरव)

प्रथम पद जिनपति, गाईअे गुणतति,
पाईअे विपुल फल सहज आप;
नामगोत्र ज सुण्यां, कर्म महा निर्जर्यां,
जाय भव संतति बद्ध पाप. प्र० १

अेक वर रूपमां वरण पंचे होये,
अेक तुज वर्ण ते जग न मायो;
अेक तिम श्लोकमां वरण बत्रीश होये,
अेक तुज वर्ण किणही न गवायो. प्र० २

वाच गुण अतिशया, पाडिहेरा सया,
बाह्य पण अे गुणा कुणे न गवाया;
केवलनाण तह केवळ दंसण,
पमुह अभ्यंतरा जिनप पाया.
तेह मुह पद्मथी केम कहाया. प्र० ३

दोहा

जिन गुण अनंत अनंत छे, वाचक्रम मितदीह;
बुद्धि रहित शक्ति विकळ, केम कहुं अेकण जीह. १

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

ढाळ (राग देशाख)

भाव धरी भवि पूजीये, तिग अड पण भेय;
तिम सत्तर भेदे करी, पूजो गत खेय. भा० १
इगवीश अडसय भेदथी, जिन भाव संभारी,
पूजो परिगल भावशुं, प्रभु आणाकारी. भा० २
पूजा करतां पूज्यनी, पूज्य पोते थावे,
तुज पदपद्म सेवक तिणे, अक्षय पद पावे. भा० ३

अंत्य काव्यम्

नियंतरंगारिगणे सुनाणे, सप्पाडिहेराइसयप्पहाणे ।
संदेहसंदोहरयं हरंतो, झाएह निच्चंपि जिणेरिहंतो ॥
विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ॥

ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्रापणाय श्रीमते अरिहंतपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

॥ द्वितीय श्री सिद्धपद पूजा ॥

दोहा–सिद्ध स्वरूपी जे थया, कर्ममेल सवि धोय;
जेह थशे ने थाय छे, सिद्ध नमो सहु कोय. १

ढाळ (पारी जातिनुं फूल सरगथी–अे देशी.)

नमो सिद्धाणं हवे पद बीजे, जे निज संपद वरिया,
ज्ञान दर्शन अनंत खजानो, अव्याबाध सुख दरिया के;
सिद्ध सुबुद्ध के स्वामी निज रामी के,
हांरे वाला प्रणमो निज गुण कामी रे,
गुणकामी गुणकामी गुणवंता, जे वचनातीत हुआ रे. १
क्षायिक समकित ने अक्षय स्थिति, जेह अरूपी नाम;
अवगाहन अगुरुलघु जेहनी, वीर्य अनंतनुं धाम के. सि० २
इम अडकर्म अभावे अड गुण, वळी इगतीस कहेवाय;
वळी विशेषे अनंत अनंत गुण, नाण नयण निरखाय,
नित्य नित्य वंदना थाय के. सि० ३

दोहा–जिहां निज अेक अवगाहना, तिहां नमुं सिद्ध अनंत,
फरसित देश प्रदेशने, असंख्य गुणा भगवंत. १

(ढाळ) (राग-फाग)

सिद्ध भजो भगवंत, प्राणी ! पूर्णानंदी. सिद्ध०
लोकालोक लहे अेक समये, सिद्धि वधू वर कंत, प्राणी०
अज अविनाशी अक्षय अजरामर, स्वद्रव्यादिक वंत. प्राणी० १

www.jaintatvagyanshala.org

वर्ण न गंध न रस नहि, फरस न, दीर्घ ह्रस्व न हुंत. प्राणी०
नहीं सूक्ष्म बादर गतवेदी, त्रस थावर न कहंत. प्राणी० २

अकोही, अमानी, अमायी, अलोभी, गुण अनंत भदंत, प्राणी०
पद्मविजय नित सिद्धस्वामीने, लळी लळी लळी प्रणमंत. प्राणी० ३

अंत्य काव्यम्

दुट्ठट्ठकम्मावरणप्पमुक्के, अनंतनाणाइ सिरीचउक्के ।
समग्गलोगग्ग पयत्थसिद्धे झाएह निच्चंपि समग्गसिद्धे ।।

विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्रापणाय श्रीमते सिद्धपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

।। तृतीय श्री आचार्य पद पूजा ।।

दोहा—पडिमा वहे वळी तप करे, भावना भावे बार;
नमीअे ते आचार्यने, जे पाळे पंचाचार. १

(ढाळ—संभव जिनवर विनति—अे देशी)

आचारज त्रीजे पदे, नमीअे जे गच्छ धोरी रे;
इंद्रिय तुरंगम वश करे, जे लही ज्ञाननी दोरी रे. आ० १

शुद्ध प्ररूपक गुण थकी, जे जिनवर सम भाख्या रे,
छत्रीश छत्रीशी गुणे, शोभित समयमां दाख्या रे. आ० २

उत्कृष्टा त्रीजे भवे, पामे अविचळ ठाण रे;
भावाचारज वंदना, करिये थई सावधान रे. आ० ३

दोहा—नव विध ब्रह्म गुप्ति धरे, वर्जे पाप नियाण;
विहार करे नव कल्प नव, सूरि तत्त्वना जाण. १

(ढाळ—राग बिहागडो; मुज घर आवजो रे नाथ—अे देशी)

सत्तावीश गुण साधुना, शोभित जास शरीर;
नव कोटी शुद्ध आहार ले, इम गुण छत्रीशे धीर.
भविजन ! भावशुं नमो आज, जिम पामो अक्षयराज. भ० १

जे प्रगट करवा अति निपुण, वर लब्धि अट्ठावीश;
अडविध प्रभावकपणुं धरे, अे सूरिगुण छत्रीश. भ० २

तजे चौद अंतर ग्रंथिने, परिसह जीते बावीश;
कहे पद्म आचारज नमो, बहु सूरि गुण छत्रीश. भ० ३

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अंत्य काव्यम्

न तं सुहं देई पिया न माया, जे दिंति जीवाण सूरीसपाया ।
तम्हा हु ते चेव सया भजेह, जं मुख्खसुख्खाइ लहु लहेह ।।
विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्रापणाय श्रीमते आचार्यपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

।। चतुर्थ श्री उपाध्याय पद पूजा ।।

दोहा—चोथे पद पाठक नमुं, सकळ संघ आधार,
भणे भणावे साधुने, समता रस भंडार. १

ढाळ-राग वसंत

(तुं तो जिन भज विलंब न कर हो होरीके खेलईया—अे देशी)

तुं तो पाठक पद मन धर हो,
रंगीले जीउरा; तुं तो पाठक पद मन धर.
राय रांक जसु निकटे आवे, पण जस नहि निज पर हो. रंगी० १
सारणादिक गच्छ मांहे करता, पण रमता निज घर हो. रंगी० २
द्वादशांग सज्झाय करणकुं, जे निशदिन तत्पर हो. रंगी० ३
अे उवज्झाय निर्यामक पामी, तुं तो भवसायर सुखे तर हो. रंगी० ४
जे परवादी मतंगज केरो, न धरे हरि परे डर हो. रंगी० ५
उत्तम गुरु पद पद्म सेवनसें, पकडे शिव वधू कर हो. रंगी० ६

दोहा—आचारज नृप आगले, जे युवराज समान;
निद्रा विकथा नवि करे, सर्व समय सावधान. १

ढाळ (जिन वचने वैरागीयो हो धन्ना—अे देशी)

नमो उवज्झायाणं जपो हो मित्ता, जेहना गुण पचवीश रे
अेकागर चित्ता; अे पद ध्यावो ने.
अे पद ध्यावो ध्यानमां हो मित्ता, मूकी राग ने रीश रे अेका० १
अंग अग्यार पूरवधरा हो मित्ता, परिसह सहे बावीश,
त्रण्य गुप्ति गुप्ता रहे हो मित्ता, भावे भावना पचवीश रे अेका० २
अंग उपांग सोहामणा हो मित्ता, धरता जेह गुणीश;
गणतां मुख पद पद्मथी हो मित्ता, नंदी अनुयोग जगीश रे अेका० ३

अंत्य काव्यम्

सुत्तत्थ संवेगमयं सुएणं, संनीरखीरामय विस्सुएणं ।
पीनंति जे ते उवज्झायराए, झाएह निच्चंपि कयप्पसाए ।।

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ।।
ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्राप्णाय श्रीमते उपाध्यायपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

।। पंचम श्री साधुपद पूजा ।।

दोहा—हवे पंचम पदे मुनिवरा, जे निर्मम निःसंग;
दिन दिन कंचननी परे, दीसे चढते रंग. १

ढाळ राग वसंत

(मो मन भवन विलास साईयां, मो मन०—अे देशी)

मुनिवर परम दयाळ भवियां! मुनि०
तुमे प्रणमोने भाव विशाल, भविया! मुनिवर परम दयाळ.
कुक्षीसंबल मुनिवर भाख्या; आहारदोष टाळे बियाल; भ०मु०
बाह्य अभ्यंतर परिग्रह छांडी, छांडी सवि जंजाल. भ०मु०१
जिणे अे ऋषिनुं शरण कर्युं तिणे,पाणी पहेली बांधी पाळ; भ०मु०
ज्ञान ध्यान किरिया साधंता, काढे पूर्वना काळ. भ०मु०२
संयम सत्तर प्रकारे आराधे, छ जीवना प्रतिपाल; भ०मु०
इम मुनि गुण गावे ते पहेरे, सिद्धि वधू वरमाल. भ०मु०३

दोहा—पांचे इंद्रिय वश करे, पाळे पंचाचार,
पंच समिति समिता रहे, वंदुं ते अणगार. १

(ढाळ-गिरिराजकुं सदा मोरी वंदना रे—अे देशी)

मुनिराजकुं सदा मोरी वंदना रे,
भोग वम्या ते मनथी न इच्छे, नाग ज्युं होय अगंधना रे, मु०
परिसह उपसर्गे स्थिर रहेवे, मेरु परे निःकंपना रे. मु०१
इच्छा मिच्छा आवसिया निसीहिया,तहकार ने वळी छंदना रे, मु०
पृच्छा प्रतिपृच्छा उपसंपदा, सामाचारी निमंतना रे. मु०२
अे दशविध सामाचारी पाले, कहे पद्म लेउं तस भामणा रे, मु०
अे ऋषिराज वंदनथी होवे, भवभव पाप निकंदना रे. मु०३

अंत्यकाव्यम्

खंते य दंते य सुगुत्ति गुत्तो मुत्ते य संते गुणजोगजुत्तो ।
गयप्पमाए गयमोहमाए, झाएह निच्चं मुणिरायपाए ।।
विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ।।
ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्राप्णाय श्रीमते साधुपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

॥ षष्ठ श्री दर्शनपद पूजा ॥

दोहा–समकित विण नव पूरवी, अज्ञानी कहेवाय,
समकित विण संसारमां, अरहो परहो अथडाय. १

(ढाळ-राग सारंग)

प्रभु ! निर्मल दर्शन कीजीए.
आतमज्ञानको अनुभव दर्शन सरस सुधारस पीजीए. प्र० १
जस अनुभव अनंत परियट्टा, भव संसार सहु छीजीए, प्र०
भिन्न मुहूर्त दर्शन फरसनथें, अर्ध परियट्टे सीझीए. प्र० २
जेहथी होवे देवगुरु पुनि, धर्म रंग अट्ठिमिंजीए; प्र०
इस्यो उत्तम दर्शन पामी, पद्म कहे शिव लीजीए. प्र० ३

दोहा–समकिती अड पवयण धणी, पण ज्ञानी कहेवाय;
अर्ध पुद्‍गल परावर्त्तमां, सकल कर्म मल जाय. १

(ढाळ-धन्य धन्य संप्रति साचो राजा–अे देशी.)

सम्यक् दर्शन पद तुमे प्रणमो, जे निज धुर गुण होय रे;
चारित्र विण लहे शाश्वत पदवी, समकित विण नहि कोय रे. स० १
सद्दहणा चउ लक्षण दूषण, भूषण पंच विचारो रे;
जयणा भावना ठाण आगारा, षट् षट् तास प्रकारो रे. स० २
शुद्धि लिंग त्रण आठ प्रभावक, दशविध विनय उदारो रे;
इम सडसट्ठ भेदे अलंकरियो, समकित शुद्ध आचारो रे. स० ३
केवळी निरखीत सूक्ष्म अरूपी, ते जेहने चित्त वसियो रे;
जिन उत्तम पद पद्मनी सेवा, करवामां घणुं रसियो रे. स० ४

अंत्यकाव्यम्

जं अत्थिकायेसु खु सद्दहाणं, तं दंसणं सव्वगुणप्पहाणं ।
कुग्गाहवाही उवयंति जेणं, जहा विसुद्धेण रसायणेणं ॥
विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ॥

ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्रापणाय श्रीमते सम्यक्‌दर्शनपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

॥ सप्तम श्री ज्ञानपद पूजा ॥

दोहा–नाण स्वभाव जे जीवनो, स्वपर प्रकाशक जेह;
तेह नाण दीपक समुं, प्रणमो धर्म सनेह. १

(ढाळ–जिम मधुकर मन मालती रे–अे देशी)

नाण पदाराधन करो रे, जेम लहो निर्मळ नाण रे; भविक जन;
श्रद्धा पण थिर तो रहे रे, जो नवतत्त्व विन्नाण रे. भविक जन.
नाण पदाराधन करो रे. १

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

अज्ञानी करशे किश्युं रे, शुं लहेशे पुण्य पाप रे भविक०
पुण्य पाप नाणी लहे रे, करे निज निर्मळ आप रे भविक० ना० २

प्रथम ज्ञान पछी दया रे, दशवैकालिक वाण रे; भविक०
भेद अेकावन तेहना रे, समजो चतुर सुजाण रे भविक० ना० ३

दोहा–बहु क्रोडो वरसे खपे, कर्म अज्ञाने जेह;
ज्ञानी श्वासोश्वासमां, कर्म खपावे तेह. १

(ढाळ–हो मतवाळे साजना–अे देशी)

नाण नमो पद सातमे, जेहथी जाणे द्रव्य भाव; मेरे लाल.
जाणे ज्ञान क्रिया वळी, तिम चेतन ने जड भाव. मेरे लाल. ना० १

नरक सरग जाणे वळी, जाणे वळी मोक्ष संसार; मेरे लाल.
हेय ज्ञेय उपादेय लहे, लहे निश्चय ने व्यवहार. मेरे लाल. ना० २

नाम ठवण द्रव्यभांव जे, वळी सगनय ने सगभंग; मेरे लाल.
जिन मुख पद्म द्रह थकी, लहो ज्ञान प्रवाह सुगंग. मेरे लाल. ना० ३

अंत्य काव्यम्

नाणं पहाणं नयचक्कसिद्धं, तत्तत्थबोहिकमयं पसिद्धं ।
धरेह चित्तावसए फुरंतं, मणिक्कदीओ व तमोहरंतं ॥

विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ॥

ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्रापणाय श्रीमते सम्यक्ज्ञानपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

॥ अष्टम श्री चारित्रपद पूजा ॥

दोहा–चारित्र धर्म नमो हवे, जे करे कर्म निरोध;
चारित्र धर्म जस मन वस्यो, सफळो तस अवबोध. १

ढाळ (टूंक अने तोडा वचे रे, मेंदी केरो छोड, मेंदी रंग लाग्यो–अे देशी)

चारित्रपद नमो आठमे रे, जेहथी भव भय जाय, संयम रंग लाग्यो.
सत्तर भेद छे जेहना रे, सीत्तेर भेद पण थाय. संयम० १

समिति गुप्ति महाव्रत वळी रे, दश खंत्यादिक धर्म; संयम०
नाण कारय विरतिय छे रे, अनुपम समता शर्म. संयम० २

बार कषाय क्षय उपशमे रे, सर्वविरति गुणठाण; संयम०
संयम ठाण असंख्य छे रे, प्रणमो भविक सुजाण. संयम० ३

दोहा–हरिकेशी मुनिराजियो, उपन्यो कुळ चंडाळ;
पण नित्य सुर सेवा करे, चारित्र गुण असराळ. १

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

(ढाळ-साहिब कब मिले, ससनेही प्यारा हो—अे देशी.)

संयम कब मिले, ससनेही प्यारा हो. संयम कब मिले.
युं समकित गुणठाण गवारा,आतमसे करत विचारा हो. संयम० १
दोष बेंताळीश शुद्ध आहारा, नवकल्पी उग्र विहारा हो. संयम० २
सहस तेवीश दोष रहित निहारा,आवश्यक दोय वारा हो. संयम० ३
परिसह सहनादिक परकारा, अे सब हे व्यवहारा हो. संयम० ४
निश्चय निज गुण ठरण उदारा,लहत उत्तम भव पारा हो. संयम० ५
मोहादिक परभावसें न्यारा, दुग नय संयुत सारा हो. संयम० ६
पद्म कहे इम सुणी उजमाळा, लहे शिववधू वर हारा हो. संयम० ७

अंत्य काव्यम्

सुसंवरं मोहनिरोधसारं, पंचप्पयारं विगमाइयारं ।
मूलोत्तराणेग गुणं पवित्तं, पालेह निच्चंपि हु सच्चरित्तं ।।
विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघनं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्रापणाय श्रीमते सम्यक्चारित्रपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

।। नवम श्री तपपद पूजा ।।

दोहा—दृढप्रहारी हत्या करी, कीधां कर्म अघोर;
तो पण तपना प्रभावथी, काढ्यां कर्म कठोर. १

ढाळ (पुरुषोत्तम समता छे ताहरा घटमां—अे देशी)

तप करिये समता राखी घटमां. (अे आंकणी)
तप करवाल कराल ले करमां, लडीअे कर्म अरिभटमां. तप० १
खावत पीवत मोक्ष जे माने, ते सिरदार बहु जटमां. तप० २
अेक अचरिज प्रतिश्रोते तरतां, आवे भवसायर तटमां. तप० ३
काल अनादिको कर्म संगतिथें,जीउ पडियो ज्युं खटपटमां. तप० ४
तास वियोगकरण अे करणं,जेणे नवि भमिये भवतटमां. तप० ५
होये पुराणां ते कर्म निर्जरे, अे सम नहि साधन घटमां. तप० ६
ध्यानतपे सवि कर्म जलाई, शिववधू वरिये झटपटमां. तप० ७

दोहा—विघ्न टळे तप गुण थकी, तपथी जाय विकार;
प्रशंसियो तप गुण थकी, वीरे धन्नो अणगार. १

ढाळ (सच्चा सांई हो डंका जोर बजाया हो—अे देशी.)

तपस्या करतां करतां हो डंका जोर बजाया हो (अे आंकणी)

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

उजमणां तप केरां करतां, शासन सोह चढाया हो;
वीर्य उल्लास वधे तेणे कारण, कर्म निर्जरा पाया. तप० १

अडसिद्धि अणिमा लघिमादिक, तिम लद्धि अडवीसा हो;
विष्णुकुमारादिक परे जगमां, पामत जयंत जगीशा. तप० २

गौतम अष्टापद गिरि चडिया, तापस आहार कराया हो;
जे तप कर्म निकाचित तपवे, क्षमा सहित मुनिराया. तप० ३

साडा बार वर्ष जिन उत्तम, वीरजी भूमि न ठाया हो;
घोर तपे केवळ लह्या तेहना, पद्मविजय नमे पाया. तप० ४

अंत्यकाव्यम्

बज्झं तहाब्भितरभेयमेयं, कसाय दुज्झेय कुकम्मभेयं ।
दुक्खक्खयत्थे कयपावनासं, तवेह दाहागमयं निरासं ।।

विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जंतुमहोदयकारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघतं, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरामृत्यु निवारणाय सिद्धपदप्रापणाय श्रीमते सम्यकृतपपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा.

।। कलश ।।

(राग-धनाश्री)

आज मारे त्रिभुवन साहेब तूठो, अनुभव अमृत वूठो;
गुणी अनुयायी चेतना करतां, किशुंअ करे मोह रूठो.
भवि प्राणी हो आज मारे त्रिभुवन साहेब तूठो. १

अे नवपदनुं ध्यान धरंता, नव निधि ऋद्धि घरे आवे,
नव नियाणानो त्याग करीने, नव क्षायिक पद पावे. भ० आ० २

विजयसिंहसूरि शिष्य अनुपम, गीतारथ गुण रागी;
सत्यविजय तस शिष्य विबुधवर, कपूरविजय वडभागी. भ० आ० ३

तास शिष्य श्री खिमाविजयवर, जिनविजय पंन्यास;
श्री गुरु उत्तमविजय सुशिष्ये, शास्त्राभ्यास विलास. भ० आ० ४

गज[८] वह्नि[३] मद[८] चंद्र[१] (१८३८) संवत्सर,
महा वदि बीज गुरुवारो,
रही चोमासुं लींबडी नगरे, उद्यम अेह उदारो. भ० आ० ५

तपगच्छ विजयधर्मसूरि राज्ये, शांतिजिणंद पसायो;
श्री गुरु उत्तम क्रम कज अलि सम, पद्मविजय गुण गायो. भ० आ० ६

इति पंडित श्री पद्मविजयजी कृत श्री नवपदजीनी पूजा समाप्त.

www.jaintatvagyanshala.org

Aacharya vijay shri Surendrasuriswarji Jain Tatvagyanshala

www.jaintatvagyanshala.org